विषय सूची

संख्या विषय	पृष्ठ संख्या

मेरे मालवीयजी

समस्त जाति जिसे अपनानेको व्याकुल हो, समग्र देश जिससे ममत्व जोड़नेका हठ करता हो, समूचा विश्व जिसे परम आत्मीय माननेपर अड़ा बैठा हो, उसे 'मेरे' के परम संकुचित, नितान्त क्षुद्र और अत्यन्त स्वार्थ-पूर्ण घेरेमें बाँध छोड़ना कितनी बड़ी ढिठाई है, कितना बड़ा दुःसाहस है, कितनी बड़ी मूर्खता है, यह सभी समझ सकते हैं। किन्तु फिर भी इस ढिठाई, दुःसाहस और मूर्खताके लिये न मुझे संकोच है, न भय है, न पश्चात्ताप ही है। परम संकटमें पड़ा हुआ निराश्रित आर्त्त, जब उस अणु-परमाणुमें व्याप्त परमात्म तत्त्व को 'मेरे भगवन्' कहकर उसके परमको 'मेरे' की सूक्ष्मतम सीमामें कस डालनेका दुराग्रह करता है उस समय उसके छोटेसे 'मेरे' में घिरा हुआ भगवान् सहसा वामनसे त्रिविक्रम बनने लगता है और सम्पूर्ण सृष्टिका ममत्व उस एकाकीके 'मेरे' में इस प्रकार गूँजने लगता है मानो उसको 'मेरे' सहसा सबके 'मेरे' हो गए हों। उसी प्रकार यदि मैं भी उन पुण्य-श्लोक ब्रह्मर्षिको 'मेरे' कहकर अपना बनानेका आग्रह करूँ तो मुझे दोष नहीं देना चाहिए।

अपने जीवन के अत्यन्त संक्षिप्त अतीतके उस पुण्य दिवसको मैं भुलाए नहीं भूल सकता जब सन् १९२० के किसी माङ्गल्य मास में मुजफ्फरनगर जनपद या युक्तप्रान्तीय राष्ट्रीय सभाके अधिवेशन में पहली बार मैंने उन ब्रह्म वर्चस-संयुक्त तेजस्वी महापुरुषके मंगलमय दर्शन किए थे और उनकी अत्यन्त मधुरभाषिणी वाणी पर अपनी अबोध बाल्यावस्थामें संचित सम्पूर्ण श्रद्धा-विभूति उनके चरणोंमें चुपचाप अर्पित कर दी थी।

उसका परिणाम यह हुआ कि शनैः शनैः एक रहस्यमयी संकल्प-धारा मेरे मानसमें निश्चित पथ बनाती हुई इतने प्रबल वेगसे बहने लगी कि पूज्य मालवीयजी मेरे जीवनके, मेरी साधनाके, मेरे विश्वासके और प्रवृत्तिके एक मात्र आलोक-दीप बन गए। इस दिव्य आलोकसे मैं इतना प्रभावित हुआ कि मैं उनका प्रशंसक ही नहीं, श्रद्धालु भी बन गया, श्रद्धालु ही नहीं पुजारी भी बन गया, पुजारी ही नहीं भक्त भी बन गया।

हाई स्कूलकी परीक्षा पास कर चुकनेपर जब सभी लोग मुझे मे॰ठ कालेजमें नाम लिखवानेके लिये उत्साहित कर रहे थे उस समय माताजीके स्नेह, पिताजीके वात्सल्य, भाई बहनोंकी ममता, मित्रोंके सौहार्द और घरकी समीपता सबपर जो विशाल महत्त्वाकांक्षा अधिकार किए बैठी थी, वह थी काशी जानेकी,

काशी हिन्दू विश्वविद्यालयमें पढ़नेकी, विश्वविद्यालयके कुलपतिके सम्पर्कमें आनेकी। महत्वाकांक्षा सफल होने वाली थी क्योंकि पूज्य पिताजीकी कृपासे मैं विश्वविद्यालयमें प्रविष्ट हो गया। विश्वविद्यालयके साथ मेरा पैतृक सम्बन्ध भी है क्योंकि उसकी स्थापनाके लिये जो महायज्ञ हुआ था उसके होताओंमें मेरे पिताजी भी थे और फिर काशी मेरी जन्मभूमि, जन्मपुरी भी थी, यह भी कम आकर्षण नहीं था।

हिन्दू विश्व विद्यालय में पहुंचने पर मैं किस ऐतिहासिक क्रमसे उनके समीप, समीपतर और समीपतम पहुँचा यह मैं स्वयं नहीं कह सकता, किन्तु पहुँच कर उनका वात्सल्य भाजन और विश्वासपात्र बन गया यह मैं कह सकता हूँ और बड़े गर्वसे कह सकता हूँ? कल्पनाके नेत्रोंसे म देख रहा हूँ कि वे व्यासपीठ पर बैठे हैं पल्थी जमाए, चारों ओर, अध्यापक, छात्र और छात्राओं का विशाल समूह एक दृष्टि होकर उनके दर्शन कर रहा है, एकाग्र होकर उन्हें सुन रहा है। ओर मैं कल्पनाके कानोंसे अब भी सुन रहा हूँ 'विदुलाका पुत्र युद्धसे लौट कर चला आया। विदुलाने पूछा—क्या विजय लेकर लौटे हो? उसने कहा नहीं, मैं युद्ध करना नहीं चाहता, मैं व्यर्थ इतने प्राणियोंका संहार नहीं करना चाहता। राज्य जाता है तो जाय। विदुला कड़ककर गरज उठी—कायर! मेरी कोखसे, क्षत्रियाकी कोखसे जन्म लेकर तू इस प्रकारकी, भगोड़ेपनकी, निर्वीर्यताकी बात करता है, तुझे धिक्कार है। यदि तू क्षत्रियका पुत्र है तो जा, तत्काल चला जा, युद्ध क्षेत्रमें लड़ते लड़ते प्राण भी दे दे तो श्रेय है—

क्षणं प्रज्वलितं श्रेयो न च धूमायितं चिरम्।"

[क्षण भरमें भभक कर जल उठना अच्छा है किन्तु बहुत दिनों तक धुँधुआते हुए धीरे धीरे सुलगना अच्छा नहीं।] चला गया विदुलाका पुत्र और लौटा विजय लेकर।

मैं फिर सुन रहा हूँ उनकी वाणी। वे कहते जा रहे हैं महाभारतकी कथा और अर्जुनका प्रसङ्ग आते ही सहसा अपना मधुर स्वर ऊँचा उठाते हुए कहने लगते हैं—विद्यार्थियों और विद्यार्थिनियों अर्जुनकी दो प्रतिज्ञायें थीं— न मैं दीनताके साथ किसीके आगे गिड़गिड़ाऊँगा और न पीठ दिखाकर भागूँगा। 'अर्जुनस्य प्रतिज्ञे द्वे न दैन्यं न पलायनम्।' आप लोग भी ऐसे ही बनो। कभी किसीके आगे अपना सिर न झुकने दो और जो सामने आवे उसे ललकार दो, पीठ दिखाकर भागो मत।' इसी धारामें उपसंहार करते हुए वे कह रहे हैं—

सत्येन, ब्रह्मचर्येण, व्यायामेनाथ विद्यया।
देशभक्त्याऽऽत्मत्यागेन, सम्मानार्हः सदा भव॥

[सत्य से, ब्रह्मचर्यसे, व्यायामसे, विद्यासे, देशभक्तिसे आत्म-त्यागसे सदा सम्मान पाओ।]

मैं फिर देख रहा हूँ कि संध्या समय बिड़ला छात्रावास में वे घूम रहे हैं। उनके साथ हैं आचार्य आनन्दशंकर बापूभाई ध्रुवजी और उनके पीछे पीछे चले आ रहे हैं श्री लक्ष्मणदास इंजिनियर। एक छात्र भीतर कोठरीमें बैठा पढ़ रहा है। वह इन्हें देखकर सक-पकाकर उठ खड़ा होता है और ये अपनी लोक-विश्रुत स्वाभाविक मुसकानके साथ कहते हैं—"अरे इतना पढ़ते हो। बुद्धि तो बढ़नी ही चाहिए पर शरीर भी तो तगड़ा होना चाहिए। क्या करोगे बहुत बुद्धि लेकर, जब कोई आकर तुम्हें उठाकर दे मारेगा। देखो एक दोहा कंठस्थ कर लो—

दूध पियो कसरत करो, नित्य जपो हरिनाम।
मन लगाइ विद्या पढ़ो, पूरे हों सब काम॥

कहो दोहे को।" वह विद्यार्थी भी दोहा कहने लगता है। आचार्य ध्रुवजी अपनी छड़ी दोनों हाथोंसे पकड़े हुए, उसकी गोल मूठ कन्धेपर जमाए देखरहे हैं हिन्दू विश्वविद्यालयके कुलपति की यह शिक्षा-प्रणाली।

विश्वविद्यालयके दीक्षा-समारोहके अवसरपर उनके उपदेशों-की ध्वनि आजतक मैं स्पष्ट सुन रहा हूं—

'सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमद। मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। और दीक्षान्त भाषणमें वे कहते जा रहे हैं— हिन्दू विश्वविद्यालयकी स्थापना इसलिये की गई है कि यहांके छात्र विद्या भी प्राप्त करें और साथ ही अपने धर्म और अपने देशके भी सच्चे सेवक बनें। यह विश्वविद्यालय दीनोंके लिये है। यहाँके द्वार सबके लिये खुले हुए हैं। मैं चाहता हूं कि यहाँ आकर कोई लौट कर न जाय। सच्चरित्रता हमारे विश्व-विद्यालयका मूल मंत्र है और यही हमारी शोभा है। केवल डिग्री देनेके लिये तो बहुतसे विश्वविद्यालय देश में बने हुए हैं। हम प्रत्येक छात्रको शुद्ध, सात्त्विक, तेजस्वी और वीर पुरुष और प्रत्येक कन्याको वीर माता बनाना चाहते हैं जो ईश्वरमें विश्वास करे, प्रत्येक प्राणीका आदर करे, वीरताके साथ अन्यायका विरोध करे और आत्मसम्मानके साथ, सचाईके साथ जीविका चलाता हुआ अपना, अपने समाजका और अपने देशका कल्याण कर सके।"

आज वे दिन नहीं रहे और वे मालवीयजी भी नहीं रहे—
"नैननमें जो सदा रहते तिनकी अब कान कहानी सुन्यो करें"।

किन्तु उनके न रहनेपर भी उनके उपदेश चिरजीवी हैं, उनके आदर्श अमर हैं, उनकी रचनाएँ सुचिर प्रतिष्ठित हैं, भावी जाति में दृढ़ संकल्पता, अध्यवसाय, लोक-कल्याण और आत्मत्यागकी सजीव भावना भरनेके लिये उनका हिन्दू विश्वविद्यालय शतशः

स्वरूप लेकर उनकी अमर कीर्त्ति का गुणगान कर रहा है किन्तु फिर भी मालवीयजीकी स्मृति हटती नहीं है, उनकी अनुपस्थिति निरन्तर खटकती जा रही है क्योंकि जिस आत्मभावसे विश्वविद्यालयके प्रत्येक छात्रके हृदय में, विश्वविद्यालयकी ईंट ईंट में, वृक्ष-वृक्षमें, कण-कणमें वे व्याप्त थे, वह आत्मभाव कहीं देखनेको नहीं मिल रहा है। यों तो राम गए, कृष्ण भी गए और संसार चला ही जा रहा है, हँसता खेलता, रोता-गाता, किन्तु प्रश्न यह है कि क्या वह उसी प्रकार चल रहा है जैसे चलना चाहिए था। इसका उत्तर शुद्ध नकारात्मक है। और इसी लिये बार बार स्रष्टाकी स्मृति प्रबल होकर मानसको विक्षुब्ध किए डाल रही है, मथे डाल रही है।

पुण्यश्लोक मालवीयजीके गुणानुकीर्त्तनके लिये, उनकी सर्वतोमुखी क्रियाओंकी व्याख्याके लिये, उनकी व्यक्तिगत विशेषताओंकी सरणि बनानेके लिये जिस योग्यताकी अपेक्षा होनी चाहिए उसके सर्वथा अभावमें वाणी सहसा मूक हो जाती है और नेतिका सीधा सा, सरल सा, आधार लेकर मौन रहनेके अतिरिक्त कोई दूसरा मार्ग नहीं रह जाता। वे धर्मनिष्ठ थे, आचारमें भी, विचारमें भी यदि व्यासजीके अनुसार लोककल्याणको ही हम धर्मकी कसौटी मान लें-तो मालवीयजीकी रेखा उसपर सबसे अधिक प्रदीप्त दिखाई देगी शिक्षाके क्षेत्रमें जिन रूसो, पेस्तालौजी, फ्रोबेल, मौन्तेसोरी आदि शिक्षा शास्त्रियोंकी नामावलीने संसारको प्रभावित कर रक्खा है वे सब एकत्र होकर भी मालवीयजी तक नहीं पहुँच सकते क्योंकि इन सबने जो सिद्धान्त प्रतिपादित किए हैं उन सबका लक्ष्य सामाजिक दृष्टिसे मनुष्यके बच्चेको जीने योग्य मनुष्य बना देना भर है। किन्तु मालवीयजीकी शिक्षाका उद्देश्य मनुष्यके बच्चेको केवल मनुष्य ही नहीं, ऐसा देवता बना देना था जिसकी संसार पूजा करे, जिससे शक्ति, उत्साह और प्रेरणाका वरदान माँगे, जिसके आशीर्वादसे- जीवनके सम्पूर्ण दैवी तत्त्व प्राप्त कर सके। किस शिक्षाशास्त्रीने यह कल्पनाकी है? केवल मनोविज्ञानका एक झूठा ढोंग खड़ा करके अव्यावहारिक सिद्धान्तोंके इन्द्रजालमें लोकवृत्तिको फँसानेका एक मोहक जाल भर विदेशी शिक्षा-शास्त्रियोंने फैला दिया है पर वास्तवमें उसमें तत्त्व कुछ नहीं, उसका परिणाम कुछ नहीं।

राजनीतिक क्षेत्रमें उन्होंने जिस अध्यवसाय, जिस साहस और जिस आत्मत्यागका प्रदर्शन किया है वह उनका अलौकिक कार्य है। शब्दोंकी शक्ति उस तक पहुँचनेमें भी अशक्त होरही है। किन्तु सबसे अधिक प्रभाव-शाली उनका व्यक्तित्व था, वे स्वयं थे।

प्रत्येक व्यक्तिको सदा यह अधिकार था कि वह उनसे जब चाहे जाकर मिले, चाहे जितनी देरतक उनसे बातचीत करे

और चाहे जिस कामके लिये उनसे पत्र लिखवा ले। और अतुलित धैर्यके साथ सबकी बातें एकाग्र होकर सुनते, दुखीके दुःखमें स्वयं भी रोने लगते, और जिस प्रकार भी हो सकता उसे निराश न लौटने देते। न जाने कितनी बार ऐसा हुआ है कि केवल सहायता और लोक कल्याणके लिये उन्होंने लिखित नियमोंकी भी चिन्ता नहीं की।

मनुष्यता उनका नियम था और देवत्व उनका गुण। कभी सुना करते थे—

गायन्ति देवाः किल गीतकानि, धन्यास्तु ये भारतभूमिभागे।
स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते, भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्॥

[देवता लोग यह गीत गाते हैं कि वे धन्य हैं जो स्वर्ग, अपवर्गमें रहने वाले देवता होकर भी भारतवर्षमें मनुष्य होकर जन्म लेते हैं।]

मालवीयजी भी ऐसे ही कोई देवता थे जो हम लोगोंके महत्पुण्यके कारण यहाँ आए और हमें शक्ति देकर, साधन देकर अन्तर्धान होगए और अन्तर्धान होनेसे पूर्व सम्पूर्ण देशको और समाजको, जो उन्होंने दिव्य संदेश और आदेश दिया है वही उनकी स्मृतिको चिरस्थायी करनेको अकेला ही पर्याप्त है।

यदि मैं उनसे अपने निकटतम सम्पर्कको थोड़ी देरके लिये भूल भी जाऊँ तब भी उनके देवत्वका ध्यान करके मैं भक्तकी तन्मयतासे साहस, शक्ति और स्फूर्ति प्राप्त करनेके लिये ही उन्हें पुकार सकता हूँ—'मेरे मालवीयजी' और अपने हृदयमें बैठी हुई व्याकुल श्रद्धाको लोकके समक्ष व्यक्त करनेके लिये ही मैंने पुण्य श्लोक मालवीयजीकी पचहत्तरवीं वर्षगाँठपर उनका जीवन चरित लिखा और प्रकाशित किया था और आज उनके प्रथम वार्षिक श्राद्धके अवसरपर अपनी लेखनीको पवित्र करनेके लिये, अपने आत्माको तृप्त और तुष्ट करनेके लिये, अपनी भावनाओंका परिष्कार करनेके लिये, लोकमंगलके सात्त्विक संकल्पसे यह ग्रन्थ पूर्ण करके उपस्थित कर रहा हूँ।

पहले संस्करणके समय कागज सुलभ था, छपाई कम थी। इस बार कागजका अभाव है छपाई महँगी है। फिर भी अपने परम आत्मीय सुहृद् पण्डित गयाप्रसाद ज्योतिषीके श्रमसे तथा अपने मित्र पण्डित नागेश उपाध्याय एम्. ए. ज्यौतिषाचार्यके सहयोगसे केवल जीवनचरितवाला अंश छापकर प्रस्तुत किया जा रहा है।

रथयात्रा
सं० २००५,
काशी।

सीताराम चतुर्वेदी
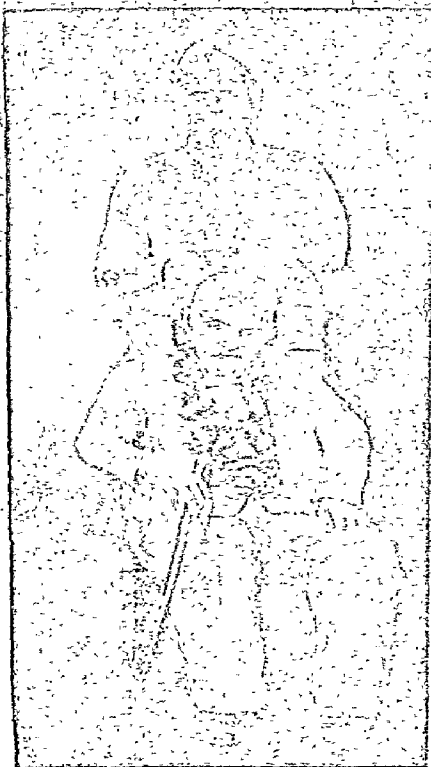
कुर्सीपर पूज्य मालवीयजी महाराज, अंतिम ८४वीं वर्षगांठ के दिन
पीछे श्री सीताराम चतुर्वेदी

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

आदिदेवं नमस्कृत्य वन्दे देवान्महौजसः ।
सर्वा देवप्रिया वन्दे वन्दे सर्वपितरो सदा ॥
रामं रामप्रियां वन्दे वन्दे रामानुजाँस्तथा ।
रामस्य पितरौ वन्दे वन्दे रामानुगं हरिम् ॥
मदनो मोहनो यस्तु मालवीयं नमामि तम् ।
सीतारामेण सद्भक्त्या यच्चरित्रं सुवर्णितम् ॥

महामना मालवीयजी

संवत् उन्नीस सौ अठारह

आजके प्रयागको देखकर किसीको गुमान भी न होगा कि विक्रमकी बीसवीं शताब्दीके प्रारम्भमें यह खपरैलके मकानोंका एक बड़ा देहात था। तब ये खुली, चौड़ी, चिकनी सड़कें नहीं थीं, ऊँची ऊँची अटारियाँ और कोठियाँ नहीं थीं, रङ्गबिरङ्गी फूलोंकी क्यारियों और हरियाले घने पेड़ोंकी झुरमुटमें ऊँचा सिर करके खड़े हुए बँगले भी नहीं थे। न तो आँखोंको चुँधियानेवाली बिजली थी न दिल दहलानेवाले पुतलीघर। हाँ, इस देहातमें त्रिवेणीके भक्तोंने पुण्य करके कुछ मन्दिर और धर्मशालाएँ बनवा दी थीं जहाँ से साँझ-सवेरे भगवान्‌के भजन, शङ्खकी गूँज और घण्टे-घड़ियालोंकी टन्‌टन् झन्‌झन् भक्तोंका मन लुभाती थी।

आज जहाँ घनी बस्ती और बड़ी-बड़ी दुकानें दिखाई पड़ रही हैं, वहाँ खुला जङ्गल था। जहाँ आजकल सरकारी अफसरों और नगरके धनी-मानियों के बँगले चमकते हैं वहां जङ्गली जानवर पेड़ोंकी ठण्डी छाँहमें लोट लगाते या माँदोंमें जाकर सोते थे। बस्तीमें छोटी-छोटी पुरानी चालकी सड़कें और सँकरी गलियाँ थीं जो मेलोंके दिनोंमें थोड़ेसे नरनारियोंसे ही ठसाठस भर जाती थीं। उस समय कोई प्रयागकी सैर करने नहीं जाता था। जो जाता था वह अपना आराम छोड़कर, झोलीमें सतुआ बाँधकर, त्रिवेणीमें एक डुबकी—बस एक डुबकी—लगाने, और उसका प्रयाग जाना सफल हो जाता था। अब समय

बदल गया है अब सैर करनेवाले लोग त्रिवेणीको नहीं पूछते, क्योंकि अब प्रयागमें मनलुभानेवाले बहुतसे प्रलोभन हो गये हैं।

पर हाँ—एक बात है—गङ्गा और यमुना आज भी उसी प्रकार उसी वेगसे, उसी उमङ्गसे, उसी शानसे प्रयागकी गोदमें एक दूसरे से मिलनेके लिये पगली सी दौड़ी चली आती हैं—पिता हिमालयकी गोद छोड़ते ही उनका विछोह हुआ—फिर यदि वे दोनों बहनें इतने हुलाससे मिलनेको दौड़ें तो अचरज क्या ? और फिर वह दुर्ग—अकबरका बनाया हुआ वह गढ़ भी ज्यों-का-त्यों खड़ा है, मुगलोंके सुनहले दिनोंकी स्मृति लिए हुए, लुटे हुए वैभवकी कसक लिए हुए यमुनाकी ठण्ढी कोमल लहरोंकी थपथपी पाकर चुपचाप खड़ा है, जैसे उसमें प्राण न हो, जीवन न हो, आत्मा न हो। सचमुच उसकी पिछली महत्ता स्मरण करके रोना आता है। पर यह तो संसारका चक्कर है। कलभी यही था, कल भी यही रहेगा।

प्रयाग ही नहीं, उस दिनका हिन्दुस्थान भी जिसने देखा होगा वह आजके हिन्दुस्थानको नहीं पहचान सकता। एक आग लगी थी—बड़ी भयङ्कर, बड़ी घातक—न जाने कैसे लगी थी। कोई कहते हैं कि विदेशी जुएको कन्धेसे हटानेके लिये लगी थी, कोई कहते हैं कि कुछ देशी राजाओंने अपने खोए हुए राजको लौटा लेनेके लिये लगाई थी, कोई कहते हैं कि बेड़ियोंमें कसी हुई माँका बन्धन खोलनेके लिये यह आग लगाई गई थी, कोई कहते हैं कि यह फ़ौजी सिपाहियोंकी धर्मान्धता थी और कुछ नहीं; जितने मुँह उतनी बातें। आग लगी थी, यह सच है। क्यों लगी थी? यह प्रत्येक बुद्धिमान समझ सकता है। पर सचमुच वह आग कितनी निठुर थी, कितनी विकराल थी। लाखों हिन्दुस्थानी और अंग्रेज़ उसकी लपटोंमें जल मरे। वह बुझी तो सही पर-जिस लिये वह लगी थी वह उद्देश्य पूरा हुआ या नहीं इसमें सन्देह है। हाँ, यह कि हमारी आपसकी फूटने औसर पाकर भाग्यकी कुञ्जी सदाके लिये न सही पर उस समय तो इङ्गलैण्डके हाथोंमें सौंप ही दी, जिसके प्रतिनिधि लौर्ड कैनिङ्ग ब्रिटिश भारतके पहले शासक हुए। पर हम जिस दिनकी बात कह रहे हैं उस दिन आग बुझ चुकी थी, उसकी राख बहा दी गई थी और चारों ओर सन्नाटा छा गया था। तोप और बन्दूकोंकी गड़गड़ाहट बन्द हो गई थी। सड़कोंके किनारे पेड़ोंपर टँगे हुए फाँसीके फन्दे उतार लिए गए थे और प्रयागमें ही १ नवम्बर, सन् १८५८ ई० को लौर्ड कैनिङ्गका शानदार दरबार हुआ और कई देशी राजाओंको पदवियाँ बाँटी गईं। अब हिन्दुस्तान फिर चुप होकर बैठ गया, और जैसा इसका पुराना अभ्यास है, फिर अपने काम-धन्धेमें लग गया मानो कुछ हुआ ही नहीं।

पर विपत्ति अकेली कभी नहीं आती। सन् १८६०-६१ ई० में पश्चिमोत्तर देश (वर्त्तमान संयुक्त प्रान्त) पर भगवान इन्द्र रूठ गए। न बादल उठे न जल बरसा। त्राहि-त्राहि मच गई। यमुना और सतलजके बीचमें तो लोगोंकी और भी बुरी दशा थी। एक अन्नका दाना मुँहमें डालनेको नहीं मिला। नौ महीनोंतक पैंतीस सहस्र अकाल-पीड़ितोंको सरकारी सहायता और अस्सी सहस्रको धर्मार्थ सहायता मिलती रही फिर भी पाँच लाख जीते-जागते प्राणी भूखसे तड़प-तड़पकर मर गए। कितना भयानक वह अकाल होगा। बस यही समझिए कि वे हिन्दुस्थानी थे, सभ्य आर्योंकी सन्तान थे, कालके मुँहमें पड़कर भी उन्होंने धर्म नहीं छोड़ा। वे मरते मर गए पर उन्होंने न तो लूटमार की न हत्या की। पर हम पूछते हैं, क्या भगवान् इन्द्रके क्रोधके ही कारण यह अकाल पड़ा था ? इस प्रश्नका उत्तर देना सहज नहीं है। वह क्यों पड़ा था, यह सुनकर ही जी काँप उठता है।

हिन्दू धर्मकी नाव उस समय आँधी और लहरोंमें पड़ी थी। कई माँझी थे, कई पतवार थामे हुए थे। सब अपने-अपने मनसे खे रहे थे। बूढ़ी नावपर बेचारा हिन्दू धर्म बैठा हुआ था। यदि कोई नावको सुधारनेकी सम्मति देता था तो वह

अपराधी समझा जाता था और नावपरसे ढकेल दिया जाता था। उधर दूसरी नावें थीं जो दृढ़ भले ही न हों पर देखनेमें अच्छी चमकदार थीं। बस हमारे नौजवान लगे धड़ाम-धड़ाम हिन्दू धर्मकी नावपरसे कूदने और लगे उन नई-नई लुभावनी नावोंपर चढ़ने। यह धर्म ऐसी चारदीवारीसे घिर गया था कि उसको फाँदना कठिन था और फाँदनेके बाद भीतर आना तो अत्यन्त असम्भव था। बड़ा कठोर दबदबा था। इसलिये अंग्रेजी पढ़े-लिखे कुछ लोगोंने हिन्दू धर्मको तिलाञ्जलि दी और अंग्रेज़ी रङ्गमें ऐसे रँगे कि खाना, पीना, उठना, बैठना, बोलना, चालना सब अंग्रेज़ी हो गया। पछवाँ हवाका ऐसा झोंका आया कि इन नये पौधोंको उड़ा ले गया। इतना ही नहीं, वे अपने बाप दादोंके धर्मको कोसने लगे, अपने साहित्यमें दोष निकाल लगे, और आर्य्य संस्कृतिकी जड़ उखाड़नेके लिये कमर कसकर तैयार हो गए।

पाठशालाओं और मकतबोंसे लोग उकता उठे। पाधाओं और मौलवियोंके डण्डोंने पहलेसे ही लोगोंको डरा रक्खा था। अंग्रेज़ी स्कूल खुलते ही लोग उन्हीं की ओर दौड़ पड़े। उस समय एण्ट्रेन्स परीक्षा पास करके लोग धरतीपर पैर न रखते थे। समझते थे कि वे किसी दूसरे लोकके रहनेवाले हैं। सन् १८५६ ई० में कलकत्ते, बम्बई और मद्रास में विश्वविद्यालय स्थापित हो गए थे। अनेक कौलेज् भी खुल चुके थे। उस समय कलकत्तेमें एक हिन्दू कौलेज् था जिसमें नामी अध्यापक डिरोज़िया महोदयका बड़ा बोलबाला था। वे पश्चिमीय साहित्य और दर्शनके बड़े विद्वान् थे। उन्होंने कुछ ऐसी घूँटी पिलाई कि हिन्दू विद्यार्थी बड़े मनमाने हो गए, हिन्दू धर्ममें मीनमेख निकालने लगे, यहाँतक कि उन्होंने कौलेज्से "पार्थिनन" नामका एक पत्र निकाला जिसमें हिन्दू धर्मकी निन्दा भरी रहती थी और जिसे पीछे कौलेज्के अधिकारियोंने बन्द भी कर दिया। इतना ही नहीं, यहाँके लड़कोंने अपना खान-पान भी बदल दिया और मांस-मदिराके भक्त बन गए। उनकी यह कुचाल देखकर लोग डर गए और अपने लड़कोंको अंग्रेज़ी पढ़ानेमें सकुचाने लगे। उधर जब प्रश्न उठा कि शिक्षा देशी भाषामें दी जाय या अंग्रेज़ीमें तो बड़ी तू-तू-मैं-मैं मची। कोई इधर था तो कोई उधर। लोर्ड मेकौलेने डङ्केकी चोट कह दिया कि 'योरोपके किसी भी अच्छे पुस्तकालयकी एक आलमारी हिन्दुस्थान और अरबके सारे साहित्यके बराबर है।' एक ही उदाहरणसे वह समय आँखके आगे आजायगा। माइकेल मधुसूदनदत्त डिरोज़िया महोदयके रङ्गमें रँग गए और जनेऊ उतारकर ईसाको पूजने लगे। उन्होंने सन् १८६१ में मेघनाद-वध काव्य लिखा जिसमें उन्होंने राक्षसोंका गुन बखाना है और लक्ष्मणजीको जी भरकर कोसा है। बस इसीसे उस समयके जवानोंका मन आँक लीजिए।

उस समय तक राजा राममोहनरायका ब्रह्म-समाज फल-फूल चुका था। श्रीरामकृष्ण परमहंसने अपना वेदान्तरस बरसाना आरम्भ कर दिया था। स्वामी दयानन्द सरस्वती भी अपने गुरु स्वामी विरजानन्दजीको गुरुदक्षिणा देकर वैदिक धर्मका झण्डा लेकर निकल पड़े थे। हिन्दू धर्म बड़े सङ्कटमें था। पर बड़ी कठिनतासे, पुराने डाँड़को थामे हुए वह आँधीके सभी झोंके सहता हुआ भी खड़ा रहा।

ईस्ट इण्डिया कम्पनीने हिन्दुस्तानी हस्त-कौशल और व्यापारके अँगूठे काट लिए। वह लुञ्ज हुआ पड़ा कराह रहा था। उसमें न तो अपने उठनेका दम रह गया, न कोई उसे सहारा देने-वाला ही था। जब जब उसने उठनेका जतन किया तब तब उसे डण्डा दिखाकर लिटा दिया गया। सन् १८५१में अमेरिकाकी भी लड़ाईकी आग तापनेकी धुन हुई। वहाँके उत्तरी और दक्षिणी प्रान्तोंमें घमासान लड़ाई हुई। लङ्काशायरके रूईके पुतलीघरोंको इससे गहरा धक्का लगा, क्योंकि उनकी रूई वहींसे आती थी। प्रेमचन्द रायचन्द और प्रसिद्ध पारसी जमशेदजी नसरवानजी ताताने इस औसरसे लाभ उठाया और यहाँ से रूई

भेजकर इक्यावन करोड़ रुपये कमाए। पर पाँच बरसमें ही वह लड़ाई बन्द हो गई और इन लोगोंको बड़ी हानि उठानी पड़ी। पहली जुलाई सन् १८६५ ई० बम्बईके इतिहासमें काला दिन समझा जाता है। सहस्रों धनी निर्धन हो गए और निर्धन भिखारी बन गए। किन्तु फिर ताताने रूईका व्यापार चलाया और विलायतसे काम सीखकर यहाँ पुतलीघर खोल दिए।

यह थी भारतकी दशा संवत् १९१८ में—सन् १८६१ में।

अब फिर प्रयागमें चले आइए। वहाँ चौकके दक्खिनकी ओर एक मुहल्ला है जो भारतीभवन कहलाता है। उस समय इसका नाम सूर्यकुण्ड या लालडिग्गी था। इसी मुहल्लेमें एक नाला था और उसके पास कुछ ब्राह्मणोंके घर खड़े थे, जिनमें-से कुछ तो वैसे ही थे, जैसे अब भी नए ढङ्गके पक्के मकानोंके बीचमें अपनी पुरानी स्मृति लिए हुए अपनी अन्तिम घड़ियाँ गिनते हुए खड़े हैं। मुहल्लेके दक्खिनकी ओर पीपल और बेरका जङ्गल था जहाँ हाथीवान लोग अपने हाथियोंको पीपलके पत्तोंका भोज देनेके लिये लाया करते थे। अब भी उन पुराने पीपलके पेड़ोंमें से कुछ, नवीन सभ्यताके कुल्हाड़ेसे जान बचाकर अपने भावी विनाशके भयसे काँपते हुए पक्के मकानोंसे घिरे खड़े हैं।

प्रयागमें उस दिन कड़ाकेका जाड़ा पड़ रहा था। सञ्झा फूल चुकी थी। लोग दिया-बत्ती करके घरोंमें बैठे आग ताप रहे थे। उसी दिन इसी मुहल्लेमें पौष कृष्णा अष्टमी, बुधवार सम्वत् १९१८—२५ दिसम्बर सन् १८६१ ई० को—ठीक उसी दिन जब १८६१ वर्ष पहले बैथलहममें साधु महात्मा ईसा पैदा हुए थे—पण्डित ब्रजनाथ व्यासजीके घर पराधीन जन्म-भूमिकी पीड़ा लेकर, भूखे देशवासियोंकी व्यथा लेकर, और धर्मका सच्चा प्रकाश लेकर सौभाग्यवती मूनादेवीजीकी गोदमें सन्ध्याको ६ बजकर ५४ मिनटपर एक बालक उत्पन्न हुआ, जिसका नाम रक्खा गया मदनमोहन।

मल्लई ब्राह्मण

जब तक्षशिलाका ज्ञानदीपक खैबर के दर्रेसे आनेवाली आँधियोंने बुझा दिया और बेचारा नालन्दा अपने ग्रन्थोंका अपूर्व भाण्डार लिए हुए आगमें जल मरा, तब भी हिन्दुस्थानने किस जतन और लगनसे अपनी पुरानी विद्या और अपने ज्ञानको बचाए रक्खा, यह कम अचरजकी बात नहीं है। जब तलवारकी धारपर चोटी और जनेऊ चढ़ाए जा रहे थे, जब विदेशी भालोंकी नोकोंपर कायरोंने अपने प्यारे धर्मको शूली देनेमें भी लाज न की, तब भी हिन्दुस्थानमें ऐसे लोगोंकी कमी नहीं थी जिन्होंने यही साँसत सहकर, दुःख भोगकर, विपदा झेलकर, राम और कृष्णके नामकी माला अपने कण्ठमें कसकर बाँधे रक्खी। काशी, काश्मीर और मालवामें हिन्दुओंका राज उठ जानेपर भी, उनके मन्दिरोंके कंगूरोंमेंसे मस्जिदकी मीनारें निकल आनेपर भी उन्होंने हिन्दूपनको कसकर पकड़ रक्खा। दाँतोंके बीचमें जीभके समान, सैकड़ों बवण्डरों और प्रभंजनोंको झेलकर भी ये सिरपर चुटिया रक्खे, गलेमें एक जनेऊ डाले पुराने प्रकाशकी बिखरी हुई किरणोंको अपने कण्ठमें लिए हुए कहीं-कहीं अब भी दिखाई पड़ जाते हैं। पर बीसवीं सदीका बिजलीका प्रकाश उन्हें कब-तक जीने देगा, यह विचारणीय है।

चार सौ बरस पहलेकी कथा है। कबीरदासने कहा था—'देस मालवा गहिर गँभीर, पग-पग रोटी डग-डग नीर'। सचमुच यही बात थी। मालवाके खेतोंमें सोना उगता था। सबके दाँत मालवापर गड़े हुए थे। भोज परमारने धारमें संस्कृत विद्या सीखनेके लिये एक सरस्वतीभवन विद्यालय खोला था, जिसके खँडहर बड़ी करुणासे आज भी कमाल-मौला मस्जिदकी मीनारोंमेंसे झाँक रहे हैं। सब प्रकारसे मालवा सुखी था, फिर भला उसकी बढ़ती, मतवाले लुटेरोंकी आँखोंमें क्यों न खटके! पर जब-तक हिन्दू राजा एक दूसरेकी बाँह पकड़कर खड़े रहे तबतक बाहरी धक्के उन्हें न हिला सके, किन्तु जिस दिन उन्होंने हाथ छुड़ाकर एक दूसरेपर हाथ छोड़ना आरम्भ कर दिया उसी दिनसे हिन्दूसाम्राज्य-में भूकम्प आने लगे और एक-एक राज्य पके हुए फलके समान टप-टप गिरने लगा। हिन्दुस्थानके इतिहासमें ये नई घटनाएँ नहीं थीं।

पर हम जिस दिनका स्मरण दिला रहे हैं उस दिन मालवाका भाग्य हिन्दू राजाके हाथमें था। बैठे बैठे एक दिन उन्हें यह सनक चढ़ी कि ब्राह्मणोंके दोनों दलोंको एक पंगतमें बैठाकर भोजन करावें। इनमें एक थे पञ्चगौड़, दूसरे थे पञ्च-द्राविड़। ये दोनों ही ब्राह्मण, पर उनमें रोटी-बेटीका व्यौहार न था। वे एक दूसरेको बुरा और नीचा समझते थे, एक दूसरेकी छायासे डरते थे। पर सचमुच बात यह थी कि दोनोंके रहन-सहन, खान-पान, बोल-चालमें आकाश-पातालका अन्तर था। एक सिन्धु-गङ्गाके हरियाले मैदानमें पले थे, दूसरे दक्खिनके पठारमें। इतना ही नहीं, पञ्च-गौड़ोंके साथ भगवान्ने भी कुछ पक्षपात किया था। वे सुन्दर थे, सुडौल थे और आर्योंकी बपौती पाए हुए थे। फिर भला वे द्रविड़ोंके साथ बैठना-उठना और खान-पान कैसे सह सकते थे। निदान इसके विरोधी ब्राह्मण अपना टण्ट-घण्ट बाँधकर अपनी जन्म-भूमिको नमस्कार करके जिधर देखा उधर चलते बने, क्योंकि पानीमें रहकर वे मगरसे बैर नहीं करना चाहते थे। सचमुच वैसे नेमके पक्के

थे वे ब्राह्मण जिन्होंने अपनी आन और अपने संस्कार बचाए रखनेके लिए अपनी जन्मभूमि, अपने बाप-दादोंकी धन-धरतीको भी लात मार दी। इस युगके लोग ऐसी बातें सुनें तो सुनकर हँस दें और कहें कि ऐसा क्या पागल कुत्तेने इन्हें काटा था कि इतनी सी बातके लिये अपना धनधाम सब छोड़कर चल दिए, पर जो अपनी आन और अपने नेमका मोल आँक सकता होगा वह इन ब्राह्मणोंके त्यागकी बड़ाई किए बिना नहीं रहेगा।

इन्दौरके पास एक कोड़िया या कुरहरा नामका गाँव था। वहाँ श्रीगौड़ ब्राह्मणोंकी बड़ी भारी बस्ती थी। उन्हें भी न्यौता मिला था और उन्होंने भी राज छोड़नेका सङ्कल्प कर लिया। इनके दो-तीन कुटुम्बोंके आठ दस ब्राह्मण पूरबकी ओर चल दिए। उन दिनों सड़कें नहीं थीं, जो थीं वे भले-मानुसोंके लिये न थीं। उन सड़कोंपर चोर-डाकुओंका ही राज्य था, दोनों ओर जङ्गल पड़ते थे। जङ्गलोंमें गोंड और भील थे जो प्राण लेनेमें किसीका सङ्कोच नहीं करते थे। धनुषपर बाण चढ़ा लेनेपर बस वे यही देखते थे कि लक्ष्य ठीक बैठता है या नहीं। पर लक्ष्य कौन बन रहा है यह जाननेकी न तो उन्हें बुद्धि ही थी और न शिक्षा। ये बेचारे कुरहरेके ब्राह्मण भी इन्हीं भीलोंके हाथमें पड़ गए। पर कुछ भगवान्‌की कृपा ही समझनी चाहिए कि ये इन भीलोंके निर्दय हाथोंसे छूट निकले। पर इनका छुटकारा सेंतमें ही नहीं हुआ। उन्हें यह वचन हारना पड़ा कि उनके कुलके सब मङ्गल कामोंमें भैरवजीकी पूजा होगी और तभीसे पूरबकी ओर आए हुए सभी श्रीगौड़ोंके घरमें सब शुभ कामोंमें कुल-देवताका मन्त्र "कारे गोरे कुरहरेके भैरो" अबतक प्रचलित है। अपने पुरखोंके दिए हुए वचनोंका जो अबतक पालन हो रहा है, इसका श्रेय श्रीगौड़ोंकी गृह-लक्ष्मियोंको ही दिया जा सकता है। मध्यप्रान्त और मालवासे ओर रहनेवाले सभी श्रीगौड़ ब्राह्मणोंमें मंत्रका प्रचार है।

हाँ, तो ये ब्राह्मण अपने कुरहरा या कोड़िया गाँवसे पूरब की ओर चले और बढ़ते-बढ़ते पटने तक पहुँच गए। बहुत दिनोंतक मगधकी राजधानीमें डटे रहनेसे इनका कुटुम्ब बढ़ा, यश बढ़ा और उसके साथ-साथ फिर इनका फैलना भी आवश्यक हो गया। बड़ी बात तो यह थी कि ये लोग केवल पूजा-पाठ करनेवाले साधारण बाँभन मात्र नहीं थे। इन्होंने कड़ी तपस्या करके विद्याधन कमाया था और जब विद्याके साथ साथ किसीमें विनय और सदाचार हो तब तो सोनेमें सुगन्ध समझनी चाहिए। बस ये विद्वान्, कर्मनिष्ठ, तपस्वी ब्राह्मण पुजने लगे। एक मिश्रजी,—नाम तो ज्ञात नहीं—इनमें से कुछको प्रयागकी ओर ले आए, जिनमेंसे कुछ मिर्ज़ापुर में जा बसे और कुछ त्रिवेणीपर डेरा जमाकर बैठ गए। मिर्ज़ापुरमें अभीतक इन ब्राह्मणोंके सौ-डेढ़ सौ घर होंगे और प्रयागमें तो अकेले भारती-भवन मुहल्लेमें ही इनके लगभग पचास घर हैं। नौकरी-चाकरीमें लग जानेके कारण अब तो ये और भी स्थानोंमें फैल गए हैं। इनमेंसे कुछ चतुर्वेदी (चौबे), कुछ दुबे और कुछ व्यास कहलाते हैं।

मिर्ज़ापुरमें जो श्रीगौड़ ब्राह्मण पहुँचे उनमेंसे तीन घरानोंने अपनी बँभनई छोड़कर व्यापारपर ध्यान दिया। लक्ष्मी इनपर प्रसन्न हो गई, और इनके घरोंमें सोना बरसने लगा। पर प्रयागमें जो ब्राह्मण गए वे विद्वान् भक्त ब्राह्मण थे, कथा-वार्त्ता कहते थे, विद्यार्थियोंको पढ़ाते थे और भगवद्भजन करते थे। सन्तोष ही उनका धन था, व्यापारमें रुचि नहीं थी, विनयके पुतले थे और दूसरेके आगे हाथ फैलानेका पाठ नहीं सीखा था, इसलिये लक्ष्मी तो इनके घर कभी न आई, हाँ सरस्वतीने इनके घरमें अपना मन्दिर बना लिया। ये मालवासे आए थे इसलिये ये लोग मलई या मलैया ब्राह्मण कहलाने लगे।

बड़ोंका प्रसाद

प्रयागके श्रीगौड़ ब्राह्मणोंमें भारद्वाज गोत्री चतुर्वेदी श्रीविष्णु प्रसादके पुत्र पण्डित प्रेमधरजी 'परमभागवत' हो गए हैं। तड़के पौ फटनेसे पहले अँधेरे मुँह उठकर गङ्गा-स्नानको जाना और आना तथा दिन-रात राधा-कृष्णकी पूजा-उपासन करना यही उनका व्यवसाय था। कहना-सुनना, बोल-चाल, लेन देन उनका सब व्योहार कन्हैयासे ही था। कभी कपूर जलाकर वे कन्हैयाकी आरती उतारते तो कभी मस्त होकर भगवानके सामने नाचने लगते—कभी माला लेकर राधा-कृष्ण जपते तो कभी भावमें डूबकर स्तोत्र-पाठ करते। राधा-कृष्ण ही उनके सब-कुछ थे। उनके कन्हैयाकी मूर्त्ति कोई साधारण नहीं है। डेढ़ हाथ ऊँची, साँवले रङ्गकी ऐसी सुन्दर मूर्त्ति तो गोकुल वृन्दावनमें भी न होगी। सचमुच कृष्णकी महिमा वही समझ सकता है जो उनके रङ्गमें रँग गया हो।

पण्डित प्रेमधरजीके श्री राधाकृष्णकी मूर्त्ति।

या अनुरागी चित्त की, गति समुझै नहिं कोय।
ज्यौं-ज्यौं बूड़ै श्याम रँग, त्यौं-त्यौं उज्वल होय॥

एक दिन किसी दुष्टने यह मूर्त्ति ले जाकर कुएँमें फेंकदी। प्रेमधरजी लौटे तो देखा मूर्त्ति लुप्त। पछाड़ खाकर गिर पड़े, बच्चोंके समान रोने लगे और खाना-पीना छोड़कर मनमारे बैठ गए, जैसे उनका सर्वस्व लुट गया हो। सच-मुच कृष्ण उनके सर्वस्व थे भी तो। उसी मूर्त्तिके सहारे तो उनकी जीवन-चर्य्या थी। वही नहीं रही तो फिर संसारमें उनका रहा ही क्या। जब तीन दिनतक निराहार बीत गए तो रातको भगवान्ने सपना दिया कि हम कुएँमें पड़े हैं निकाल लो। अन्तमें कुएँमेंसे मूर्त्ति निकली तब कहीं प्रेमधरजीने जलपान किया। ऐसे अनन्य भक्त थे वे राधाकृष्णके।

चारों ओर जङ्गल तो था ही। एक दिन एक सिंहके धुरे मह आए। वह तड़के निकला और उनके

मुहल्लेमें घुसकर बैठ गया। पण्डित प्रेमधरजी जब गङ्गास्नानसे लौटे तो देखा कि भीड़ लगी है। किसीका साहस नहीं होता था कि घरके भीतर पैर रक्खे। लोगोंके लाख रोकने और मना करनेपर भी वे अपना कमण्डलु लिए हुए निडर होकर भीतर पहुँचे तो देखा कि एक बड़ासा सिंह बड़े तेजके साथ वहाँ चुपचाप बैठा हुआ है। इन्हें देखकर वह न तो गुर्राया न झपटा। पण्डित प्रेमधरजीकी सौम्य सात्विक मूर्त्तिके आगे उसकी पञ्जा ऐंठी पड़ गई। वह सिंह सचमुच बिल्ली बन गया। प्रेमधरजी आगे बढ़े और उसके खुले मुँहमें गङ्गाजल डाल दिया माना वह सिंह अपनी मुक्तिकी लालसासे ही वहाँ आया हो। उसे गङ्गाजल देकर प्रेमधरजी बाहर निकले। फिर क्या था। उन्हें जीता जागता लौटते देख लोगोंका साहस बढ़ गया और रात की रातमें बाहर इकट्ठे हुए लोगोंने लाठियोंसे उस सिंहका कचूमर निकाल दिया।

पण्डित प्रेमधरजी कितने बड़े भक्त थे यह तो एक इसी बातसे प्रकट हो जाता है कि उन्होंने १०८ दिनमें भागवतका १०८ बार पारायण किया था। पण्डित प्रेमधरजीने चौरासी बरसकी बड़ी आयु पाई। संसारसे विदा लेनेके दिन उन्होंने अपने सब कुटुम्बियोंको आदेश दिया कि हमें गङ्गा किनारे ले चलो। सारा परिवार प्रेमधरजीको लेकर गङ्गातटपर जा पहुँचा। वहाँ स्नान ध्यान करके प्रेमधरजी पद्मासन लगाकर बैठ गए। थोड़ी ही देर पश्चात् उस वृद्ध तपस्वी शरीरको चिताकी अग्निमें प्रज्वलित होनेके लिए छोड़कर उनका दिव्य आत्मा सदाके लिये राधाकृष्णमें लीन हो गया।

पण्डित प्रेमधरजी पाँच भाई थे। पण्डित साधोधर अद्वितीय वैयाकरण थे, पण्डित मुरलीधर साधु हो गए, पण्डित वंशीधर संस्कृत साहित्यके धुरन्धर पण्डित थे, पण्डित बालाधर अद्वितीय ज्योतिषी थे। पण्डित प्रेमधरजीके चार सन्तान हुईं— लालजी, बच्चूलालजी, गदाधरजी और ब्रजनाथजी। पं० ब्रजनाथ चतुर्वेदी अपने परम भागवत पुत्र निकले। आपने पिताजीसे उन्होंने भव्य सुन्दर शरीर पाया, विमल बुद्धि पाई और राधाकृष्णकी अनन्य भक्ति पाई। और उनके पिताके पास था ही क्या? सदाचारी ब्राह्मण अपनी सन्तानको इससे अधिक और दे ही क्या सकता था? इस महानिधिके साथ-साथ पण्डित ब्रजनाथजीने संस्कृत विद्याको बड़े परिश्रम और लगनसे अपनाया और संस्कृतके अच्छे पण्डित हो गए। सदाचार, भगवद्भक्ति और विद्या, यही उनका धन था और एक घर था वह भी बहुत बड़ा नहीं कहा जा सकता, जिसमें वे अपने चार भाइयोंके परिवारके साथ कोठरियाँ बाँटकर रहते थे।

पण्डित ब्रजनाथजीका घर। इसीमें मालवीयजीने जन्म लिया था।

पण्डित ब्रजनाथजीने अपना कुछ बचपन ननिहालमें ही बिताया और सच पूछिए तो संस्कृत

विद्याका कुछ धन उन्होंने ननिहालसे भी पाया था। चौबीस पच्चीस वर्षकी नई जवानीमें ही वे व्यास बन गए और भागवतकी कथा कहनी प्रारम्भ
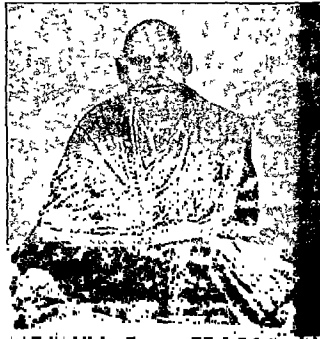
परम भागवत पण्डित प्रेमधर चतुर्वेदीके पुत्र पण्डित ब्रजनाथ व्यासजी। मालवीयजी इन्हींके तीसरे पुत्र थे।

की। सुडौल सुन्दर देहके साथ-साथ उन्हें मधुर कण्ठ भी मिला था। जब बोलते थे तो मानो मिश्री घोलते थे। एक तो मीठी बोली और फिर ब्रज भाषा—कोयल और बसन्त—बस सुननेवाले रह हो जाते थे। रीवाँ, दरभङ्गा और काशीके महाराजाओंने उनका बड़ा सम्मान किया। कितने ही रजवाड़े इन्हें गुरु मान चुके थे। वे वंशी बजाकर जब गाते थे—

गावो मधुरा गोपा मधुरा यष्टिर्मधुरा सृष्टिर्मधुरा।
दलित मधुरं कलित मधुर मधुराधिपतेरखिलं मधुरं॥
हृदय मधुर गमन मधुरं वचन मधुर चरित मधुर।
वलितं मधुर चलित मधुर भ्रमित मधुरं दलित मधुर॥
अधर मधुरं वदनं मधुरं नयनं मधुर वसनं मधुरं।
हसितं मधुरं कलितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरं॥

—तो मधुका ऐसा सोता बहता था कि श्रोतागण मन्त्रमुग्ध होकर नाच उठते थे। उनकी कथा भावमय होती थी—कभी हँसते थे कभी रोते थे—कभी आवेश था तो कभी शान्ति थी। जान पड़ता था कि नाट्य-शास्त्रके सारे रस पण्डित ब्रजनाथ व्यासजीके रूपमें साकार होकर विराजमान हैं। नये-नये दृष्टान्तोंसे सजाकर शान्त, गम्भीर, तन्मय भावसे जब वे भगवान्‌की कथाका रस बाँटते थे उसका वर्णन कौन कर सकता है:—गिरा अनयन, नयन-बिनु बानी।

वे मीठा तो बोलते ही थे, पर सन्तोषी भी पूरे थे। उन्होंने कभी किसीके आगे हाथ नहीं फैलाया। जो कुछ कथापर चढ़ गया उसे तो स्वीकार कर लिया, पर किसीसे दान नहीं लिया। मृदुभाषिताने क्रोधको और सन्तोषने लोभको उनके पास फटकने न दिया और इसीलिये इतने बड़े परिवारको लेकर भी वे सुखी रहे। वे पण्डिताऊ ढङ्गका कलीदार अङ्गा पहनते और चौगोशिया टोपी या पगड़ी सिरपर रखते थे। गलेमें दुपट्टा पड़ा रहता, जिसपर जाड़ेके दिनोंमें एक दुशाला डाल लिया करते थे। बाहरसे आनेपर वे बाहरी कपड़े उतारकर एक ओर रख दिया करते थे। एक बार ऐसा हुआ कि वे पाठ कर रहे थे। अचानक एक अंग्रेज उधरसे आ निकला और उसने इनसे कुछ प्रश्न किया। ये मौन भावसे पाठ करते रहे, उसका कुछ उत्तर न दिया। इसपर उसने इन्हें बेंतसे छू दिया। वे तत्काल घर वापस आए और गोबर मलकर सचैल स्नान करके फिर पञ्चगव्य, पञ्चामृत ग्रहण करके उन्होंने अपनी शुद्धि की। इतने नेमके पक्के थे पण्डित ब्रजनाथजी।

सौभाग्यकी वर्षा जब होने लगती है तो वह भरपूर होती है। पण्डित ब्रजनाथ व्यासजीका विवाह सहजादपुरमें हुआ। सौभाग्यसे इनकी धर्मपत्नी श्रीमती मूनादेवीजी बड़ी सरल और कोमल हृदयवाली मिलीं। अड़ोस-पड़ोसकी जो सेवा बन पड़े कर देना और सबसे प्रेमसे बोलकर बड़ी शान्तिसे सारे घर-भरका काम देखना यही उनका काम था। वे किसी को दुखी देख ही नहीं

सकती थीं और इसीलिये उनकी उदारता निस्सङ्कोच भावसे हर घडी सेवाका अवसर ढूँढती रहती थी। उन्होंने किसीको निराश नहीं किया। मुहल्ले भरके बच्चे उनके बच्चे बन गए थे। सबको प्यारसे बुलाना, बैठाना, पुचकारना, कुछ खिला पिला देना—बस बच्चे अपनी अपनी माँ भूल गए थे।
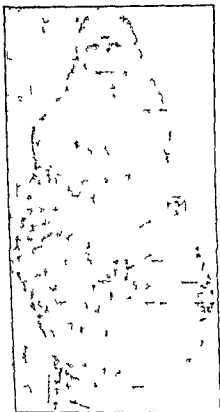
पण्डित व्रजनाथ व्यासजीकी धर्मपत्नी तथा मालवीयजीकी माता श्रीमती मूनादेवीजी

सचमुच ऐसी माँ पानेके लिये बडा भाग होना चाहिए। पण्डित व्रजनाथजी भी जो कुछ कथामें पाते थे सब उन्हें सौंप देते थे। सारी गृहस्थी वे ही सँभालती थीं।

पण्डित व्रजनाथजीको चौवन वर्षकी अवस्थामें रोगने धर दबाया और ऐसा पकडा कि फिर वे बाहर न जा सके। यद्यपि पाँच महीनेमेंही इन्होंने रोगसे छुट्टी ले ली, किन्तु पुरानी शक्ति न लौट पाई। तबसे लेकर सतहत्तर वर्षकी अवस्थातक वे बराबर भागवत, रामायण आदि ग्रन्थोंका अध्ययन और उनकी मनोहर व्याख्या करते रहे। उन्होंने एक भक्तिप्रतिपादक 'सिद्धान्तदर्पण' नामक ग्रन्थ भी लिखा था, जो सन् १९०६ ई० में अभ्युदय प्रेसद्वारा उनके तीसरे पुत्र मदनमोहनने प्रकाशित कराया। लगभग साठ वर्षकी अवस्थामें उनकी आँख बिगड गई। लखनऊके कर्नल एण्डर्सनने उनकी चिकित्सा की। कर्नलने कहा कि 'आजतक इतनी अच्छी आँख सुधराई किसीकी नहीं हुई। सावधानीसे रहना, हवना डालना मत।' दो घण्टे पश्चात् प्यास लगी। आप उठकर पानी पीना चाहते थे पर आपके पुत्र श्यामसुन्दरके रोकनेपर आपने पडे पडे पानी पी लिया। पर उनकी धार्मिक भावना सन्ध्याको खटिया पर पडे हुए शौच करना न सह सकी, अतः वे उठकर गए और नित्य कर्म किया और थोडीसी नित्यके अनुसार भाँग भी ली। यह सब कुछ होते हुए भी उनकी आँख ठीक उतरी।

डाक्टरके मना करनेपर भी उन्होंने अपना पढ़ना लिखना न छोडा। पिछले दिनोंमें उनकी धारणाशक्ति कम हो गई थी। उन्हें यह भी स्मरण न रहता था कि भोजन किया है या नहीं। सुख और दुःख दोनों उनके लिये समान हो गए। अपने बडे पुत्रकी मृत्यु सुनकर वे 'हरिइच्छा' कहकर रह गए। उनके मुखपर किसी प्रकारका शोक या दुःख नहीं दिखाई दिया। अन्तमें सन् १९१० ई० में सतहत्तर वर्षकी अवस्थामें उन्होंने भी गोलोककी शरण ली।

भगवान्‌की भक्तिका प्रसाद यदि सचमुच किसीको प्रत्यक्ष देखना हो तो वह मालवीय परिवारको देखे। बडाभागी परिवार—पुत्र पुत्रियाँ, नाती पोते, घरमें दुधारू गाएँ—सभी प्रकारका सुख है। जिसे कहते हैं—'दूधों नहाओ पूतों फलो' यह आशीर्वाद व्रजनाथजीको साक्षात् रूपसे मिल गया था।

पण्डित व्रजनाथजीके छः पुत्र और दो कन्याएँ हुईं। क्रमसे उनके नाम हैं—लक्ष्मीनारायण,

सुंदरदेई, जयकृष्ण, सुभद्रा, मदनमोहन, श्यामसुन्दर, मनोहर, और विहारीलाल।

सबसे बड़े पुत्र लक्ष्मीनारायणजीने महाजनीकी शिक्षा पाई थी। कुछ दिन प्रयागके लाला मनोहरदासके यहाँ मुनीम रहे। थोड़े दिन पीछे इसे छोड़कर अपना स्वतन्त्र आढ़तका काम करने लगे और अन्ततक यही करते रहे। इक्यावन वर्षकी अवस्थामें बद्रीनाथ यात्राको गए। वहाँसे आनेपर 'पर्वत-संग्रहणी' हो गई और उसीमें तीन-चार महीनेके पश्चात् आपका शरीर लाभ हो गया।

जयकृष्णजी थोड़ी संस्कृत और अंग्रेजी जानते थे। रेलवेके डाक-विभागमें नौकर थे। इनको बचपनसे ही व्यायामका व्यसन था। कुश्ती बहुत अच्छी लड़ते थे, सङ्गीतमें बड़ी रुचि थी, सितार बहुत अच्छा बजाते थे। कहते हैं कि सितारमें इतना हाथ तैयार था कि किसीने जादू-टोना कर दिया था, जिससे आपके हाथमें इतना कष्ट हुआ कि दिन रात नींद नहीं आया करती थी और चिल्लाया करते थे। लगभग बीस दिनके पश्चात् भिक्षा माँगते हुए एक साधु आया और उसने पूजा आदि करके उसी दिन उन्हें अच्छा कर दिया था। लगभग इक्यावन वर्षकी अवस्थामें उनका भी शरीरान्त हुआ।

श्यामसुन्दरजीने पहले धर्मज्ञानोपदेश पाठशालामें संस्कृत शिक्षा पाई। फिर थोड़ी अंग्रेजी पढ़ी। पचीस वर्षकी अवस्था के लगभग आपने बोर्ड ऑफ रेवेन्यूके दफ्तरमें नौकरी करना प्रारम्भ किया। सन् १९२१ ई० में पेन्शन ली, तबसे पूजा-पाठ करते रहे और सन् १९४८ में आप भी चल बसे।

मनोहरलालने भी थोड़ी संस्कृत और अंग्रेज़ीकी शिक्षा पाई थी। इनकी बुद्धि बड़ी तीव्र थी और बड़े होनहार थे। विवाह होनेके थोड़े ही दिन पीछे उन्होंने न जाने किस कारण अफ़ीम खा ली। डाक्टर आए। पिचकारी देकर विष निकाला गया। चेतमें लानेका सब उपाय हुए। विष रक्तमें भिद चुका था। मनोहरलाल अपनी नव-विवाहिता वधूको अकेली छोड़कर दूसरे लोकको चले गए। पुलीस पहुँची। मृत्यु-परीक्षाके लिये शव माँगा गया। उस समय सरकारी डाक्टर महेन्द्रनाथ ओहदेदारने कहा—'मिट्टी हमारे ही पास तो परीक्षाके लिये भेजोगे। मैंने परीक्षा कर ली है। मैं प्रमाणित करता हूँ कि अफ़ीम खानेसे मृत्यु हुई है।' तब पुलीस हटी और दाहसंस्कार हुआ। इन भाइयोंमें यही एक जवान मृत्यु हुई थी।

विहारीलालने भी संस्कृत और अंग्रेज़ी पढ़ी थी, पर व्यापारकी ओर इनकी अधिक प्रवृत्ति थी। वे ठेकेदारी किया करते थे और रेलवेके प्रधान ठेकेदारोंमेंसे थे। संग्रहणी होनेके कारण सन् १९२१ ई० में आपका भी स्वर्गवास हो गया।

बड़ी बहनका विवाह मिर्ज़ापुरमें हुआ था। ४८ वर्षकी अवस्था (सन् १९०१) में आपका शरीरान्त हुआ। आपकी अनेक सन्तानें हुई पर कोई जीवित न रहीं।

छोटी बहनको छोटी अवस्थासे ही वैधव्य-दुःख भोगना पड़ा।

मदनमोहनने धर्मात्मा परम भागवत दादा और पिताका अमर प्रसाद पाकर उनकी धार्मिक छाया लेकर उनके सम्पूर्ण गुणोंकी बपौती पाकर जन्म लिया था। पितामह और पिताकी भगवद्-भक्तिका मदनमोहनपर कुछ कम प्रभाव नहीं पड़ा था और इसीलिये सारा भारतीय राष्ट्र पण्डित प्रेमधर और पण्डित ब्रजनाथ व्यासके अमर पवित्र गुणोंके साक्षात् मूर्तिमान स्वरूप मदनमोहनकी उस धवल मूर्त्तिकी ओर ताकता था मानो उसका सारा भविष्य, उसका सारा सुख, उसकी सारी अभिलाषाएँ उसी एक धवल देहमें छिपी हुई हों। धन्य हैं वे पुत्र जिन्हें पण्डित ब्रजनाथजी जैसे पिता और श्रीमती मूनादेवीजी जैसी माता मिलें और धन्य हैं वे माता-पिता जिन्हें मदनमोहन जैसा पुत्र मिले।

होनहार-बिरवा

मदनमोहनके जीवनमें एक बार झाँक लेनेपर कोई भी यह माननेमें न हिचकेगा कि 'मदनमोहन' नाम भी किसी दैवी प्रेरणाका ही फल है। परम भागवत वैष्णव परिवारमें भगवान् कृष्णके नामको छोड़कर भला और कोई नाम टिकने ही क्यों लगा, किन्तु मदनमोहन 'किसी' के भेजे हुए आए थे और इसीलिये इन्हें बड़ा मीठा और कोमल नाम मिला, वैसा ही कोमल जैसा मक्खन और वैसा ही मीठा जैसी मिश्री।

'मदनमोहन'—एक बार मुँहसे मदनमोहन तो कहिए, जान पड़ेगा कि आपकी रसना पवित्र हो गई है, जी हल्का हो गया है और मुँहकी कड़ुवाहट जाती रही है। एक उर्दू कविने एक बार सच कहा था—

> है मदनमोहन मेरी मनकाका मजमूँ।
> क्या अजब इस नाममें जादू भरा है॥

जान पड़ता है पण्डित व्रजनाथ व्यासजी की 'कलितं मधुरम्' की धारामें यह नाम भी आ गया होगा, जिसे लेकर उन्होंने अपने पुत्रकी नाम-प्रतिष्ठा की।

माताकी गोदसे हँस खेलकर बालक मदनमोहनने अपने पैरोंपर खड़ा होना प्रारम्भ किया और धीरे धीरे बालक बड़ा होने लगा। इनके परिवारकी चाल है कि जब घरमें ब्याह पड़ता है तो 'माय' बैठती हैं और सभी बालकोंका मुण्डन हो जाता है। इसी कारण कभी दो वर्षपर, कभी छ महीनेपर या कभी-कभी तीन महीनेमें ही बालक मुँड़ जाते हैं। बस, ऐसे ही एक अवसरपर मदन-
। मुण्डन हो गया।

पण्डित व्रजनाथजीने अपने पुत्रोंको शिक्षा देनेमें यह भूल नहीं की थी जो आजकल अधिकांश लोग किया करते हैं। पुराने पण्डितोंके समान उन्होंने अपने बच्चोंको पहले घरपर ही संस्कृत पढ़ाई, शिष्टाचारकी सीख दी और तब कहीं उन्हें

ऊपर पूज्य मालवीयजी महाराजके प्रथम विद्या-गुरु श्रीहरदेवजी की श्रीमद्भागवतकी पुस्तक है और नीचे उनके ठाकुरजी, उनकी चरणपादुका, शङ्खादि हैं। यह सब सामग्री उनकी उसी पाठशालामे रक्खी हैं, जहाँ मालवीयजीने अध्ययन किया था।

भरकी तीनों पवित्र धाराएँ आकर मिल गई हैं।

अब नींव पक्की हो गई थी। नौ वर्षकी अवस्था हुई। पिताजीने बालकको वटु बना दिया। पिताजी ही प्रथम आचार्य बने, उन्होंने ही सावित्री मन्त्र दिया। कोपीन पहने, पलाशदण्ड लिए, कन्धेपर मृगछाला डाले, हाथमें झोली लिए हुए, मदनमोहनने मातासे जाकर कहा—'भवति भिक्षां मे देहि।' उस समय कौन जानता था कि कोपीन उतार देनेपर भी, मृगछाला और दण्ड फेंक देनेपर भी एक दिन यही वटु बहुत बड़ी झोली लेकर द्वार-द्वार, नगर-नगर सारे राष्ट्रके लिये भिक्षा माँगेगा और 'संसारका सबसे बड़ा भिखारी' कहलायगा। सचमुच किसे विश्वास था कि उस 'भवति भिक्षां मे देहि' के पीछे कितने निर्धन, दीन विद्यार्थियोंकी विवशतासे भरी हुई करुण भिक्षा पुकार छिपी हुई थी? अब मदनमोहन ब्राह्मण बन गए।

बहुतसे दब्बू बालक पाठशालाका नाम सुनकर रो देते हैं, किसीके सिरमें पीड़ा होने लगती है और कोई कोई तो सचमुच रोगी हो जाते हैं। पर मदनमोहन ऐसे बालक नहीं थे। नित्य प्रातःकाल नौ और दस बजेके बीच, लड़के काँखमें पोथी दवाए हँसते कूदते स्कूल जाते थे, नई-नई बातें करते थे, इतिहास और भूगोल, गणित और चित्रकलाका बखान किया करते थे। मदनमोहनके मनमें भी लालसा हुई कि हम भी क्यों न अंग्रेज़ी पढ़ें? पर स्कूलमें फ़ीस लगती थी। जिस परिवारमें दस मुँह खिलाने पड़ते हों और कमानेवाला एक हो और वह भी ऐसा हो जो किसीके सामने हाथ न फैलाता हो, जो कथापर चढ़ जाय उसीपर सन्तोष कर लेता हो और जिसे पाँच रुपए महीनेकी भी आमदनी न हो, वहाँ स्कूलकी फ़ीस और किताबोंके लिये दाम कहाँसे आवे? पहले सरस्वतीजी दीनोंकी कुटियामें रूखी सूखी खाकर भी प्रसन्न हो जाया करती थीं, पर आजकलकी सरस्वतीजी बिना पैसे बात नहीं करतीं। दीनके घर आनेमें उन्हें अब सङ्कोच होता है। जान पड़ता है उनपर भी कुछ पच्छिमका प्रभाव हो चला है।

पर पण्डित ब्रजनाथजीने अपने होनहार बच्चेका मन छोटा नहीं होने दिया और पेट काटकर भी उसे अंग्रेज़ी पढ़ने भेज दिया। जिसके दिन सीधेपर ही बीतते हों उस दीन ब्राह्मण परिवारपर कितना भार पड़ा होगा, इसे वे ही लोग समझ सकते हैं जो ये विपद् झेल चुके हैं! मदनमोहन इलाहाबाद ज़िला स्कूलमें उस समयकी दसवीं कक्षा (सबसे छोटी कक्षा) में भर्ती हो गए। स्कूल में समयसे जाना पड़ता था, पर मदनमोहनको प्रायः देर हो जाया करती थी। इतने बड़े परिवारमें ठीक समयसे भोजन बन कैसे सकता था और फिर ठाकुरजीको भोग लगाए बिना कोई भोजन करे भी कैसे। बेचारे मदनमोहनको मट्ठेके साथ बासी रोटी खाकर स्कूल जाना पड़ता था। कितनी बड़ी तपस्या थी। प्रयागके चौकमें घण्टाघरके पीछे जिस भवनमें आजकल म्युनिसिपैलिटीका कार्यालय है उसीमें पहले ज़िला-स्कूल लगता था। एक अंग्रेज़ गार्डन साहब उसके हेडमास्टर थे। थोड़े ही दिनोंमें इन्होंने स्कूलमें अंग्रेज़ी शब्द विन्यास, उच्चारण और सुन्दर लिखनेमें बड़ी ख्याति प्राप्त कर ली और यह सुन्दर शुद्ध बोलने और सुन्दर लिखनेका अभ्यास उनका अन्त तक बना रहा।

ये पढ़नेमें बहुत मन लगाते थे पर गणितमें कच्चे थे और संभवतः संसारके सभी महापुरुष गणितमें कच्चे रहे हैं, पर परिश्रम करके इन्होंने अपनी कमी पूरी कर ली। इनका छोटासा घर दस बारह प्राणियोंके लिये छोटा ही था। घरपर पढ़नेकी सुविधा नहीं थी। बाल बच्चोंके घरमें कोई चाहे कि बैठकर, मन लगाकर पढ़ ले, यह कैसे हो सकता है। कोई रो रहा है, कोई चिल्ला रहा है, कोई गा रहा है, कोई खेल रहा है—सब अपनी-अपनी मौजमें हैं। फिर भला वहाँ पढ़ाई कैसे हो? इनके मकानके पास ही थोड़ी दूरपर सोहनलालके बागमें इनके एक साथी गङ्गाप्रसाद रहते थे। वहाँ तीन-चार बेरके पेड़ थे, एक कुआँ था और एक कच्ची अटारी थी। बस जहाँ सन्ध्या हुई कि

वे लालटेन और पोथी लेकर वहाँ पहुँच जाते और पढ़ा करते। यह तो नहीं कहा जा सकता कि जितनी पढ़ाई होनी चाहिए थी उतनी होती थी, पर हाँ, घरसे तो अधिक ही होती थी। क्योंकि जहाँ दो विद्यार्थी साथ पढ़ते हों वहाँ आधी गप होती है और आधी पढ़ाई होती है। यही बात वहाँ भी थी। मदनमोहन बात करनेमें तो एक ही थे। इन्हें कोई साथी मिलने भरकी देर थी, फिर तो कोई भी विषय प्रारम्भ होनेके पश्चात् समाप्त थोड़े ही होता था। रातको वहीं पढ़ते थे और वहीं सोते थे। प्रातःकाल उठकर घर चले आया करते थे।

पर इससे यह न समझिए कि मदनमोहन बड़े पढ़ाकू और पोथीके कीड़े थे। वे प्रथम श्रेणीके नटखट, खिलाड़ी और चञ्चल थे। स्कूलसे आते ही किताब कहीं फेंकी, जूते कहीं उतारे, कपड़े कहीं डाले, वह गए, वह गए, मदनमोहन घरसे बाहर। कभी देखो तो गुल्ली-डण्डा खेल रहे हैं, तो किसी दिन कबड्डी हो रही है। व्यायाम भी डटकर किया करते थे, और नित्य अखाड़ेमें मुद्गर घुमाते या डण्ड लगाते थे। अपनी वृद्धावस्थामें भी वे व्यायाम करते रहे।

मदनमोहनका एक गुट्ट था और वे उसके अगुआ थे। स्कूलसे लौटते हुए प्रायः किसी दूसरे दलसे मुठभेड़ हो जाती थी। कभी-कभी तो मौखिक युद्धतक ही बात रह जाती थी, पर कभी-कभी बात बढ़ जाती थी। हाथापाईकी भी नौबत आ जाती थी। पर ये पीछे नहीं हटने थे, डटकर लड़नेवाले थे। ऐसे ब्राह्मण नहीं थे जो मैदान छोड़कर भाग जायँ। होलीके दिनोंमें इनकी कला देखने योग्य होती थी। कई दिन पहलेसे रङ्ग घोले जाते, पिचकारियोंमें गिट्टी बाँधी जाती, राहचलतोंपर किधरसे रङ्ग छोड़ा जा सकता है, ये सब बातें साध ली जातीं, स्थान ठीक कर लिए जाते और लालडिग्गीमें होलीके तीन चार दिन पहलेसे ही पिचकारियाँ चलने लगतीं। पिचकारी भरे सब ताकमें खड़े रहते थे। वह लो, सामनेसे पण्डितजी आ रहे हैं—पिच—पण्डितजी तर हो गए। बहुत बिगड़े। नहा-धोकर आए थे, सब भ्रष्ट कर दिया। इन्होंने ठहाका लगाया। कुछ पूछिए मत, भले मानसोंकी दुर्गति थी। जो उधरसे निकले उसकी बुरे ही दिन समझो। बहुतसे छैले ढाकेका चुनट दार कुर्त्ता और चौगोशिया टोपी देकर निकले। इधर मदनमोहन और उनका दल पिचकारी साधे खड़ा बाट देख रहा था। बस ऐसी पिचकारियाँ चलीं कि वाह वाह! रँगरेज भी क्या खाकर इतने कौशलसे रँगेगा? मजाल क्या कि कोई श्वेत-वेषी बिना छींटा खाए वहाँसे निकल जाय।

होलीकी साँझको बड़ी चहल-पहल रहती थी। मदनमोहनकी धजा निराली ही रहती थी। घुटनों-तक धोती चढ़ाए, कहीं पेड़ काटे ला रहे हैं तो कहीं भटकटैया काट-काटकर आगे लिए चले आ रहे हैं। कहीं किसीका टूटा मोढ़ा पड़ा उठा लिया, किसीकी लकड़ी उठाई, कहीं चारपाईके टूटे पाए मिले उठा लिए। होली है भाई होली है। कुछ पूछिए मत, मदनमोहनने व्रजके मदन मोहनके भी कान काट लिए थे। क्या धूमकी होली मचती थी।

जन्माष्टमीके उत्सवकी कुछ बात ही निराली थी। कन्हैयाके पालनेकी सजावट और ठाकुरजीकी सजावटका काम मदनमोहनपर था। कहीं मालाएँ लगाई जा रही हैं, कहीं छड़ियाँ बन रही हैं, कहीं पालनेकी सजावट हो रही है तो कहीं झाड़ व फ़ानूस झाड़े-पोंछे जा रहे हैं। कहीं गानेवालोंका प्रबन्ध हो रहा है तो कहीं कथाका। एक नया जीवन चारों ओर दिखाई पड़ता था। छठीके दिन तो और भी शोभा बढ़ जाती थी। चारों ओर मोमबत्तियाँ जगमगातीं, सारे आँगन और दालानोंमें गलीचे और चाँदनियाँ बिछ जाती थीं। रातभर गाना-बजाना, कथा-भजन होता, प्रसाद मिलता, पँजीरी बँटती, पञ्चामृत मिलता। वह समय ही कुछ निराला था, बात-बातमें अनोखापन था, काम-काममें मस्ती थी। यही उमङ्ग तो बालकोंमें काम करनेकी प्रेरणा, नया

उत्साह और फुर्ती पैदा करती है और आगे जाकर ऐसे ही चञ्चल, कर्मठ फुर्तीले बालक बड़े कामके निकलते हैं।

यज्ञोपवीत होनेके पश्चात् ये सन्ध्यावन्दन और पूजापाठमें भी बड़ा मन लगाते थे। इनका एक सन्ध्यादल भी था, जो सन्ध्याका सामान लेकर नित्य यमुना-किनारे पहुँचा करता था। एक दूसरा दल था, जो भाषण दिया करता था। बात यह थी कि उन दिनों प्रयागमें एक गिरिजाघर था। स्कूलसे लौटते समय ये देखते थे कि कुछ पादरी खड़े होकर हिन्दू धर्मकी बुराई करते थे और भर पेट गालियाँ देते थे। ये भला कब सहन करनेवाले थे। इन्होंने भी जहाँ अवसर मिला सभा-समाज, मेले-उत्सवमें खड़े होकर व्याख्यान आरम्भ किया। व्याख्यान सामग्रीकी कमी नहीं थी। अपने पूज्य पिताजीकी कथाएँ सुनी थीं—फिर क्या था, हिन्दू संस्कारोंके बीचमें पले हुए ब्राह्मणका आत्मा भला हिन्दू धर्मकी निन्दा सुनकर चुप बैठ जाय, यह कैसे हो सकता था। उन्होंने व्याख्यान दल बनाया, जिसमें कई सदस्य थे, जो इसी प्रकार व्याख्यान देते थे।

जहाँ कहीं सेवाका काम पड़ता वहाँ वे सबसे आगे दिखाई पड़ते। मेले-तमाशोंमें भीड़का प्रबन्ध करना इन्होंने उसी बालकपनमें सीख लिया। एक बार उनके पड़ोसमें व्यासजीके घर आग लग गई। देखते-देखते मदनमोहन पहुँचे और ऊपर चढ़ गए। पचास-साठ घड़े पानी कुएँसे खींच लाए। उस समय आग बुझानेकी कल नहीं थी और नलका प्रबन्ध भी नहीं था। कुआँ और घड़ा यही साधन थे। मदनमोहनके प्रयत्नसे आग बुझ गई।

सन्ध्यावन्दनमें रुचि तो थी ही, एक बार इन्हें गायत्री मन्त्र जपनेकी धुन सवार हुई। ये चुपचाप घरसे भाग जाते और जमुना किनारे बरगद घाटपर एकासन लगाकर गायत्री मन्त्र जपते। इनकी माताजीको बड़ी चिन्ता हुई। उन्हें यह भय हुआ कि कहीं लड़का साधु-सन्यासी न हो जाय। पर मदनमोहन जैसी प्रकृतिका बालक साधुओंके अकर्मण्य, नीरस और व्यर्थ जीवनकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देख सकता था। उनकी माताजीको यह विश्वास हो गया कि उनका भय ठीक नहीं था।

मदनमोहनको सङ्गीतसे बड़ा प्रेम था। यह विद्या तो इनकी निकुलोनिका (पारिवारिक कला) ही थी। पिताजीकी बाँसुरी सुनी ही थी। मधुर स्वर बपौतीमें ही मिला था। इनके परिवारमें स्यात् ही कोई ऐसा बालक हो जिसे सङ्गीतमें रुचि न हो। इन्होंने सितार बजाना सीखा और बहुत ही अच्छा सितार बजाने लगे। बिना सङ्गीत प्रेमी हुए मनुष्यकी उदात्त वृत्तियाँ विकसित भी तो नहीं होतीं। सच पूछिए तो सहानुभूति, समवेदना और दूसरेकी व्यथाका अनुभव उसे ही हो सकता है जिसने एक बार तन्त्रीको छुआ हो। इसी सङ्गीतप्रेमके साथ ये अपने पिताजीसे सूरके पद गाते सुनते थे, अत कवितामें भी रुचि हुई और इन्होंने सितारके साथ बजाने गाने के लिये सूर, मीरा तथा अन्य कवियोंके चुने हुए पदोंका सुन्दर सग्रह बना लिया था।

इस प्रकार शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक शक्तियोंसे ओतप्रोत, होकर वे समाज तथा देशके विस्तृत अखाड़ेमें आ कूदे और ऐसे कौशल दिखाए कि बड़े बड़े अखाड़ियेभी मात हो गए और कितने ही पुराने सरदार इस नये जवान का लोहा मानने लगे। नई उमङ्ग, नया उत्साह और नई आशाओंकी उँगली थामकर मदनमोहन ऊपर चढ़ने लगे और इतने ऊपरतक चढ़ते चले गए कि उनतक पहुँचनेकी बात तो दूर रही, उतनी ऊँचाईको देखकर ही आँखें चुँधियाने लगती हैं। मदनमोहनका कार्य्य क्षेत्र अब बढ़ने लगा।

एक पग आगे

विवाह

आज-कलकी सुधारक मण्डली यदि सुन पाये कि किसीका ब्याह छोटी अवस्थामें ही हो गया तो वह आपेसे बाहर हो जाय और उसे भारतकी दरिद्रता और पराधीनताके सब कारण उसी विवाहमें दिखाई पड़ने लगें। पर भगवान्‌ने जिसे कृपा करके थोड़ी भी बुद्धि दे दी है वह यह अवश्य समझ सकेगा कि पहले भले ही बालकपन में विवाह हो जाते थे, पर संयम इतना कड़ा था कि उसका परिणाम बुरा नहीं होता था। आजकल हम लोग पच्चीस वर्षकी अवस्थामें विवाह करानेका उपदेश तो देते हैं, पर पच्चीस वर्षतक अपनेको तेजस्वी बनाए रखनेके साधन और उसकी शिक्षा नहीं देते। इसका कुफल यह हुआ है कि विवाह तो देरमें होने लगे हैं, पर विवाहके समय हमारे नौजवान मित्रोंके चेहरोंसे जवानी हवा हो जाती है। मनस्तत्त्वके विद्वानोंका कहना है कि यदि मनुष्यकी इच्छा-पूर्तिमें बाधा होती है तो प्रतिक्रिया बड़ी भयंकर होती है और उसीके फलस्वरूप वह पागल होता या आत्महत्या कर बैठता है किन्तु यदि उस इच्छाको उचित धारामें मोड़ दिया जाय तो वह इच्छा उदात्त वृत्तिका स्वरूप धारण कर लेती है। इसी आधारपर सम्भवतः हमारे बड़े लोग बालकोंका विवाह बालकपन और युवावस्थाके सन्धिकालमें कर देते थे कि जिससे उनकी स्नेहधारा एक ही मार्गपर चले, इधर उधर फैलकर नष्ट होनेसे बच जाय।

मदनमोहनके विवाह की एक विचित्र कथा है। वे चौदह-पन्द्रह बरसके रहे होंगे—सुन्दर इकहरे बदनके—अभी मसें भी न भींगी थीं। काली चमकदार आँखें थीं और खञ्जनके समान चपल अक्षोंसे ऐसा प्रतीत होता था मानों बस अब उड़ने ही वाले हों। इनके चाचा पण्डित गदाधरप्रसादजी मिर्ज़ापुरके गवर्नमेण्ट हाई स्कूलमें हेड पण्डित थे। वे साहित्यके धुरन्धर विद्वान्, मृदुभाषी और हँसमुख थे। मदनमोहन प्रायः उनके पास आया-जाया करते थे। एक बार मिर्ज़ापुरमें पण्डितोंकी सभा हो रही थी। आसपासके बहुतसे पण्डित एकत्र हुए थे। किसी विषयपर शास्त्रार्थ हो रहा था। मदनमोहन भी उसी सभामें बैठे हुए थे। बहुत देर तक सुनते रहे फिर उनको भी कुछ बोलनेकी इच्छा हुई। जिसे जनताके बीचमें बोलनेका ढेठ खुल गया हो वह भला चुप कैसे रह सकता है। मदनमोहन खड़े होकर बोलने लगे। कैसी भाषा थी, मानो फूल बरस रहे हों। कितना साधुवाद हुआ। जिसने सुना उसीने बालक मदनमोहनकी पीठ ठोंकी। उसी सभामें मिर्ज़ापुरके पण्डित नन्दराम भी बैठे हुए थे। उन्होंने मदनमोहनको अपना जामाता बनानेका सङ्कल्प कर लिया। बातचीत निश्चय हो गई। मदनमोहनके श्वसुर होनेका सौभाग्य उन्हींको मिला।

पण्डित नन्दरामजीकी तीन पुत्रियाँ थीं। दोका विवाह हो चुका था। सबसे छोटी कुन्दन (कुन्दन) देवी रह गई थीं। इस बातचीतके दो-तीन वर्ष पीछे सन् १८८१ ई० में मदनमोहनका विवाह हो गया। मदनमोहन उस समय कौलेजमें पढ़ रहे थे।

स्कूल और कौलेज्

हमारा संयुक्तप्रान्त उस समय उत्तर-पश्चिमी प्रान्त तथा अवध कहलाता था। तबतक प्रयाग

विश्वविद्यालयका सूत्रपात नहीं हुआ था। इस प्रान्तकी एण्ट्रेन्स परीक्षाका सम्बन्ध कलकत्ता विश्वविद्यालयसे था। इलाहाबाद जिला स्कूल अपने स्थानसे उठकर मलाकापर चला गया और गवर्नमेण्ट हाई स्कूल हो गया। दूर होनेके कारण अब तो मदनमोहनको प्राय नित्य ही देर होने लगी। सन् १८७१ ई० में अट्ठारह वर्षकी अवस्था में मदनमोहनने एन्ट्रन्स परीक्षा पास कर ली।

एण्ट्रेन्स परीक्षा पास करनेके पश्चात् मदन मोहनको कौलेज्में पढ़ने का मन हुआ, पर दारिद्रता मुँह बाए सामने खड़ी थी। किन्तु व्रजनाथजीने साहस न खोया मदनमोहनने म्योर सेण्ट्रल कौलेज् में नाम लिखा लिया। उस समय म्योर सेण्ट्रल कौलेज प्रयागकी पब्लिक लाइब्रेरीके उत्तरस्थित दरभङ्गा कौसिलमें लगताथा। यह सरकारी कौलेज् था और उसके प्रिन्सिपल बड़े नामी विद्वान श्री हैरिसन् थे।

वर्तमान म्योर सण्ट्रल कौलेज प्रयाग।

कौलेज्में पहुँचनपर मदनमोहनके गुणोंका तो विकास हुआ ही, साथ ही उनका कार्य्यक्षेत्र भी बढ़ चला। प्रिन्सिपल हैरिसन्पर इनके देशानुराग, पवित्र जीवन, धीरता और निर्भयताका बड़ा प्रभाव पड़ा और वे इन्हें बहुत मानने लगे।

अभिनता

प्रयागमें उन दिनों एक आर्य्य नाटक-मण्डली थी, जिसमें नगरके प्राय सभी प्रमुख नागरिक सदस्य थे। स्वर्गीय सर सुन्दरलाल भी उन दिनों इसके सदस्य थे। एक बार उस मण्डलीने शकुन्तला नाटक खेला। बड़ी भीड़ हुई। संस्कृतके पण्डितों में एक कहावत प्रचलित है—

काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला।
तत्रापि च चतुर्थोऽङ्कस्तत्रश्लोकचतुष्टयम्॥

कि 'काव्योंमें नाटक सबसे श्रेष्ठ है। नाटकोंमें महाकवि कालिदासका अभिज्ञान शाकुन्तल (शकुन्तला) नाटक सर्वश्रेष्ठ है'—इत्यादि। नाट्य संसारके सर्वश्रेष्ठ नाटककी प्रधान नायिका महाकवि कालिदासकी सर्वश्रेष्ठ कृति शकुन्तलाका अभिनय करना कोई हँसी ठट्ठा नहीं है पर आर्य्य नाटक मण्डलीवालोंने वहाँके नाचघरमें शकुन्तला नाटक खेल ही डाला। घण्टी बजी, परदा उठा। अनुसूया और प्रियम्वदाके साथ जलकी गगरी हाथमें लिए हुए शकुन्तला आई। वह हाव-भाव बस देखने ही योग्य था। आदिसे अन्ततक श्रृङ्गार और करुणाकी उस महानदीमें तैरकर जब दर्शकगण बाहर निकले तो सबकी जिह्वापर एक ही बात थी—'शकुन्तलाका पार्ट अद्वितीय हुआ है।' ऐसी सुन्दरतासे यह अभिनय किया गया था कि सबकी कल्पनामें कई दिनतक 'शकुन्तला' विराजमान रही। यह अभिनय किसने किया था—यह कोई पहेली नहीं थी, कोई रहस्यकी बात नहीं थी। सब लोग जानते थे—उन्हीं व्रजनाथजीके पुत्र मदनमोहनने। इसी प्रकार एकबार कौलेज्में 'मर्चेण्ट औफ़ वेनिस' अंग्रेज़ी नाटक खेला गया। उसमें पोर्शियाका पार्ट मदनमोहनको मिला। उस नाटकके देखनेवालोंका कहना है कि यदि कोई अंग्रेज़ महिला भी उस पार्टको करती तो सम्भवत इतनी सुन्दरताके साथ न कर पाती। जिस समय 'उस' पोर्शियाने दयाके गुणोंका वर्णन करना शुरू किया तो जान पड़ा कि आकाशसे दयाके अमृतकी वर्षा हो रही है और सारा संसार उस अमृतकी एक-एक बूँद पानेके लिए तरस रहा है। मदनमोहन उस समय कौलेज्में पढ़ रहे थे।

मदनमोहनने कौलेज्में एक ड्रैमेटिक सोसाइट

(वाद्‌विवाद-समिति) स्थापित किया, जिसमें आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक विषयोंपर वाद-विवाद हुआ करते थे और इनके मित्रगण भाषण दिया करते थे। सभी लोगोंमें तो इनके समान लगन थी नहीं, पर ये बलपूर्वक सबको पकड़-पकड़कर खींच-खाँचकर ले जाया करते थे।

मदनमोहनका कौलेजका वेश भी वही था जो आज है। वही साफ़ा, वही दुपट्टा, वही अचकन और वही पाजामा। गरमीके दिनोंमें सन्दली दुपट्टेसे इन्हें बड़ा प्रेम था और विशेषतः आपके लिये ही मँगवाया जाता था। हाथमें पहाड़ी डण्डा और पैरोंमें कभी वार्निशदार जोड़े कभी नागला। इनके साफ़ेकी कथा भी कुछ कम मनोरञ्जक नहीं है। पहले तो ये साधारण इलाहाबादी चौगोशिया टोपी लगाते और कलीदार अङ्गा पहनते थे। मिर्ज़ापुरके एक महाई पण्डित दुर्गाप्रसाद बनारसके महाराजाके यहाँ नौकर थे। उनकी सफ़ेद पगड़ी इन्हें बड़ी जँची और तभीसे इन्होंने उस तरहकी पगड़ी बाँधनी प्रारम्भ कर दी। उनकी देखा-देखी अब तो बहुत लोग उस मार्गके पथिक बन गए हैं।

गुरुसे भेंट

मदनमोहनकी सर्वतोमुखी शक्तिने उन्हें पाठ्य-पुस्तकों और कौलेजकी चारदीवारीमें ही बन्दी न रहने दिया। जिसका हृदय विशाल हो जाता है और जो अपना संकुचित क्षेत्र छोड़कर सारे संसारसे नाता जोड़ लेता है, जिसके सुख-दुःख एक व्यक्तिके नहीं वरन् सारे संसारके प्राणियोंके सुख-दुःखमें ओत-प्रोत हो जाते हैं, वह फिर कौलेज की छोटीसी परिधिके भीतर कैसे बँधा रह सकता है। सौभाग्यसे उन दिनों म्योर सेण्ट्रल कौलेजमें संस्कृतके प्राध्यापक महामहोपाध्याय पण्डित आदित्यराम भट्टाचार्यजी थे। मदनमोहन संस्कृत तो पढ़े हुए थे ही, यहाँ आकर उन्हें पण्डित आदित्यरामजीसे पढ़नेका अवसर मिला। पारसको छूते ही सोना बन गए। पण्डित आदित्यरामजी आदर्श गुरु थे। उन्होंने अपने शिष्य मदनमोहनको परख लिया। उन्होंने समझ लिया कि इस मदनमोहनके स्वरूपमें कोई महापुरुष छिपा बैठा है। उन्होंने

मालवीयजीके गुरु पं० आदित्यराम भट्टाचार्यजी

मदनमोहनको उत्साहित करना आरम्भ कर दिया और थोड़े ही समयमें गुरु-शिष्यमें अत्यन्त स्नेह हो गया और यह स्नेह इतना प्रबल हुआ कि पण्डित आदित्यराम भट्टाचार्य केवल कौलेजके गुरु ही नहीं रह गए वरन् वे इनके वास्तविक पथ-प्रदर्शक गुरु बन गए और सच बात तो यह है कि आजके महापुरुष महामना पण्डित मदन-मोहन मालवीयके बनानेमें पण्डित आदित्यराम भट्टाचार्यजीका कुछ कम हाथ नहीं था।

हिन्दू समाज

उस समय प्रयागके महाजनी टोलेके पास ही मुन्शी काशी प्रसाद वकीलके भवनमें ही सन् १८८० ई० में हिन्दू समाजकी स्थापना हुई और वहीं उसकी बैठकें होने लगीं। इस हिन्दू समाजकी

स्थापनामें पण्डित आदित्यराम भट्टाचार्य्यजीका प्रबल हाथ था। मदनमोहन समाजके प्रधान कार्य-कर्त्ताओं में थे। जहाँ किसी बातमें कोई अड़चन पड़ी, झट मदनमोहन उसे अपने हाथमें ले लेते थे और इस कौशलसे उसे सुलझाते थे कि बड़े-बड़े लोग दङ्ग रह जाते थे। मदनमोहनकी इस बातसे कुछ लोग चिढ़ भी गए थे कि यह कलका छोकरा बड़ों-बड़ोंका कान काटनेको तैयार है। इनकी बातोंको लोग 'छोटे मुँह बड़ी बात, समझते थे। पर ये भी अपने अभ्याससे विवश थे। क्या करते, किसी-न-किसी प्रकार काम तो करना ही था। निर्भय होकर ये अपने रास्तेपर चले जाते थे, किसी के कहने सुननेपर कान नहीं देते थे। इनकी सफलताका संभवतः यह भी एक कारण है। इन्हीं दिनों पण्डित अयोध्यानाथजी तथा पण्डित विश्वम्भरनाथजी जैसे देश-हितैषी नेताओंसे मदनमोहन का सम्पर्क हुआ।

मध्य हिन्दू समाज

'हिन्दू समाज'में हिन्दुओंको ऊपर उठाने, अपने बलपर खड़ा होने और अपने मिटाने वालोंसे लोहा लेनेका पाठ व्याख्यानों और वाद-विवादों-द्वारा हो ही रहा था। इधर मदनमोहनने उसीके साथ सन् १८८४ ई० में 'मध्य केन्द्रीय हिन्दू-समाज' के नामसे प्रयागमें एक सभा स्थापित की और दशहरेपर बड़ी धूमधामसे उसका उत्सव किया। दूर-दूरसे उत्तरीय भारतके बड़े-बड़े विद्वान् पधारे, हिन्दू-धर्म और समाजको सुसंघटित करनेके अनेक उपायोंपर गम्भीर विचार किया गया। यमुना किनारे महाराज बनारसकी भव्य कोठीमें मदनमोहनके उद्योगसे दशहरेपर मध्य-हिन्दू-समाजका धूमधामसे उत्सव हुआ। तीन दिनतक उत्सव होता रहा और उसकी चहल पहल किसी भी राजनीतिक महोत्सवसे कम न थी। उस उत्सवमें विलायतसे तत्काल लौटे हुए कालाकाँकर-नरेश स्व० राजा रामपाल सिंह भी पधारे। इस अधिवेशनके अध्यक्ष बरावाधिपति वैष्णववर श्री महावीरप्रसादजी चुने गए थे। पण्डित लक्ष्मी-नारायण व्यास वैद्यके प्रस्तावसे उन्होंने सभापति का आसन ग्रहण किया। राजा रामपाल सिंह बीच-बीचमें उठकर सभापतिके काममें इस प्रकार बाधा देते और बोलने लगते कि मदनमोहनको बड़ा कसकता था। वे ही नहीं और भी बहुत लोग इससे असन्तुष्ट थे। पर राजा साहबका नाम बड़ा था और उन्हें रोकनेका प्रयत्न करना सचमुच बड़े साहसका काम था। पर मदनमोहन इसे देर-तक न सहन कर सके। जब कभी राजा साहब ऐसा कहते तो वे खड़े होकर राजा साहबके कान में कुछ कहते हुए कई बार देखे गए। वे राजा साहबको रोकते थे पर राजा साहब मुस्करा देते थे।

जलसा समाप्त होनेपर राजा साहबने अपने 'हिन्दुस्तान' नामक पत्रमें मध्य-हिन्दू-समाजके इस अधिवेशनकी प्रशंसा तो की पर साथही यह भी लिखा कि—'उसमें दो एक लौंडे ऐसे ढीठ थे कि बड़े-बड़े राजा-रईसों और बावदूकों (वक्ताओं) को व्याख्यान देते समय उनके कानमें सलाह देनेकी धृष्टता करते थे।"

मदनमोहनसे राजा साहब कितने चिढ़ गए थे यह छिपा नहीं है, पर यह रुष्टता बहुत दिन न टिक सकी क्योंकि राजा रामपाल सिंह बड़े गुण-ग्राही थे। इसलिये इसके थोड़े ही दिनों पीछे मदनमोहनसे राजा साहब मिले और उन्हें अपने पत्र "हिन्दुस्तान" का सम्पादक बना दिया। इसकी चर्चा हम आगे करेंगे।

इस प्रकार सन् १८९१ ई० तक प्रतिवर्ष मध्य हिन्दू-समाजके महोत्सव हुए जिनमें लोक-कल्याण और देशहितके अनेक विषयोंपर बहुत कुछ कहा-सुना और सोचा-विचारा गया।

लिटरेरी इन्स्टिट्यूट (साहित्य-संस्था)

इसी हिन्दू समाजके साथ-साथ इन्होंने लिटरेरी इन्स्टिट्यूटकी स्थापना की, जिसका उद्देश्य था साहित्यिक विषयों पर चर्चा करना, काव्य और साहित्यके गुण-दोषोंपर बातचीत करना, अपना साहित्य-भाण्डार भरनेका प्रयत्न

करना और जैसे बने वैसे समाजमें साहित्यका प्रचार करना, जिससे लोगोंमें अपने राष्ट्रीय साहित्यका भी ज्ञान हो, साथ ही दूसरे साहित्यों-का भी ज्ञान होता चले।

बोलनेका रोग

मदनमोहनको बोलनेका रोग था। यद्यपि उनकी जीभ कैंचीकी तरह नहीं चलती थी पर उसका प्रवाह पर्वतसे उतरती हुई गङ्गाकी धारासे कम न था जो पवित्र और शुद्ध तो था पर अत्यन्त तीव्र था, इतना तीव्र था कि मदनमोहनके बड़े भाई लक्ष्मीनारायणको छड़ी लेकर इनकी जीभपर पहरा देना पड़ता था। प्रयागके वैद्य शिवरामजीने इसका अत्यन्त विशद वर्णन किया है—

"पण्डित सरयूप्रसाद मेरी चिकित्सामें थे और मालवीयजी उनके यहाँ आया-जाया करते थे। मालवीयजी भी रक्त-पित्तकी बीमारीमें ग्रस्त थे। पण्डित सरयूप्रसादकी सलाहसे उन्होंने भी मेरी चिकित्सा आरम्भ कर दी। मुझे खूब स्मरण है कि इस बार मैंने बहुत दिनोंतक मालवीयजीकी दवा की थी मगर किसी प्रकार उनका रोग दूर ही न होता था। मगर मदनमोहनका विश्वास मेरे ऊपर अटल था। उनके घरवाले उनसे नाराज़ होते थे। कहते थे—'शिवरामकी दवा मत करो। वे तुम्हारा बहुतसा रुपया खर्च कराते हैं और तुमको ठगते हैं।' उनको मदनमोहनका उत्तर विलक्षण था। वे लोगोंसे यही कहते थे कि मेरे ही कुपथ्यसे मेरा रोग नहीं छूट रहा है। शिवरामजीकी चिकित्सामें और उनकी आत्मियतमें कोई कमी नहीं है।

मगर घरवाले चिन्तित थे। उनकी चिन्ता भी अकारण न थी। वे मुझसे भी मिलते थे और सचिन्त होकर पूछते थे कि क्या कारण है कि मदनमोहन आपकी दवामें इतने दिनोंसे हैं मगर अभीतक आरोग्य नहीं हुए। अवस्थामें परिवर्तन का भी कोई चिह्न उनमें नहीं मिल रहा है। मैं भी परेशान था। मेरी दवामें रोग दूर करनेकी शक्ति ज़रूर थी मगर पथ्य-हीनको पथ्यसे रहनेके लिये विवश करनेकी ताकत उसमें न थी। मैंने मालवीयजीके घरवालोंसे कहा कि इनकी बोलनेकी आदत बहुत चढ़ी बढ़ी है। जबतक यह आदत न छूटेगी तबतक मुँहसे खूनका आना बन्द न होगा। मगर मदनमोहनको बोलनेका नशा था। चेष्टा करनेपर भी वे बोलना नहीं छोड़ सकते थे।

मदनमोहनके बड़े भाई पण्डित लक्ष्मी-नारायणको मेरी सलाह जँच गई। फिर क्या था, वे छड़ी लेकर मदनमोहनके साथ रहने लगे। एक दिन ऐसा हुआ कि मालवीयजीसे एक बड़े सम्मानित व्यक्ति मिले। उस अवसरपर मैं भी मदनमोहनके पास उपस्थित था। उस प्रतिष्ठित व्यक्तिकी मालवीयजीसे बातें होने लगीं। पहरेपर पण्डित लक्ष्मीनारायण भी छड़ी लिए मौजूद थे। जब उन्होंने देखा कि बातचीतका ताँता अब पथ्यसे रहनेकी सीमाका उल्लङ्घन कर रहा है तब उन्होंने इस तरफ मदनमोहनका ध्यान आकर्षित किया। मदनमोहन तो लीन थे। उन्हें पथ्यापथ्यकी कोई परवाह न थी। लाचार होकर लक्ष्मीनारायणजीको कहना पड़ा—'चल भाई!' उस समय मदनमोहनको बहुत बुरा लगा। वे झुँझला गए। वे यह कहते हुए वहाँसे चल दिए—"हमें ऐसी दवाकी ज़रूरत नहीं।" मगर पण्डित लक्ष्मीनारायणपर उनकी इस झुँझलाहट-का कुछ भी असर न पड़ा। उन्होंने छड़ी लेकर मदनमोहनके साथ रहना न छोड़ा।"

बातके धनी

मदनमोहन अपनी बातके धनी थे। जो एक बार मनको जँच गई उसका चाहे जितना विरोध हो, जितनी गालियाँ मिलें, सारा संसार ही क्यों न रूठ जाय, पर मदनमोहन टससे-मस होनेवाले नहीं। एक बार जिन दिनों वे कौलेजमें पढ़ते थे उन दिनों लौर्ड रिपन प्रयागमें आए। लौर्ड रिपन भारतके बड़े हितैषियोंमें समझे जाते थे किन्तु अंग्रेज़ लोग उन्हें बड़ी बुरी दृष्टि से देखते थे। जब मदनमोहनको ज्ञात हुआ कि लौर्ड

रिपन आ रहे हैं तो उन्होंने धूमधामसे उनका स्वागत करनेका आयोजन किया। प्रिन्सिपल हैरिसन् यद्यपि बड़े सज्जन अंग्रेज थे किन्तु रिपनके स्वागत की बात वे नहीं सह सके। पर मदनमोहन तो डरनेवाले नहीं थे, इन्होंने प्रिन्सिपलको तो सूचना होने न दी और रातो-रात स्वागत करने और जुलूस निकालनेकी पूरी तैयारी कर ली। अगले दिन लौर्ड रिपन आए, बड़े बाजे-गाजे और धूमधामके साथ लौर्ड रिपनका शानदार जुलूस निकला, उनका स्वागत किया और मान-पत्र दिए गये। इनके विरोधी बेचारे अवाक् होकर मुँह ताकते रह गए। करते क्या। यह सभी जान गए थे कि इस सारी धूमधामकी तलमें मदनमोहनका उद्योग छिपा बैठा था।

कौलेज्-जीवन

सन् १८८१ ई० में उन्होंने म्योर सेण्ट्रल कौलेज् से ही एफ्० ए० पास किया। सन् १८८३ ई० में वे बी० ए० की परीक्षा देने आगरे गए। कुछ ऐसा संयोग हुआ कि वे उस वर्ष असफल रहे। बहुधन्धी व्यक्तिके साथ यह भी तो एक कठिनाई होती है कि वह यदि दूसरोंकी भलाई सोचनेमें लगजाता है तो उसे फिर अपनी उन्नतिकी चिन्ता नहीं रहती, उसे दूसरोंकी चिन्तासे ही अवकाश नहीं मिलता। पर अगले वर्ष सन् १८८४ ई० में मदनमोहनने कलकत्तेसे बी० ए० पास कर लिया और बी० ए० पास करनेके साथ ही स्वतन्त्र मदनमोहन को नून, तेल, लकड़ीकी चिन्ता करनेका आदेश मिला। मदनमोहनकी बड़ी इच्छा थी कि एम्० ए० कर। एक दिन यों ही 'हिन्दू समाज, की बैठकमें पण्डित मधुमङ्गल मिश्रजीके पितासे भेंट हुई और बातचीतमें यही तै हुआ कि संस्कृतमें एम्० ए० किया जाय और उसके लिये सिद्धान्त-मुक्तावली पढ़ें। बस मदनमोहन उनके पास सप्ताहमें तीन दिन पढ़ने जाने लगे। उनके पास वे अपनी वेषभूषामें नहीं जाते थे वरन् ठेठ विद्यार्थीके ढङ्गसे, धोतीपर एक दुपट्टा ओढ़े। उस समय मदनमोहन लम्बी शिखा रखते थे। आजकलके कौलेजके नौजवानोंके समान उन्होंने हिन्दुत्वके चिह्नको बहा नहीं दिया था वरन् बड़े गौरवके साथ उन्होंने उसकी रक्षा और उसका निर्वाह किया।

गृहस्थीका भार

घरकी दशा ठीक नहीं थी। अब अधिक दिनों तक इन्हें व्यय मिल नहीं सकता था और इसीलिये न चाहते हुए भी इन्हें अपने विद्या-मन्दिरसे विदा लेनी पड़ी। जो व्यक्ति उपर चढ़ा चला जा रहा हो और शिखरके अत्यन्त समीप पहुँचकर उसे उतर आनेका आदेश मिले, उसे कितना दुःख होता होगा यह तो कहनेका बात नहीं है। पर विवशता थी। पिताजी कहाँतक सहायता करते! उन्होंने इतना भी कर दिया, क्या कम था? फिर सारे परिवारकी आँख मदनमोहनपर लगी थी पढ़-लिख गया है कुछ कमायगा। ऐसे समयमें मदनमोहनने यही उचित समझा कि पढ़ना छोड़कर कुछ काम करें और इन्होंने दो-तीन महीने एम्० ए० कक्षामें पढ़कर भी कौलेज् छोड़ देनेमें ही कल्याण समझा।

झकड़सिंह

कौलेज्के दिन सचमुच इनके मस्तीके दिन थे। न ऊधोका लेना न माधोका देना। जो मौजमें आई वह निश्चिन्त होकर किया, कभी किसीके आगे भयसे सिर नहीं झुकाया। बड़ोंके आगे विनय और श्रद्धासे अवश्य झुके, पर जो इनसे कड़ा पड़ा उसके आगे ताल ठोंककर खड़े भी हो गए। अपने कौलेजके दिनोंमें इन्होंने 'जेण्टिलमैन' नामक एक प्रहसन लिखा था उसमें इन्होंने दो कविताएँ लिखी थी एकमें तो इन्होंने झकड़सिंह के रूपमें अपना चित्रण किया है और दूसरेमें इन्होंने उस समयके पढ़े-लिखे जैण्टिलमैनोंकी हँसी उड़ाई है। दोनों कविताएँ क्रमसे नीचे दी जाती हैं।

अपने सम्बन्धमें

गरे जूहीके हैं गजरे पड़ा रहो दुपट्टा तन।
भला क्या पूछिए धोती तो ढाकेसे मँगाते हैं॥
कभी हम वारानिश पहनें कभी पञ्जावका जोड़ा।
हमेशा पास डण्डा है ये मर्कड़सिंह गाते हैं॥
न ऊधोसे हमें लेना न माधोका हमें देना।

करें पैदा जो, खाते हैं व दुखियोंको खिलाते हैं ॥
नहीं डिप्टी बना चाहें न चाहें हम तहसीलदारी।
पड़े अलमस्त रहते हैं यूँही दिनको बिताते हैं ॥
न देखें हम तरफ उनकी जो हमसे नेक मुँह फेरें।
जो दिलसे हमसे मिलते हैं झुक उनको देख जाते हैं ॥
नहीं रहती फ़िकर हमको कि लावें तीर औ लकड़ी।
मिले तो हलवे छन जावें नहीं सूखी उड़ाते हैं ॥
सुनो यारो जो सुख चाहो तो पचड़से गृहस्थीके।
छुटो फक्कड़पना ले लो यही हम तो सिखाते हैं ॥
हमें मत भूलना यारो भले हम पास 'मनमोहन'।
- हुई है देर जाते हैं तुम्हारा शुभ मनाते हैं ॥

जेन्टिलमैनोंकी दशा

बदले यूरप पूरा जेन्टिलमैन कहलाता है हम ॥
'डोन्ट से बाबू' टु मी मिस्टर कहा जाता है हम ॥
गङ्गा जाना पूजा जप-तप छोड़ो ये पाखण्ड सब।
घूरनेमें मुँहको गिरजाघरमें नित जाता है हम ॥
भाँग गाँजा चरस चण्डू घरमें छिप छिप पीते थे।
अब तो बेखटके हमेशा 'वाइन' ढरकाता है हम ॥
हिन्दुओंका खाना पीना हमको कुछ भाता नहीं।
बीफ चमचेसे कटे होटलमें जा खाता है तब ॥
बाबू आ चाचाका कहना लाइक हम करता नहीं।
पापा कहना अपने बच्चों को भी सिखलाता है हम ॥
कोट और पतलून पहन हैट एक सिरपर धर।
इवनिङ्गमें वाक करन पार्कमें जाता है हम ॥

इस प्रकार विद्या प्राप्त करके, बड़े-बड़े महापुरुषोंका आशीर्वाद पाकर, सब गुणोंसे अलङ्कृत होकर, यह स्नातक विद्यामन्दिरको नमस्कार करके सारे राष्ट्र, सम्पूर्ण जाति और विस्तृत समाजकी सेवा करनेकी दीक्षा लेकर मैदानमें आ कूदा।

अध्यापक मालवीयजी

जब मदनमोहनके परिवारकी दरिद्रता उनकी पढ़ाईका द्वार छेंककर खड़ी हो गई तो उन्हें अपने और अपने गुरु पण्डित आदित्यरामजीके अनुरोधका बलिदान करके उसका छोड़ना मानना पड़ा और वे अपने पूज्य पिताजी और माताजीके बुढ़ापेकी लाठी बननेकी चिन्तामें लगे। मदनमोहनके गुण किसीसे छिपे नहीं थे। छोटे-बड़े उन्हें जानते थे। इधर कॉलेज छूटा उधर गवर्नमेण्ट हाई स्कूलमें एक अध्यापककी माँग हुई : मदनमोहन बी० ए० अपने पुराने स्कूलमें पचास रुपये महीनेपर अध्यापक हो गए। अब इनके परिवारके दिन फिरे। इन्होंने 'मल्लई' नामको संस्कृत करके उसे 'मालवीय' बना दिया और मालवीय कहलाने लगे। हम भी अब आगे इन्हें मालवीयजी कह कर पुकारेंगे। अब ये पण्डित मदनमोहन मालवीय बी० ए० हो गए। इनके मालवीय नामका प्रचार इतना हुआ कि इनके परिवार और कुटुम्बवालों ने तो इस नामको अपनाया ही, साथ ही अन्य श्रीगौड़ ब्राह्मण भी अपनेको मालवीय लिखने लगे। फिर तो यह रोग ऐसा बढ़ा कि मालवासे तनिक भी सम्बन्ध रखनेवाले लोग अपने नामके पीछे मालवीय लिखने लगे- महापुरुषोंके नाममें भी तो जादू होता है।

गवर्नमेण्ट हाई स्कूल प्रयागमें अध्यापक पण्डित मदनमोहन मालवीयजी

मालवीयजी स्कूलमें पढ़ाने लगे। लोगोंका ऐसा विश्वास है कि विद्यादान सब दानोंसे बढ़कर है और

अध्यापनके समान कोई दूसरा भला काम नहीं है, पर साथ ही यह भी आवश्यक है कि अध्यापकमें कुछ गुण भी होने चाहियें, वे हैं सच्चरित्रता, मृदुभाषिता, और अपने विषयका ज्ञान। जिस अध्यापकमें ये तीन गुण न हों वह अध्यापक कैसा। अध्यापक स्वयं एक विद्यालय होता है। उसे देखकर ही यदि विद्यार्थी प्रभावित न हों, उसे अपना आदर्श न मान लें तो फिर वह अध्यापक क्या हुआ। मालवीयजी इन तीनों बातोंमें धनी थे। थोड़े ही दिनोंमें विद्यार्थी इनसे हिलमिल गए। जिन्होंने इनके चरणोंमें बैठकर पढ़ा है उनका कहना है कि ऐसा योग्य अध्यापक तो देखनेमें नहीं आया। अध्यापन-कुशलताकी एक घटना हमें स्मरण है। एक बार वे घूमते-घामते काशी हिन्दू विश्वविद्यालयके टीचर्स ट्रेनिङ्ग कौलेजमें आए। वहाँपर कुछ शिक्षक-छात्र पढ़ा रहे थे। उन्हें पढ़ाते देखकर अचानक उन्हें प्रयागका गवर्नमेण्ट हाई स्कूल स्मरण हो आया। उनके हृदय-के भीतर बैठा हुआ अध्यापक पुरानी स्मृति लेकर जाग उठा। उन्होंने तत्काल वहाँ काम करनेवाले अपढ़ मिस्त्रियों और कामगारोंको एकत्र किया और कहा कि देखो हम तुम्हें लिखना सिखाते हैं और उन्होंने थोड़ी ही देरमें इस कौशलसे उन्हें समझा-समझाकर 'राम' लिखना बताया कि अक्षरोंका ज्ञान हुए बिना भी, अ आ इ ई और क ख ग बिना सीखे भी वे लोग बिना परिश्रमके 'राम' लिखने लगे। उनका यह पढ़ाना देखकर टीचर्स ट्रेनिङ्ग कौलेजके अध्यापक भी दङ्ग रह गए।

अपने वेशसे, अपनी वाणीसे और अपने व्यवहारसे वे आदर्श रहे और जब कभी वे विद्यार्थियोंको उपदेश देने बैठते थे, या कभी एकादशी कथा प्रारम्भ करते थे उस समय उनके कण्ठसे केवल कथाकार व्यास ही नहीं वरन् व्यासकी अन्तरात्मामें बैठा हुआ अध्यापक भी सयत्न भावसे बोलता सुना जाता था।

उसी गवर्नमेण्ट हाइ स्कूलमें इनके चचेरे भाई पण्डित जयगोविन्द मालवीय भी संस्कृत पण्डित थे। वे कोरे नाम मात्रके पण्डित ही न थे, व्याकरणके बड़े अच्छे विद्वान् थे। मालवीयजीका और उनका बड़ा अच्छा साथ रहता। उस स्कूलमें एक बात मालवीयजीको सदा खटकती थी और वह थी धर्म शिक्षाकी अभावता। जो दुखनेकी सबसे बड़ी बात तो यह थी कि ईसाई और मुसलमानोंके लड़के तो अपने धर्मों, धर्म-गुरुओं, धर्म ग्रन्थों तथा धार्मिक आख्यानोंको बहुत कुछ जानते थे, पर हिन्दू विद्यार्थी अपने धर्मका क ख ग भी नहीं जानते थे और न जाननेकी चेष्टा ही करते थे। वे ऐसे निकम्मे और निर्जीव थे मानो उनके न हृदय है न आत्मा। धर्म एक ढोंग मात्र समझा जाता था और जो धर्मकी बातें करता था वह ढोंगी समझा जाता था। हिन्दू बालकोंकी यह नास्तिकता और उदासीनता मालवीयजीको बहुत अखरी। उन्हें यह भी देखकर बड़ा दुख हुआ करता था कि हिन्दू बालक अपने धर्मपर, अपने देवी-देवताओंपर, अपने आचार विचारपर और अपने समाजपर दूसरोंके आक्षेप सुनकर भी अनसुना कर देते थे जैसे वे निस्सार हों, तत्वहीन हों। पर उस समय मालवीयजी कुछ न कर सके। इसका उन्हें सदा ही खेद रहा।

मालवीयजीकी पगड़ी, दुपट्टे, और अङ्गेके वेशमें पूरे पैरके श्वेत मोजे और बढ़ गए। मालवीयजीके पढ़ानेके ढङ्ग और सबके प्रति इनके मधुर व्यवहारको देखकर दो वर्षमें ही इनका वेतन पचहत्तर रुपये हो गया। इनके विद्यार्थियोंमें प्रयागके नागरिक डाक्टर सतीशचन्द्र बनर्जी भी रह चुके थे। स्कूलमें अध्यापन करते समयकी एक घटना कभी नहीं भूली जा सकती। एक बार लड़कोंकी परीक्षा हो रही थी। एक मुसलमान विद्यार्थी एक दूसरे विद्यार्थीकी प्रतिलिपि कर रहा था। मालवीयजीने ताड़ लिया और तत्काल उसे कमरेसे बाहर निकाल दिया। वह लड़का भी एक शैतान था। कहने लगा कि कभी समझ लेंगे। पर मालवीयजी इन गीदड़भभकीसे

डरनेवाले जीव नहीं थे। सबने बार-बार मालवीयजीको समझाया कि इस दुष्टके मुँह न लगिए, न जाने क्या कर बैठे। आप पैदल न जाया करें, इक्केपर जायँ। मालवीयजीने उत्तर दिया कि हमारे क्या हाथ नहीं हैं, हम पैदल ही जायँगे। वे बराबर पैदल ही जाते रहे। मालवीयजीको छेड़नेका तो उसे साहस न हुआ पर जिस लड़केके उत्तरकी यह प्रतिलिपि कर रहा था उसे उस दुष्टने पकड़ ही लिया और दिनभर बैठाए रक्खा। बेचारेको कुछ लोगोंकी सहायतासे छुटकारा मिला। पर मालवीयजीके व्यक्तित्वका उस दुष्ट लड़केपर इतना असर हुआ कि वह आकर इनके पैरोंमें गिरा और क्षमा माँगी।

भारती-भवन

मालवीयजी कोरे अध्यापक नहीं थे। पढ़ानेके अतिरिक्त जो कुछ समय मिलता उसे समाज-सेवा और जन-सेवामें लगाते थे। वह समय भी कुछ दूसरा ही था। सरकारी नौकरी करते हुए भी वे कांग्रेसमें शामिल हुए। सन् १८८५ ई० में भारतीय राष्ट्रीय महासभाकी स्थापना हुई थी। मालवीयजी अपने निर्भीक गुरु पण्डित आदित्यराम भट्टाचार्य्यके साथ सन् १८८६ ई० में होनेवाली कलकत्ता कांग्रेसकी दूसरी बैठकमें पहुँचे। यहींसे मालवीयजीकी जीवन-धारा बदल गई। किस प्रकार इन्होंने स्कूल छोड़ा, सम्पादक बने और वकालत की, यह भी एक ऐतिहासिक घटना है। इसका वर्णन हम आगे करेंगे।

लालडिग्गी मुहल्लेमें लाला गयाप्रसादके पुत्र लाला ब्रजमोहनलाल रहते थे। वे हिन्दीके बड़े प्रेमी थे। बचपनमें उन्हें हिन्दी पुस्तकोंसे प्रेम हो गया था, यहाँ तक कि कई सौ हिन्दी पुस्तकें उन्होंने जुटा ली थीं। स्वर्गवासी विद्वत्-शिरोमणि पण्डित जयगोविन्द मालवीय और रायबहादुर लालविहारी बी० ए० की प्रेरणा और सहायतासे वही पुस्तकालय, जो पहले एक व्यक्तिका था, सर्वसाधारणका हो गया और १५ दिसम्बर, सन् १८८९ ई० को भारती भवन पुस्तकालयकी स्थापना हो गई। आरम्भमें पण्डित जयगोविन्दजीने अपनी बहुतसी अमूल्य हस्तलिखित पुस्तकें भारती-भवनको सौंप दीं। इसी प्रकार बहुतसे सज्जनोंने अपनी-अपनी कुछ पुस्तकें दे दीं और वह एक छोटासा सार्वजनिक पुस्तकालय बन गया—फिर पण्डित जयगोविन्द मालवीय, रायबहादुर बाबू लालविहारी, पण्डित बालकृष्ण भट्ट, माननीय पण्डित मदनमोहन मालवीय, पण्डित श्रीकृष्ण जोशी, डाक्टर जयकृष्ण व्यास, बाबू कालिकाप्रसाद, पण्डित रामनाथ मिश्र और पण्डित देवकीनन्दन तिवारीके उद्योगसे यह पुस्तकालय निरन्तर उन्नति करता गया। लाला ब्रजमोहनलालजीकी कोई सन्तान न थी। उनकी इच्छा भारती-भवनको अच्छे रूपमें चलानेकी ही रही। उनकी यही इच्छा थी कि यह अजर-अमर हो जाय। अन्तिम बीमारीकी अवस्थामें भी उनको यही चिन्ता रहती थी कि इसके चिरस्थायी होनेका अच्छा प्रबन्ध हो जाय, इसी कारण बीमारीकी दशामें भी अपने परम मित्र बाबू लालविहारीजीको भारती-भवनके दान-पत्र लिखवाने तथा उसकी रजिस्ट्री करा देनेके लिये उठते बैठते टोका करते थे। अपनी आरोग्यतासे निराश होकर उन्होंने प्रयागके रईस रायबहादुर लाला रामचरणदासको बुलाकर स्वयं यह इच्छा प्रकट की कि तुम भारती-भवनके लिये भवन बनानेका भार ले लो। सुयोग्य रायबहादुर लाला रामचरणदासने जब इस भारको स्वीकार कर लिया तब उन्हें इतना आनन्द हुआ कि विह्वल होकर रोने लगे। जब उन्होंने बाबू लालविहारीसे सुन लिया कि भारती-भवनका दान-पत्र लिखा गया और अब उसके चिरस्थायी होनेमें किसी प्रकारकी बाधा नहीं है तब उन्हें बड़ी शान्ति हुई। लाला ब्रजमोहनलालजीकी जीवनीके अन्तिम अङ्कमें यह बात भी सदा स्मरणीय रहेगी कि जबतक भारती-भवनके नए स्थानकी नींव नहीं पड़ी, वे बराबर इसके लिये व्यग्र थे, किन्तु जैसे ही उन्होंने यह सुना कि रायबहादुर लाला रामचरणदासजीने नींव डाल दी त्यों ही मानो इनके जीवनका उद्देश्य पूरा हो गया

और वे तुरन्त ही बेसुध हो गए और दूसरे दिन एकादशीको शरीर छोड़ दिया।

लाला व्रजमोहनलालजीने अपने अन्तिम समयमें जो दान-पत्र भारती-भवनके लिये लिखा उसके द्वारा भारती-भवनका कार्य्य जिन सज्जनोंको सौंपा गया उनमें पण्डित मदनमोहन मालवीय, बी०ए०, एल्‌एल्‌०बी०, वकील हाइकोर्ट प्रयाग, भी थे। इस
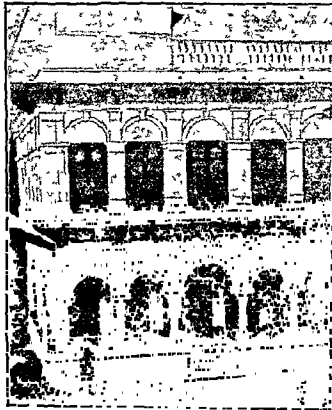
भारती-भवन पुस्तकालय, प्रयाग।

पुस्तकालयको उन्नत करनेमें और इसे स्थापित करनेमें मालवीयजीका कुछ कम हाथ न था। अब तो उस पुस्तकालयके कारण यह मुहल्ला ही भारती-भवन कहलाने लगा है। मालवीयजीके उद्योगसे इसे तीन सौ पचहत्तर रुपये वार्षिक डिस्ट्रिक्ट बोर्डसे और पाँच सौ रुपये वार्षिक प्रान्तीय सरकारसे सहायता मिलती है। भारती-भवनका नाम मालवीयजीसे ऐसा जुड़ गया है कि सब लोगोंका विश्वास है कि भारती-भवन पुस्तकालय मालवीयजीकी व्यक्तिगत निधि है।

मैकडोनल्ड् युनिवर्सिटी हिन्दू बोर्डिङ्ग हाउस

प्रयागके म्योर सेण्ट्रल कालेजने तो विद्यार्थियोंको आकर्षित किया ही था, थोड़े ही दिनों पश्चात् सन् १८८७ ई० में जब इलाहाबाद विश्वविद्यालयकी नींव पड़ी तब तो और भी विद्यार्थी प्रयाग आने लगे। यह युक्तप्रान्तका सबसे पहला विश्वविद्यालय था। इसलिये चारों ओरसे विद्यार्थियोंके झुण्ड-के-झुण्ड आने लगे। पर छात्रालय पर्याप्त नहीं थे, इसलिये विद्यार्थियोंको बड़ी असुविधा होने लगी। व्यय भी अधिक होता था और रहने, खाने पीने और पढ़नेमें भी अड़चनें पड़ने लगीं। मुसलमान और ईसाई विद्यार्थियोंकी संख्या भी कम न थी और उनके रहन सहन हिन्दुओंसे भिन्न होनेके कारण उन्हें असुविधाएँ भी उतनी न होती थीं। हिन्दू विद्यार्थियोंका यह कष्ट मालवीयजीने भली प्रकार समझ लिया, क्योंकि वे कष्टका अनुभव करते थे और दूसरेकी व्यथाका अनुमान लगा सकते थे। उन्होंने झट यह निश्चय कर लिया कि हिन्दू विद्यार्थियोंके रहनेके लिये एक आदर्श छात्रालय बनवाया जाय जिसमें प्रयागमें पढ़नेके लिये आनेवाले हिन्दू विद्यार्थियोंके रहनेका सुपास हो। कर्मठ पुरुषको तो विचार करने भरकी देर होती है। गुप्त शक्तियाँ स्वयं उसका हाथ बटानेको व्याकुल रहा करती हैं। मालवीयजीके सङ्कल्पका सारे प्रान्तने जी खोलकर स्वागत किया। उस समय म्योर सेण्ट्रल कॉलेज् ही प्रथम श्रेणीका विद्यालय था। सभी लोग अपने लड़कोंको वहाँ भेजना चाहते थे और सभीके मनमें छात्रालयका अभाव खटकता था। फिर इस उत्साहके पीछे तत्कालीन गवर्नर महोदयकी प्रेरणाका संकेत पाकर बहुत लोगोंने अपनी थैलियाँ खोल दीं। जिसके मनमें दया, उदारता, करुणा, परोपकार आदि सद्भावोंका सर्वथा अभाव होता है वे भी अधिकारियोंके एक सङ्केतपर सर्वगुण-सम्पन्न मनुष्य बन जाते हैं। यह भाव इस जातिके युगप्र

भी अपना प्रभाव बनाए हुए है। युक्तप्रान्त भरमें घूम-घूमकर उन्होंने रुपया एकत्र किया। किस-किस प्रकार उन्हें रुपया मिला, उसकी एक ही घटना देना पर्याप्त होगा। प्रयागमें जब हिन्दू छात्रावास बन रहा था, उस समय मालवीयजी रायबहादुर लाला साँवलदासके पास गए। वे उस समय कार्य्यालय जा रहे थे। मालवीयजीने एक सहस्र रुपया देनेको कहा जिससे उनके नामसे एक कमरा बन जाय। मालवीयजीकी मधुर वाणीसे वे इतने प्रभावित हुए कि बिना सोचे-विचारे उन्होंने एक सहस्रका चेक उन्हें दे दिया। पीछेसे उन्होंने सोचा कि इसपर कुछ विचार करना चाहिए था और शीघ्रता नहीं करनी चाहिए थी किन्तु पण्डितजीकी प्रभावशाली प्रार्थनासे ही वे उनके वशमें हो गए थे।

सन् १९०३ ई० में युक्तप्रान्तके उदारचेता गवर्नर सर एण्टनी मैकडोनल्के नामपर दो सौ पचास हिन्दू विद्यार्थियोंके रहने-योग्य एक विशाल भवन बन गया जिसका नाम पड़ा 'मैकडोनल् युनिवर्सिटी हिन्दू बोर्डिङ्ग हाउस'। यह भवन प्रयागके दर्शनीय भवनोंमेंसे एक है। मैकडोनल् साहबका जो यश फैला वह तो फैला ही, बहुत दिनों तक वह छात्रालय 'मालवीयजीका बोर्डिङ्ग हाउस' कहलाता रहा।

मिण्टो पार्क

पहले अध्यायमें ही हम लौर्ड कैनिङ्गके भव्य दरबारका उल्लेख कर चुके हैं। उस दरबारको हुए पचास बसन्त बीत गए किन्तु महारानी विक्टोरियाकी उस उदार घोषणाको पुनर्जीवित करने और उसकी स्मृति दिलानेके लिये भारतने कुछ भी न किया। सन् १९११ ई० में जब लौर्ड मिण्टो यहाँसे विदा लेने लगे उस समय मालवीयजी को यह सूझा कि जिस स्थानपर लार्ड कैनिङ्गका दरबार हुआ था उसी स्थानपर एक घोषणा-स्तम्भ स्थापित किया जाय और उसके चारों ओर एक सुघर वाटिका लगाई जाय जिसके साथ लौर्ड मिण्टोके नामका सम्बन्ध हो। घरमें सूत न कपास, मालवीयजीने झट वाइसरायको जमुना किनारे मिण्टो पार्कके शिलान्यासके लिये निमन्त्रित कर दिया। लौर्ड मिण्टोने स्वीकार करके एक दिन भी नियत कर दिया। श्रीगोपालकृष्ण गोखलेजीको यह ज्ञात हुआ तो वे बड़े चिन्तित हुए। क्योंकि वे जानते थे कि अभी रुपया कुछ भी एकत्र नहीं हुआ है। उन दिनों सुप्रीम कौन्सिलकी बैठक हो
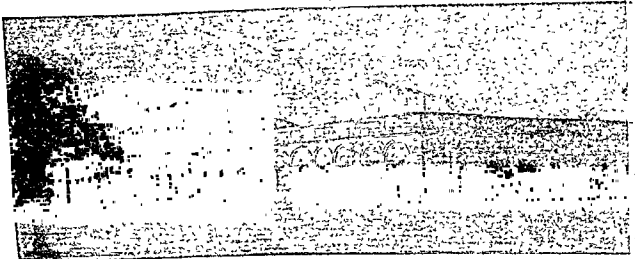
युनिवर्सिटी मैकडोनल् हिन्दू बोर्डिङ्ग हाउस
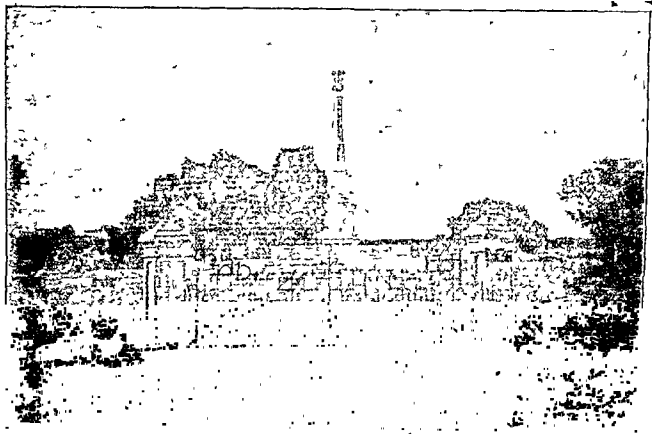
प्रयागमें ९ नवम्बर सन्२९१८ई० की स्थापित मिन्टो पार्क

रही थी और मालवीयजी भी वहीं थे। गोखलेजी उनके पास गए और बोले, "पण्डितजी! यह आपने क्या कर डाला? आपके पल्ले पैसा तो एक है नहीं और वाइसरायसे पार्कका शिलान्यास कराने की तिथि भी पक्की कर ली। बहुत थोड़ा समय रह गया है, कृपा करके कौन्सिलकी बैठक छोड़ दीजिए और जाकर रुपया इकट्ठा कीजिए। यदि समयसे रुपया न मिला और आपका अपयश हुआ तो हम लोगोंका भी अपयश होगा।" उन्होंने सचमुच बड़ी सात्विक उत्सुकतासे कहा था। पर मालवीयजी मुस्कराए। उनकी मुस्कराहट जिन्होंने देखी है वे तो भली प्रकार उसकी कल्पना कर सकते हैं। उन्होंने गोखलेजीसे कहा, "इस चिन्ताके लिये आपको धन्यवाद। घबराइए नहीं, सब रुपये यहीं आ जाते हैं। मुझे इसके लिये कहीं

मन हुआ। प्रयाग सेनाने दुर्गकी तोपोंसे अभिनन्दन किया, औल इण्डिया मिण्टो मेमोरियल कमिटीके सहकारी मन्त्री पण्डित मोतीलाल नेहरूने स्वागत-पत्र पढ़ा, लौर्ड मिण्टोने उसका उत्तर दिया और उक्त पार्कका शिलान्यास हो गया। एक ताँबे के पात्रमें अभ्युदय, लीडर, पायोनियर; तथा अन्य पत्रोंकी प्रतियाँ तथा उक्त घोषणास्तम्भका विवरण-पत्र रखकर नींवमें रख दिया गया। इसके पश्चात् वाइसराय अपने दलबलसहित प्रदर्शिनी और वेलकम क्लब देखने चले गए। आकाश अबतक तो निरभ्र था। धूप निकली हुई थी। पर अचानक घटा घिर आई और बातकी-बातमें धुआँधार वर्षा होने लगी जो वाइसरायके विदा होनेतक होती रही। पैंतालीस मिनट घूमनेके पश्चात् ये लोग प्रदर्शिनीके द्वारपर पहुँचे जहाँ मालवीयजीसे कुछ देरतक बात करके और हाथ मिलाकर लौर्ड मिण्टोने बनारसके लिये प्रस्थान किया। धूमधामसे उत्सव समाप्त हो गया। समयपर रुपये भी आ गए, मालवीयजी का भी अपयश नहीं होने पाया और गोखलेजीका भी मान रह गया। जिस स्थानपर खड़े होकर बड़े-बड़े वीर आगेका मार्ग नहीं खोज पाते उसी स्थान पर खड़े होकर आशाकी एक बड़ी सूक्ष्म किरणके सहारे मालवीयजी आगे बढ़ते चले जाते थे। यही आशा उनके सफल-जीवनकी कुञ्जी थी। पर जैसे बहुतसे ताले, कुञ्जी मिल जानेपर भी नहीं खुल पाते उसी प्रकार जान पड़ता है कि इस कुञ्जीके प्रयोग करनेका गुण भी केवल उन्हींको आता था।

पत्रकार मालवीयजी

सन् १८८६ ई० को राष्ट्रीय महासभाने मालवीयजीको सारे भारतवर्षसे परिचय करा दिया। राष्ट्रिय महासभाके मञ्चपर पहली बार खड़े होते ही उन्होंने सारे देशको अपना लिया। मालवीयजी कभी-कभी कहा भी करते थे कि यही राष्ट्रीय महासभा मेरी सारी सफलताकी पहली सीढ़ी थी। किस मन्त्रसे इन्होंने सबके हृदयपर विजय पाई, सबके नेत्रोंको अपनी ओर आकर्षित किया और सबके प्रेम-पात्र बने यह तो आगे कहा जायगा पर इतना ही कहना बहुत होगा कि उस राष्ट्रिय महासभामें उपस्थित सभी नेताओंने समझ लिया कि प्रयागका यह ब्राह्मण साधारण व्यक्ति नहीं है। वहाँ बैठे हुए कई महापुरुषोंने प्रकट और मनमें यह भविष्यवाणी की थी कि निकट भविष्यमें सारा देश मिलकर अपनी रास इस जवानके हाथ में सौंप देगा।

कालाकाँकरके स्वर्गीय राजा रामपालसिंह उन्हीं दिनों विलायतसे योरोपियन महिलासे विवाह करके लौटे थे। उनके खानपान और रहन-सहनके ढङ्गको देखकर कोई भी विश्वास नहीं कर सकता था कि उनके विलायती कोटके नीचे उदार हृदय, उनके अंग्रेजी टोपके नीचे विचारशील मस्तिष्क और उनकी मदिराकी प्यालीमें देशभक्तिका मद छिपा हुआ है। पर जब वे किसी सभाके सभापतिका आसन ग्रहण करनेके लिये बुलाए जाते तो वे अपना विलायती ठाठ बदल देते थे और चौगोशिया टोपी, चपकन और पाजामा पहनकर जाते थे। राष्ट्रिय महासभाके प्रभावशाली नेताओंमें वे भी एक थे और वहाँके मञ्चपर वे सिंहके समान दहाड़ते थे। पूर्व और पश्चिम दोनों राजा साहबमें मिलकर रहते थे। राजा साहब मखमली गद्दोंपर नींद लेनेवाले कोरे राजा साहब नहीं थे। उन्होंने विलायत तो देखा ही था पर हिन्दुस्थानको भी उन्होंने भली-भाँति पहचाना था। टूटी हुई मड़ैयामें किसानके परिवारकी भूख और दीन कामगारके आँसू उनसे छिपे न थे। साथ ही वे यह भी समझ गए थे कि अपनी बोलचालकी भाषा मातृभाषाको बिना ऊपर उठाए दीन भारत गूँगा रह जायगा, वह अपनी व्यथा कह न पावेगा। इसलिये उन्होंने 'हिन्दुस्थान' नामका एक साप्ताहिक पत्र निकालना प्रारम्भ किया। वे उसे दैनिक बनाना चाहते थे पर उन्हें किसी ऐसे व्यक्तिकी खोज थी जो 'हिन्दुस्थान' को सँभाल सके। कलकत्तेमें होनेवाली दूसरी राष्ट्रिय महासभाके मञ्चपर मधुर किन्तु प्रभावशाली शब्दोंकी अटूट धारा बहाता हुआ एक ब्राह्मण दिखाई दिया जिसके तेजस्वी मुखसे और धौले चिट्टे कपड़ोंसे सचाई, निडरपन, उत्साह और योग्यताका प्रकाश निरन्तर बरस रहा था। सन् १८८४ ई० के मध्य हिन्दू-समाजके उत्सवमें 'धृष्टता करनेवाले जिस लौंडेसे राजा रामपालसिंह बेतरह चिढ़ गए थे उसे आज उन्होंने परख लिया। जिसे वह काँचका टुकड़ा समझे हुए थे वह हीरा निकला। जौहरी भला हाथमें आया हीरा क्यों छोड़ने लगा। राजा साहबने मालवीयजीसे कहा कि अपनी साठ रुपयेकी नौकरी छोड़कर 'हिन्दुस्थान' का सम्पादन करो, देशकी सेवा करो और वकालत पढ़ो। मैं आपको दो सौ रुपया मासिक दिया करूँगा।

मालवीयजी दुविधामें पड़ गए। देशसेवा करनेकी धुन तो उन्हें थी सही पर उन्हें 'हिन्दु-

स्थान' का सम्पादकत्व ग्रहण करनेसे पहले बहुतसी बातें सोचनी पड़ीं। वे कट्टर ब्राह्मण थे, किसीका छुआ भोजन नहीं करते थे। पूजा पाठ, नेम-धरमके बड़े पक्के थे। उधर राजा साहबको खान-पानका कुछ विचार न था, सबके साथ वे सब कुछ खा-पी सकते थे। मालवीयजीका पञ्चपात्र और राजा साहबका प्याला एक साथ भला कैसे रह सकते थे। मालवीयजी वकालत वृत्तिको भी सौतेली माँकी आँखोंसे देखते थे। बहुत कुछ सोच-विचार करनेके पश्चात् मालवीयजीने यह प्रस्ताव रक्खा कि 'मैं अंग्रेजी और हिन्दी दैनिक 'हिन्दुस्थान' का सम्पादन इस प्रतिबन्ध पर स्वीकारता हूँ कि जिस समय आपने मदिरा पी हो उस समय न मुझसे बोलें और न मुझे अपने पास बुलावें।' आज कितने ऐसे निडर और आत्म प्रतिष्ठावाले सम्पादक होंगे जो अपने सहायक और पालकसे इस प्रतिबन्धपर सहायता लें। मालवीयजी दीन ब्राह्मणके पुत्र भले ही थे पर उन्होंने आत्माको बेचना नहीं सीखा था।

राजा साहबके लिये यह बड़ी कठोर तपस्या थी, पर वे मालवीयजीको बहुत मानते थे और उनकी यही इच्छा थी कि मालवीयजी जैसे योग्य पुरुषके लिये स्कूल एक निकम्मा स्थान है। उन्होंने प्रस्ताव मान लिया और सन् १८८७ ई० के जुलाई मासमें, न चाहते हुए भी उन्होंने स्कूलस पद-त्याग कर दिया और प्रयाग छोड़कर वहाँसे तीस मील दूर कालाकाँकरमें रहकर हिन्दीके सर्वप्रथम दैनिक 'हिन्दुस्थान' का सम्पादन प्रारम्भ कर दिया। जो स्कूलमें तीस-बत्तीस विद्यार्थियोंकी कक्षा पढ़ाता था, अब वह बहुत बड़ी जनसंख्याकी अप्रत्यक्ष कक्षाको पढ़ाने-सिखानेवाला सम्पादक बन गया।

मालवीयजीकी लेखनीसे मँजकर 'हिन्दुस्थान' चमक उठा। ग्राहकोंकी संख्या बरसाती समुद्रकी लहरोंकी भाँति बढ़ती चली गई। मालवीयजीका अधिक समय अब पत्र-सम्पादनमें ही लगता था। सप्ताहमें छ दिन ये कालाकाँकरमें रहते थे, एक दिन प्रयागमें। रविवारको पत्रका साप्ताहिक संस्करण-राजा साहबके ही सम्पादकत्वमें निकलता रहा। मालवीयजीके लेख बड़े मार्केके होते थे। सभी विषयोंपर इनके सम्पादकीय लेख निकलते थे, सबमें एक प्रभाव होता था, शक्ति होती थी और आकर्षण होता था। कभी-कभी सामाजिक, धार्मिक या राजनीतिक समस्या पर गहरी चोट भी कर जाते थे पर वह चोट ऐसी होती थी जिसे पढ़कर चोट खानेवाला भी एक बार फड़क उठता था और 'वाह-वाह' करने लगता था। ऐसे सूरमा बहुत कम दिखाई पड़ते हैं जिनके वार भी न चूकें और घायल एक बार तड़प कर उस सूरमाके कौशलकी प्रशंसा भी करे। मालवीयजी ऐसे ही धनुर्धर थे। 'हिन्दुस्थान' पढ़नेके लिये लोग विकल रहते थे। सबसे पहले हिन्दीमें 'तड़ित समाचार' इसी पत्रमें निकले थे। जनता और सरकार दोनोंने इस पत्रको अपनाया।

यहाँपर मालवीयजीकी एक विशेषताका उल्लेख करना असङ्गत न होगा। वे बड़े भयङ्कर छापा-शोधक थे। एक बार लिखकर उसको कई बार काट-छाँट, घटा-बढ़ाकर तो वे अपने लेखोंको छपने भेजते ही थे पर यह जानकर कम अचरज न होगा कि मशीन पर छपते छपते भी वे शुद्ध करते रहते थे। मालवीयजीके लेखका नाम सुनकर ही अभ्यस्त छापवाले एक बार घबरा उठते थे। पहली बार जब छपा हुआ लेख उठाकर उनके पास भेजा जाता था, उसे इस प्रकार रँग देते थे कि उसे शुद्ध करना भी एक समस्या हो जाती थी। पर एक बात सभी एक स्वरसे स्वीकार करते हैं कि वे जो शुद्धियाँ करते थे उससे लेख निखरता चला जाता था। उनसे सम्बन्ध रखनेवाले जितनी पत्र पत्रिकाएँ हैं और रही हैं उनमें प्राय: वे छापेकी अशुद्धियोंको देखते और उनपर चिह्न लगा देते थे। उनका सदासे यह आदेश रहा है कि अच्छे पत्रके लिये छापेकी अशुद्धियाँ होना बड़े कलङ्ककी बात है।

अढ़ाई बरसतक मालवीयजीने बड़े गौरवसे सम्पादकत्व किया और बड़ा नाम कमाया। मालवीयजीके साथ रहनेका यह प्रभाव हुआ कि राजा साहबके बहुतसे बुरे व्यसन उन्हें छोड़कर भाग गए। उनका नशा-पानी भी बन्दसा हो गया। पर वे मनुष्य ही तो थे। व्यसन कोई ऐसी वस्तु तो है नहीं कि बस कह दिया, छूट जाय। राजा साहबने अढ़ाई बरस तकतो मालवीयजीके नियमको निवाहा, पर एक दिन एक ऐसी घटना हुई कि मालवीयजीने 'हिन्दुस्थान' के सम्पादकत्वसे और राजा साहबके सहवाससे हाथ खींच लिया। एक दिन राजा साहब प्याला चढ़ा चुके थे; उन्होंने किसी आवश्यक सम्मतिके लिये मालवीयजीको बुलवा भेजा। बातचीत कर चुकनेके बाद उन्होंने राजा साहबसे कहा कि "आजसे मेरा अन्न-जल आपके पाससे उठ गया। आपने मुझसे जो प्रतिबन्ध बाँधा था, वह आज टूट गया। मैं आज ही रातको या कल प्रातःकाल चला जाऊँगा। आप अपने पत्रका प्रबन्ध कर लीजिए। आपकी उदारता और स्नेहको मैं कभी नहीं भूलूँगा।" राजा साहब यह सुनकर सन्न रह गए। राजा साहबने बहुत समझाया पर हिमालय तो अपने स्थानसे टलता नहीं है। मालवीयजीके बड़े भाई भी समझाकर हार गए। अन्तमें राजा साहबने कहा 'अच्छा जाओ, वकालत पढ़ो। जितने दिन पढ़ोगे, सारा व्यय मैं दूँगा। मालवीयजी सन् १८८६ ई० में 'हिन्दुस्थान' छोड़कर चले आए। इतने अच्छे पदका त्याग कोई साधारण त्याग नहीं था। त्यागके हवन कुण्डमें मालवीयजीकी यह सबसे
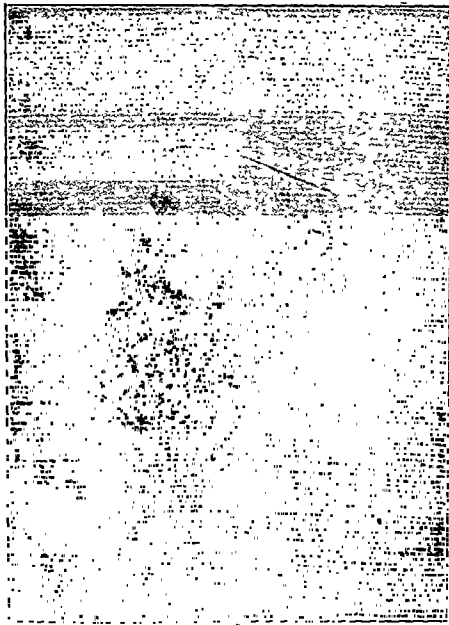
पण्डित अयोध्यानाथजी।

पहली महत्व-पूर्ण आहुति थी।

'हिन्दुस्थान' से विदा लेकर जब मालवीयजी घर लौटे तो युक्तप्रान्तके सिद्ध पण्डित अयोध्यानाथके अंग्रेज़ी पत्र 'इण्डियन ओपिनिअन' (भारतीय मत) ने उनका स्वागत किया और वे उसमें पण्डित अयोध्यानाथजीके सम्पादन में हाथ बँटाते रहे। पण्डित अयोध्यानाथजी जैसे दबङ्ग, निडर और स्पष्टवक्ता थे वैसा ही उनका पत्र भी था। प्रयागके लब्धप्रतिष्ठ नागरिक पण्डित बलदेवराम दवे भी इनके साथ ही थे और इन दोनोंके सम्मिलित परिश्रमने पत्रको लोक प्रिय बना दिया। पीछे यह पत्र लखनऊके 'एडवोकेट' से जा मिला। वह भी मालवीयजीके सहयोगसे वञ्चित न रहा।

'अभ्युदय'

सोए हुए लोगोंको कुम्भकर्णी नींदसे जगानेके लिये यदि सबसे अच्छा और सीधा कोई उपाय है तो वह 'पत्र' है। इलाहाबादके उर्दूके महाकवि अकबरने एक बार कहा था —

खींचो न कमानोंको न तलवार निकालो।
जब तोप मुकाबिल हो तो अखबार निकालो॥

चाहे यह शेर अख़बारोंकी बढ़ती हुई बाढ़पर फबती ही क्यों न हो पर इसकी सचाई में तिलभर भी सन्देह नहीं है। उस समय जब कि सारी आर्य्य जाति अपनी प्राचीन संस्कृतिको पुराने वेठनोंमें लपेटकर और अपनी प्राचीन वीरता और आत्म सम्मानको म्यानमें डालकर गहरी नींद ले रही थी, उस समय पत्र निकालनेके सिवाय और कोई ऐसा साधन नहीं रह गया था जिससे सरकारकी क्रोधाग्निसे बचते हुए उनको जगा सकें। मालवीयजी यह बात भली भांति समझ चुके थे। कौलेजमें पढ़नेके समय ही मालवीयजी उस दिनका सपना देखा करते थे जब गङ्गाजीके किनारे-किनारे प्रयागसे काशीतक ऐसे आश्रम बनें, जिनमें लोग संयम-पूर्वक रहकर अपना ज्ञान बढ़ावें और एक ऐसा विश्वविद्यालय बने जिसमें सब विद्यायें, सारे विज्ञान, यन्त्र शास्त्र और शिल्प शास्त्र विलायतके समान पढ़ाए जायँ और भारतीय विद्यार्थियोंको विलायत न जाना पड़े। मालवीयजीके साथी उस समय उनकी हँसी उड़ाते थे कि 'मदनमोहन पागल हो गया है।' उस समयके मदनमोहनके विचारोंको सुननेवाले सज्जनोंको यह देखकर सचमुच अचरज होता है कि मालवीयजीके सपनेके सत्य हो जानेपर भी उसी विश्वविद्यालयमें विलायती डिग्रीकी ही अधिक पूछ होती है। यह सृष्टि कैसे उलट गई, यह सचमुच अचम्भेकी बात है। हाँ, तो हिन्दूविश्वविद्यालयकी भावना मन और हृदयसे निकलकर बाहर आ चुकी थी और सन् १९०५ ई० की अखिल भारतीय राष्ट्रीय महासभाके अवसरपर काशीमें महाराज बनारसके सभापतित्वमें मिण्टो हाउसमें होनेवाली सभामें वह प्रत्यक्ष स्वरूप धारण करके खड़ी हो गई। उसको जीवित रखनेके लिये यही सोचा गया कि कोई ऐसा पत्र निकाला जाय जो हिन्दू-विश्वविद्यालयकी कथा निरन्तर छेड़ता रहे जिससे लोग अपने पुराने अभ्यासके अनुसार एक कानसे सुनकर दूसरेसे निकालने न पावें।

अचानक सन् १९०७ ई० का बसन्त अपने साथ साथ 'भारत्का अभ्युदय' भी लाया। बसन्तपञ्चमीके शुभ दिनपर 'अभ्युदय' का जन्म हुआ। प्रसिद्ध विद्वान् और लेखक पण्डित बालकृष्ण भट्टजीने ही उसका नामकरण किया। पैदा होते ही वह बालक 'अभ्युदय' मालवीयजीको सौंप दिया गया। उसके बचपनमें दो बरसतक मालवीयजीने उसे पाला, पोसा और बोलना सिखाया। दूधके दाँत गिरनेसे पहले ही इस बालकने धूम मचा दी। उस धूमका अर्थ तो यही था कि गङ्गाके तटपर जो सरस्वती मन्दिर बनवानेकी वे कल्पना कर रहे थे वह कल्पना अदृष्ट जगत्से दृष्ट जगत्में आ जाय। पर वह समाचार पत्र था, देश और समाज दोनोंकी नींद खोलनेका काम भी 'अभ्युदयने' अपने सिर ले लिया। 'अभ्युदय' ही तो ठहरा। पर यह बालक बड़ा बहुव्ययी निकला। थोड़े ही दिनोंमें इसने अपने पालकोंकी थैलियाँ रिक्त कर दीं। मालवीयजी

दो बरस बाद प्रान्तीय कौन्सिलके सदस्य हो गए और 'अभ्युदय' को भी श्रीपुरुषोत्तमदास टण्डनजीके योग्य हाथोंमें सौंप दिया गया। उनके बाद पण्डित सत्यानन्द जोशीजीने इसे संभाला और सन् १९१० ई० से सुप्रसिद्ध लेखक पण्डित कृष्णकान्त मालवीय जीने इसकी बागडोर अपने हाथमें ली। बीच-बीचमें पण्डित कृष्णकान्त मालवीयजीके स्थानपर स्वर्गीय श्रीयुत गणेशशङ्कर विद्यार्थी और प्रसिद्ध लेखक पण्डित वेङ्कटेशनारायण तिवारीका सहयोग भी इसे प्राप्त हुआ है। आजकल पण्डित कृष्णकान्त-मालवीयके सुपुत्र पण्डित पद्मकान्त मालवीयके सम्पादकत्वमें यह पत्र निकल रहा है। प्रारम्भमें 'अभ्युदय' सप्ताहमें एक ही बार दर्शन देता रहा, किन्तु फिर सन् १९१५ ई० में वह दैनिक हो गया और फिर कभी अर्द्ध साप्ताहिक कभी साप्ताहिक होकर बराबर निकलता आ रहा है।

'अभ्युदयने' कभी किसीके आगे सिर नहीं झुकाया और निडर होकर सच बात कहनेमें कभी सङ्कोच नहीं किया। इसी कारण 'अभ्युदय' सरकारकी आँखोंमें बड़ा खटका और कई बार इसको लम्बक (जमानतें) देने पड़े, कई बार लम्बक अपहृत भी हुए और 'अभ्युदय' महीनों घरमें बन्द होकर पड़ा रहा। इस पत्रकी नीति उसके नाममें ही छिपी हुई है। उसकी नीति है 'अभ्युदय'। जिस प्रकार हो अपने धर्म, देश, समाज, जाति, साहित्य और लोकका अभ्युदय करे।

'लीडर'

लौर्ड कर्ज़न भारतवासियोंकी स्मृतिमें बहुत दिनोंतक जीवित रहेंगे। उन्होंने सन् १९०५ ई० में बङ्गालके दो टुकड़े कर दिए जिससे केवल बंगाल ही नहीं, बल्कि सारा हिन्दुस्तान काँप उठा और उस कम्पनने एक बार अंग्रेज़ी राज्यको बड़े झटकेसे झकझोर दिया। सोता हुआ सिंह जब जागकर गरज उठता है तो उससे एक बार सारा जंगल दहल उठता है। लौर्ड कर्ज़नने सारे भारतको क्षुब्ध कर दिया। उस ठोकरसे हिन्दुस्थानके हृदयमें चिर कालसे विश्राम करनेवाले आत्म-सम्मानको भी ठेस लगी और इसी लिये वह ज्वालामुखीके समान भड़क उठा। धूल भी ठोकर मारनेसे सिर-पर चढ़ जाती है, तिसपर हम तो मनुष्य थे, समझ रखते थे।

ऐसी दशामें एक दैनिक अंग्रेज़ी पत्रकी आवश्यकता पड़ी। मालवीयजीके परम उद्योगसे २४ अक्तूबर सन् १९०९ ई० को विजया दशमीके दिन प्रयागसे सबका नेतृत्व करनेके लिये 'लीडर' निकला। उसका इतिहास लीडरमें नई मशीन लगानेके समय स्वयं मालवीयजीने जो वर्णन किया था उसे हम ज्यों-का-त्यों उद्धृत कर देते हैं:—

"लीडर" के स्थापित होनेके पूर्व एक दैनिक समाचार-पत्रकी इलाहाबादमें बड़ी आवश्यकता जान पड़ती थी। सन् १९७९ ई० में स्वर्गीय पण्डित अयोध्यानाथजीने "इण्डियन हेराल्ड" निकाला था और उसपर बड़ा धन व्यय किया। वह पत्र तीन वर्षतक चला और अभाग्यवश उसके पश्चात् बन्द हो गया। 'लीडरके' स्थापित होनेका एक कारण यह भी था। मैंने वकालत छोड़नेका निश्चय कर लिया था, और उस समय मेरा यह विचार था कि सार्वजनिक कार्य्योंसे भी अलग हो जाऊँ जिससे हिन्दू विश्वविद्यालयका कार्य्य ठीक प्रकारसे कर सकूँ। उस समय मेरे मनमें आया कि यदि मैं बिना एक पत्र स्थापित किए सार्वजनिक जीवनसे अलग होता हूँ, तब मैं अपने प्रान्तके प्रति अपने धर्मको नहीं निबाहता हूँ। मुझे उसकी आवश्यकता इतनी अधिक और अनिवार्य्य जान पड़ी कि मैंने विचार किया कि सार्वजनिक जीवनसे अलग होनेके पहले एक पत्र अवश्य यहाँ स्थापित हो जाना चाहिए। मैंने इसपर कुछ मित्रोंसे बात-चीत की और उन्होंने प्रसन्नतासे उसके लिये धन दे दिया। आरम्भमें इसके लिये चालीस हज़ार रुपया जुटा। इतना रुपया एक दैनिक पत्र चलानेके लिये बहुत कम था। किन्तु मुझे अपने उन मित्रों-पर विश्वास था जिन्होंने सहायता करनेको कह दिया था और वह आशा सफल भी हुई। 'लीडर'ने निःस्वार्थ भावसे देशकी और प्रान्तकी

बड़ी लगनसे सेवा की है। इसकी नीति रीतिसे बहुत लोगोंको सदा मतभेद रहा है और ऐसा रहेगा, किन्तु उसके कारण उसकी सेवामें कोई सन्देह नहीं कर सकता। शायद ही कोई पत्र हो जो सभी प्रश्नोंपर अपने मित्रोंके विचार प्रकट कर सके। श्री चिन्तामणि और पण्डित कृष्णाराम मेहता दोनों 'लीडर' के प्राण हैं और दोनोंने बाँटकर उसे चलानेका सौभाग्य प्राप्त किया है। लीडरके बढ़ते हुए प्रभावको और उसकी सेवाओंको सारे प्रान्तने स्वीकार किया है। आपको स्मरण होगा, जब असहयोग आन्दोलनका आरम्भ हुआ तब मेरे मित्र पण्डित मोतीलाल नेहरूने 'इण्डिपेण्डेण्ट' पत्र चलाया जिसमें वे अपने विचार और 'लीडर' से मतभेद रखनेवाले विचार फैला सकें। उसपर दो लाख पचास हज़ार रुपया व्यय किया गया जिसमेंसे एक लाख रुपया स्वयं पण्डित मोतीलालने दिया और पचास हज़ार श्री जयकरने दिया था। सरकारी अधिकारियोंने भी यह बात स्वीकार की है कि 'लीडर' सार्वजनिक प्रश्नोंका न्यायोचित दृष्टिसे विचार करता है।"

श्री नरेन्द्रनाथ गुप्त और श्री सी० वाइ० चिन्तामणि उसके सम्पादक-मण्डलमें नियुक्त हुए। एक धुर पूर्वके बङ्गाली थे तो दूसरे धुर दक्षिणके मद्रासी थे। जब 'लीडर स्थापित हुआ था, तब कुछ भविष्यवाणी की थी कि यह असमयकी रागिनी है; कोई सुनेगा नहीं। पत्र शीघ्र ही बन्द हो जायगा। कुछ लोग कहते थे 'कि इसके सम्पादक और अधिकारी शीघ्र ही किसी विपदामें फँसेंगे।' उस समयके प्रयागके कमिश्नर और 'पायोनियर' पत्रने बोलियाँ कसीं कि 'लीडर' इतना सज्जन और भला है कि अधिक दिनोंतक नहीं ठहरेगा। किन्तु इन पिछले वर्षोंने उन सारी भविष्यवाणियोंको झूठा सिद्ध कर दिया। इसकी सारी सफलताका श्रेय इसके जन्मदाता और युवकोंमें उत्साहका सञ्चार करनेवाले पूज्य पण्डित मदनमोहन मालवीयजीको है। लीडरके इतिहासकी एक लम्बी विपदाभरी कहानी है। उसके जन्मकालके डेढ़ वर्षके भीतर ही उसकी पूँजी समाप्त होनेको आ गई। यहाँ तक कि जब बैंकमें केवल पाँच सहस्र रुपया शेष रह गया था तब भी संचालकोंकी सम्मतिसे साहस करके लीडरका अङ्क निकाला जा रहा था। किन्तु ऐसी दशा कबतक चल सकती थी। निदान उसका कारबार समेटनेके लिये एक दिन भी निश्चय कर दिया गया। किन्तु इस घोर निराशामें भी एक प्रकाश-दीप पण्डित मदनमोहन मालवीय थे जो इस समय अपने प्राणोंसे प्रिय महान् हिन्दू विश्वविद्यालयका व्रत लेकर देशमें घूम-घूम कर धन बटोर रहे थे। जब उनसे लीडरकी इस दशा का वर्णन किया गया तो उनके मुखसे आत्मविश्वाससे भरे शब्द निकले—"दि लीडर विल नॉट डाइ" ('लीडर नहीं मर सकता।) उनकी उस आशाके प्रकाशने निराशाके अन्धकारमें उजाला कर दिया और तबसे 'लीडर' सदा के लिये बन्द होनेके बदले दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति करता गया। सन् १९२६ ई० में उसके अपने नये भवन बने और सन् १९२९ ई० में उसके लिये नई छापेकी कलें विदेशसे मँगाई गईं और एक हिन्दीका साप्ताहिक 'भारत'—अब दैनिक 'भारत'—भी प्रकाशित होने लगा।

पण्डित मोतीलाल नेहरू 'न्यूज़ पेपर्स लिमिटेड' के अन्तर्गत 'लीडर' के प्रथम अध्यक्ष हुए। इसके पश्चात् पूज्य मालवीयजी दस वर्षतक उसके अध्यक्ष रहे। उनके पश्चात् सर तेजबहादुर सप्रू, श्रीसच्चिदानन्द सिनहा, श्री व्रजनारायण गुर्टू, और मुन्शी ईश्वरशरण क्रमसे इसके अध्यक्ष चुने गए और इसके सहायक तथा कार्य्यकर्त्ता रहे। अन्य उत्साही प्रारम्भिक कार्य्यकर्त्ता पण्डित बलदेवराम दवे और डाक्टर सतीशचन्द्र बनर्जी भी थे। बनर्जीकी असामयिक मृत्युसे देश और प्रयाग नगरको एक उदार और उत्साही कार्य्यकर्त्तासे वञ्चित होना पड़ा। इसके पश्चात् सङ्कट-कालमें लीडरका हाथ बँटानेवाले काशीके श्रीराजा मोतीचन्द और बाबू गोविन्ददास भी थे। सर

तेजके सरकारी लौ-मेम्बर नियुक्त होनेपर काशीके रायकृष्णजी चेयरमैन चुने गए।

आरम्भमें इसके सम्पादक श्री सी० वाई० चिन्तामणिको अट्ठारह-अट्ठारह घण्टे और कभी-कभी बीस-बीस घण्टेतक काम करना पड़ता था। उस समय वे ही उसके कर्त्ता-धर्त्ता थे, वे ही सम्पादक, उप-सम्पादक, मन्त्री, मैनेजर, मुद्रक, प्रकाशक सभी कुछ एकमें जुटे हुए थे। लीडर उनके जीवनका एक अङ्ग हो गया और यह प्रसिद्ध होगया कि 'लीडर चिन्तामणि है, और चिन्तामणि लीडर है।' श्री चिन्तामणिका प्राण लीडर था और लीडरके प्राण श्री चिन्तामणि थे। सन् १९४० में सर सी० वाई० चिन्तामणिकी मृत्यु हुई और श्री कृष्णाराम मेहता ने भार अपने ऊपर ले लिया।

प्रारम्भिक जीवनमें ही इसके दो-तीन लेखोंपर सरकारकी कृपादृष्टि पड़ी। उनमें विद्रोहकी भावनाका लेश भी न था। इसलिये सरकारका वह लक्ष्य निरर्थक गया। इसके डेढ़ वर्ष पश्चात् फिर एक चेतावनी मिली। श्री गोखलेने इसमें आगे आकर सर विलियम वेडरबर्नको लिखा, जिन्होंने तत्कालीन भारत सरकारके मन्त्री लौर्ड क्यू और श्री मौण्टेग्यूसे मिलकर सब प्रकार का आश्वासन प्राप्त किया और विपत्ति टल गई।

लीडरकी नीति सदा एकसी रही। इसने समय पड़नेपर शायद ही कोई ऐसा सार्वजनिक नेता छोड़ा हो, जिसकी कड़ी-से-कड़ी आलोचना न की हो। श्री पण्डित मदनमोहन मालवीयसे लगाकर पण्डित मोतीलाल नेहरू, श्री गोखले और यहाँतक कि महात्मा गान्धी भी इसकी आलोचनासे नहीं बच पाए। बहुतसे लोग इसके सम्पादकसे इसलिये चिढ़ते हैं कि वे ऐसी बातें क्यों करते हैं। किन्तु हम समझते हैं कि सम्पादकको अपना दायित्व समझ कर किसीके बड़प्पन का संकोच करके अपने विवेककी हत्या नहीं करनी चाहिए। इस बातको कौन नहीं स्वीकार करेगा कि लीडरके सम्पादक श्री चिन्तामणि उन इने-गिने लोगोंमें थे, जो समयकी गतिको बहुत ही अच्छी तरह समझते थे और जो चलते फिरते विश्वकोश माने जाते थे।

'मर्य्यादा'

लीडरकी स्थापनाके एक वर्ष पीछे ही मालवीयजीने 'मर्य्यादा' नामक पत्र निकलवानेका प्रबन्ध किया। अंग्रेज़ी पढ़ी-लिखी जनताके लिये तो 'लीडर' पर्याप्त था, पर हिन्दी समझने वाले लोगोंको भी तो बुद्धिका भोजन मिलना चाहिए था। मर्यादामें बहुत दिनोंतक राजनीतिक समस्याओं-पर योग्यतापूर्ण निबन्ध लिखे गए।

'हिन्दुस्तान टाइम्स'

पहले कुछ सिक्ख सज्जनोंने दिल्लीसे 'हिन्दुस्तान टाइम्स' नामक अंग्रेज़ीपत्र निकाला था, पर उसकी व्यवस्था ठीक नहीं थी और उसका प्रचार भी कम था। मालवीयजीने सन् १९२४ ई० में यह पत्र अपने हाथमें ले लिया और उसकी सुव्यवस्था कर दी। श्री पोथान जोसेफ उसके सम्पादक हुए और उन्होंने बड़ी योग्यतासे अपना काम निबाहा। अब तो महात्मा गाँधीके पुत्र देवदास गाँधी इसके व्यवस्थापक हैं और 'हिन्दुस्तान' नामक एक हिन्दीपत्र भी इसीके साथ निकलता है। यह दिल्लीका अंग्रेज़ी दैनिक 'हिन्दुस्तान टाइम्स' भी मालवीयजीकी प्रेरणासे फलाफूला और थोड़े ही दिनोंमें इस महापुरुषके आशीर्वादने उसे वह पद दिला दिया जिसपर आज उसे अभिमान है।

'सनातन-धर्म'

२० जुलाई सन् १९३३ ई० को गुरुपूर्णिमाके अवसरपर साप्ताहिक 'सनातनधर्म' नामक पत्र पुण्यश्लोक मालवीयजीकी सरक्षतामें काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालयसे पण्डित गणेशदत्त आचार्य-जीके प्रबन्धमें निकला, जो उदार सनातनधर्मका निरन्तर प्रचार कर रहा है। इसमें धार्मिक विषयोंके अतिरिक्त विज्ञान, कलाकौशल, अर्थ-शास्त्र, समाज, साहित्य इत्यादि सभी विषयोंपर महत्त्वपूर्ण लेख प्रकाशित होते हैं। यह 'समाचार-पत्र' नहीं, 'विचारपत्र' था। प्रारम्भमें छः महीने

तक इसका सम्पादन पण्डित भुवनेश्वरनाथ मिश्र माधवने बड़ी योग्यताके साथ किया। उसके पश्चात् अन्त तक इस ग्रन्थके लेखक पण्डित सीताराम चतुर्वेदी तथा पण्डित गयाप्रसाद ज्योतिषी ही उसका सम्पादन करते रहे।

जब सन् १८९९ ई० में श्री सच्चिदानन्द सिनहाने 'हिन्दुस्तान रिव्यू' चलाया, उस समय मालवीयजीने उसकी सब प्रकारसे अमूल्य सहायता की और उसी प्रकार सन् १९०२ ई०में चलाए हुए उनके दूसरे पत्र 'इण्डियन पीपिल' की भी सहायता की।

पत्रों द्वारा जनतामें प्रचार करनेमें मालवीयजीका बड़ा विश्वास था। इस सम्बन्धमें एक बात और स्मरण रखनेकी है कि हिन्दी संसारमें 'मालवीयजीकी हिन्दी' का एक अलग ही स्थान है। वे ठेठ संस्कृतके शब्द काममें लानेको बहुत अच्छा नहीं समझते थे। अचरज, जतन, रगन, पैठना, प्रानी आदि बहुतसे बोलचालके शब्द उनके लेखोंमें मिलेंगे। वे बड़ी सरल, सबकी समझमें आनेवाली हिन्दी लिखते और बोलते थे, ऐसी नहीं कि जिसे समझनेके लिये कोश टटोलना पड़े और घण्टों माथापच्ची करना पड़े।

पत्रमें अश्लील विज्ञापन छापनेको भी मालवीयजी बड़ा बुरा समझते थे। एक बार अभ्युदयमें पण्डित शिवराम वैद्यजीके औषधालयकी बनी 'कामवटी' का विज्ञापन छाप दिया गया था। मालवीयजीने उसे काटकर आदेश दिया कि इसके स्थानपर 'ज्वरवटी' का विज्ञापन छापो। 'सनातनधर्म' में तो उन्होंने कभी किसी प्रकारका कोई विज्ञापन छापने की आज्ञा ही नहीं दी। महापुरुष केवल हृदयमें ही महान् नहीं होते, वे अपनेसे सम्बन्ध रखनेवाली प्रत्येक वस्तुको अपने योग्य महान् बना देते हैं। महापुरुषके साहित्यमें 'हाथीके दाँत' का कोई स्थान नहीं है।

न्यायालयके भीतर

'हिन्दुस्थान' का सम्पादक बहुत नाम कमा चुका था। उस समय भगवान्की दयासे राजनीतिक मैदानमें ऐसे लोग बहुत कम थे जो दूसरेकी बढ़ती देखकर जल भुनें और उसकी जड़ खोदनेकी तैयारी करने लगें। वह गुणी लोगोंका समय था। कसौटीपर कसे हुए सोनेका आदर किया जाता था। राष्ट्रीय महासभाके पिता श्री एलेन ओक्टेवियस ह्यूम मालवीयजीको बड़ा मानते थे। इधर पण्डित अजोध्यानाथ, श्री राजा रामपालसिंह और पण्डित सुन्दरलाल भी इन्हें देशसेवामें जुटाना चाहते थे। सबने मालवीयजीको वकालतकी परीक्षा देनेके लिये बाध्य किया। पर मालवीयजी वकालतको बहुत बुरा काम समझते थे। जिस ब्राह्मणने सन्तोष, परोपकार और सचाईके बीच अपना बचपन बिताया हो उसे कचहरी भला क्यों सुहाने लगी। यद्यपि मालवीयजी पैसा खींचनेमें आचार्य थे, पर पैसा कभी उन्हें अपनी ओर न खींच सका। एक ओर गुरु और मित्र, दूसरी ओर सङ्कोचमें लिपटा हुआ एक युवा पण्डित। जो चींटीका भी जी दुखानेसे पहले काँप उठता हो वह अपने गुरुओं और मित्रोंके अनुरोधको कैसे टाल सकता था। 'हिन्दुस्थान'से पान-सुपारी लेकर वे प्रयागमें आ ही चुके थे, पर राजा रामपालसिंह प्रति मास मालवीयजीके बहुत नाहीं करनेपर भी ढाई सौ रुपया भेजते ही रहे। वे अपने सम्पादनके कामसे समय बचाकर वकालत पढ़ने लगे। रायबहादुर पण्डित बलदेवराम दवे उन दिनों जौन्सनगञ्जमें रहते थे। उनके परिवारके साथ मालवीयजीका बड़ा गहरा सम्बन्ध रहा है। उन्हींके कोठीके बड़े कमरेमें नित्य जाकर मालवीयजीने वकालतकी परीक्षाकी तैयारी प्रारम्भ कर दी। इसी पढ़ाईके समय उन्होंने व्यवस्था विधान (कौन्स्टिट्यूशनल लौ) पर एक टिप्पणी तैयार की जिसके कुछ अंश बड़े क्रान्तिकारी हैं। उस टिप्पणीको पढ़नेसे ज्ञात हो जाता है कि इनकी राजनितिक बुद्धि वेगसे किस ओर चली जा रही थी। अपने कलकत्तेके अध्यक्षपदके भाषणमें उन्होंने इसके कुछ अंश सुनाए थे।

मालवीयजी पढ़ते तो बहुत कम थे क्योंकि उन्हें अवकाश ही कहाँ मिलता था, किन्तु उनकी बुद्धि बड़ी निर्मल थी और वे पढ़ते भी समझकर ही थे। वे लौ कौलेज्में पढ़ते थे। परीक्षा होनेवाली थी, अचानक इनके छोटे भाई मनोहरलालकी अफीम खानेसे मृत्यु हो गई। इसका उन्हें इतना बड़ा धक्का लगा कि उन्होंने परीक्षा न देनेका ही निश्चय कर लिया और बड़े मनमारेसे रहने लगे। सात दिन परीक्षाके रह गए, सब लिखना-पढना बन्द। पण्डित अयोध्यानाथजीको जब यह समाचार मिला तो उन्होंने मालवीयजीको बुलाकर बहुत समझाया बुझाया और शान्त किया। मालवीयजी कानून पढ़नेमें फिर जी लगाकर जुट गए। विजयनगर हौलमें परीक्षा हुई और सन् १८९१ ई० में इन्होंने एल्० एल्० बी० पास कर लिया। दो वर्ष पश्चात् ही ये हाईकोर्टमें पहुँच गए। वकालत करते समय एक बार पण्डित अयोध्यानाथजीने ह्यूम महोदयसे शिकायतकी थी कि वकालतके चक्करमें पड़कर पण्डित मदनमोहनने कांग्रेसके काममें

कर दी है। ह्यम साहबने बड़े सन्तोष और स्नेहसे उत्तर दिया "ठीक तो है। इन्हें कानूनमें ही पूरा मन लगाना चाहिए।" फिर मालवीयजीकी ओर घूमकर बोले कि "देखो मदनमोहन ! ईश्वरने तुम्हें बड़ी बुद्धि दी है। यदि मन लगाकर तुम दस बरस भी वकालत कर लोगे तो तुम निश्चय सबसे आगे बढ़ जाओगे। तब तुम अपनी प्रतिष्ठाके कारण अधिक जनसेवा कर सकोगे और तब तुम देशकी भी अधिक सेवा कर सकोगे।" पर मालवीयजीके हृदयमें यह उपदेश बहुत दिनोंतक टिक नहीं सका।

कुछ दिनोंतक इन्होंने पण्डित बेनीरामजी कान्यकुब्जके पास काम सीखा और फिर स्वतन्त्र रूपसे वकालत प्रारम्भ कर दी। पहले पहल इन्होंने नौ रुपये कमाए।

इनकी वकालत थोड़े ही दिनोंमें चमक उठी। अभियोगवादियोंके ठट्ट-के-ठट्ट इन्हें घेरे रहते। पौ फटने-फटते उनका द्वार धर्मार्थ औषधालय बन जाता था। उनके मित्रों और सम्बन्धियोंकी भी एक अच्छी पूरी संख्या थी। मालवीयजीको साँस लेनेका अवकाश न था। अभियोगवादियोंसे छुट्टी पाकर पूजा-पाठ करते और फिर कभी भोजन किया और कभी बिना भोजनके ही पीताम्बर पहने हीं, कचहरी जानेके लिये गाड़ीमें बैठ जाते थे। उसीमें इनकी वस्त्र रक्खे रहते थे और कचहरी पहुँचते-पहुँचते वे वस्त्र पहन डालते थे।

एक दिन वे सब कागज़-पत्र देख-सुनकर उठे ही थे कि एक अनजान व्यक्तिने अपने कागज उनके हाथमें दिए। उसकी आँखोंकी कोरें भीगी हुई थीं। जान पड़ता था कि कोई विपत्ति उसका गला दबाए खड़ा है। डरते डरते वह बोला, "मुन्शी कालिन्दीप्रसाद मेरे वकील हैं। फ़ीस ले चुके हैं। आज तारीख है। वे कहीं चले गए हैं। मेरे पास रुपये नहीं। कहाँ जाऊँ ?" मालवीयजी भी थके हुए थे, पर वे करुणाको अपने द्वारसे निराश नहीं भेजना चाहते थे। वे उतना ही काम लेते थे जितना कर सकते थे। पैसेके लोभी वकीलोंकी तरह स्वार्थी नहीं थे। जब काम अधिक होता तो अपने मित्रोंको दे देते थे। उन्होंने कहा, "देखो भाई ! मुझे तो आज अवकाश नहीं है। तुम इनके साथ मुन्शी गोकुलप्रसादके पास चले जाओ। तुम्हारा काम हो जायगा।" यह कहकर उन्होंने वह व्यक्ति पण्डित मधुमङ्गल मिश्रजीको सहेज दिया।

आजके सर तेजबहादुर सप्रू भी मालवीयजीके ही बनाए हुए हैं। एक बार मालवीयजी किसी कामसे मुरादाबाद गए हुए थे। वहाँ उन्होंने सप्रू साहबको देखा और होनहार लड़का समझकर उन्हें प्रयाग ले आए और उन्हें अपनी वकालतमेंसे मुकदमे देने लगे। आज वही सप्रू व्यवस्था-विधान (कोन्स्टिट्यूशनल लॉ) के आचार्य माने जाते हैं और भारतके सर्वश्रेष्ठ वकीलोंमें हैं।

हाईकोर्टके जजोंने भी समय-समयपर मालवीयजीकी बड़ी प्रशंसा की है। पहले तो उनकी सौम्य मूर्ति और उनका धवल वेश ही अपना पूरा प्रभाव डालता था, फिर उनकी मधुर वाणी किसको नहीं लुभाती थी। मालवीयजीमें दो अद्भुत शक्तियाँ काम कर रही थीं—सुन्दर, सरस, प्रभावशाली वाणी और समझानेका ढङ्ग। वे इतने अच्छे ढङ्गसे मुकदमा समझाते थे कि उनकी बात माननेको विवश होना पड़ता था। शेरकोटकी रानीका मुकदमा उनकी वकालतकी सर्वश्रेष्ठ कीर्त्ति समझी जाती है और उसी मुकदमेके कारण इन्हें इतना धन भी मिला कि इनका ऋण भी पट गया और इन्होंने जन्मस्थानसे सटे हुए मकानमें कई सहस्र रुपये लगाकर पक्का मकान भी बनवा लिया। इस बस्तीमें यही सबसे पहला पक्का मकान बना था।

अब तो मालवीयजीका यश दिन दूना रात चौगुना बढ़ने लगा। मालवीयजीकी आय भी बढ़ी, पर साथ ही उनके काम भी बढ़ चले। इधर मवक्किल घेरे हुए थे, उधर प्रयाग भरकी सभाएँ और संस्थाएँ उनको तङ्ग किए रहती थीं।

राष्ट्रीय महासभाका अलग काम था और फिर बहुत दिनोंसे-विद्यार्थी जीवनसे ही-विश्वविद्यालय स्थापित करनेकी जो भावना धीरे-धीरे सुलग रही थी वह अब चेतन हो उठी। भला वकालतको फिर कहाँ स्थान मिल सकता था। जिसके हृदयमें दूसरोंकी पीड़ाके कारण हूक उठा करती हो वह भला अपनी कहाँतक देख-भाल कर सकता है। मालवीयजीने वकालत छोड़ दी।

४ फ़रवरी, सन् १९२२ ई० को गोरखपुर ज़िलेमें चौरीचौरामें एक भयङ्कर दुर्घटना हो गई थी, जिसमें जनताने जोशमें आकर एक पुलिस थानेमें आग लगा दी थी, जिसमें इक्कीस पुलिसके थानेदार और सिपाही बुरी तरह जल मरे और दो स्वयंसेवक मारे गए। उसमें दो सो पचीस आदमियोंपर अभियोग चला। सेशन जजने उनमेंसे एकसौ सत्तरको फाँसीका हुक्म दे दिया था। जब यह अभियोग चीफ़ जस्टिस और जस्टिस पिगोटके सामने प्रयाग हाईकोर्टमें पेश हुआ तो सबकी दृष्टि मालवीयजी पर पड़ी। मालवीयजी वकालत छोड़ चुके थे, पर निर्बलके बल तो थे ही। सात दिनतक अभियोग समझकर अध्ययन किया और ऐसी सुन्दरतासे बहस की कि एकसौ इक्यावन अभियुक्त फाँसीके फन्देसे उतार लिए गए। उस समय न्यायाधीशने कहा था—"इन अभियुक्तोंको चाहिए कि ये मालवीयजीको धन्यवाद दें, क्योंकि उन्हींके कारण आज इनकी जान बच पाई है।" इसमें कोई सन्देह नहीं है, यदि मालवीयजी वकालत करते रहते तो वे अपने साथियोंको तो पीछे छोड़ ही देते, साथ ही अपनेसे आगेवालोंसे भी आगे बढ़ जाते।

जबसे मालवीयजीने 'हिन्दुस्थानको' अपने हाथमें लिया था तबसे ही राजा साहब उनको दो सौ रुपया मासिक वेतन देते रहे। जब मालवीयजीकी वकालत जग उठी तब भी, बार-बार मना करनेपर भी राजा साहब प्रतिमास ढाई सौ रुपया मालवीयजीके पास भेज दिया करते थे। एक दिन मालवीयजीने राजा साहबसे कहा कि—"महाराज, अबतो मैं आपका कुछ काम नहीं करता। आपकी नौकरीमें भी नहीं हूँ।" इतना कहना था कि राजा साहब बिगड़ गए और बोले, "नौकरीमें ? मालवीयजी! क्या आपने कभी मेरे मनमें या व्यवहारमें अपने साथ या किसीके साथ नौकरका भाव पाया है। आपके पास विद्या है और आप गुणोंकी खान हैं। उसके द्वारा आप मेरी सहायता करते हैं और मैं भी थोड़े पैसोंसे आपकी सहायता करता हूँ। मुझे आप जैसे बुद्धिमान पुरुषके मुँहसे ऐसी बातें सुनकर बहुत दुःख हुआ है। ऐसी बातें आपको शोभा नहीं देतीं।" राजा साहब सचमुच पारखी थे। यही उनका सबसे बड़ा गुण था और उन्होंने मालवीयजीको भली भाँति परखा भी था।

प्रयागके एक प्रतिष्ठित न्यायाधीशने कहा थ कि—'मालवीयजीके पैरोंके पास गेंद पड़ी थी प उन्होंने उसमें लात मारने से इनकार कर दिया। प्रयागके वकीलोंमें इतने आगेतक बढ़कर म मालवीयजी क्यों लौट आए? पीछेसे कोई उन पुकार रहा था—बड़े दर्दसे कराह-कराह कर मालवीयजी हाथमें आई अपने सोनेकी दुनिया छोड़ कर उस पुकारपर लौट पड़े। तपस्वी ब्राह्मण! कितन अद्भुत तेरा त्याग है? इस दुनियामें कितने लोग हैं जो आँखवाले होकर भी तुझे पहचान सकते ऐसे कितने लोग हैं जो सहृदय कहलाकर भी तेर थाह पा सकेंगे? जिस शोरमें लोग रुपयेक खनखनाहट और स्वार्थकी बातोंके सिवाय औ कुछ नहीं सुन पाते, वहीं तुमने बेचारी लुटी हुई कसी हुई माँकी क्षीण पुकार सुन ली और पागलकी तरह सोनेकी ढेरपर लात मारकर उसी पुकारपर दौड़ पड़े—वैसे ही जैसे द्रौपदीकी पुकार पर कृष्ण दौड़े थे। जिस समय लक्ष्मी द्वार खोलकर आरती और फूलमाला लिए तुम्हारा स्वागत करनेको खड़ी थी उसी समय द्वारपर पहुँचते-पहुँचते तुमने करुणाकी धीमी कराह सुनी और वहाँसे लौट पड़े—भिखमङ्गेके वेशमें—झोली हाथमें लिए ।

गोखलेजीने एकबार सच कहा

किया है मालवीयजीने। ग़रीब घरमें पैदा होकर वकालत की। धन कमाने लगे। अमीरीका मज़ा चखा। चखकर उसे देशके लिए ठुकरा दिया। त्याग है उनका।" पण्डित विशननारायण दरजीने भी कहा था कि 'सचमुच मालवीयजीके जीवनको आत्म-त्यागके सिद्धान्तपर एक अनुपम भाष्य समझना चाहिए,' वह भाष्य भी ऐसा कि जिसे सब समझ सकें।

सिर जावै तो जाय प्रभु मेरौ धर्म न जाय

कहा जाता है कि हिन्दुस्थानमें जितने प्रकारके अन्न पैदा होते हैं उतने ही प्रकारके धर्म भी। यहाँकी उपजाऊ भूमिमें गङ्गा-यमुना और सिन्धुके जलसे सींचकर जितने धर्म, मत और सम्प्रदाय पनपे हैं उतने संसारके किसी भागमें भी नहीं सुने गए। यह तो आँखों देखी बात है, कानों सुनी नहीं। इतना ही नहीं, अन्य देशोंमें भी जो धर्म बोए गए हैं उनका बीज भी भारतसे ही गया और वे सब गङ्गाके जलसे ही सींचे गए। भारतके जलवायुमें कुछ ऐसा प्रभाव है कि यहाँके लोग किसी बातको सत्वर नहीं मानते थे और जहाँतक होता था अपनी टेक रखनेकी ताकमें रहते थे। वे हठसे ऐसा नहीं करते थे वरन् उनका ज्ञान यहाँतक बढ़ा हुआ था कि वे प्रत्येक बातको अपनी बुद्धिकी कसौटीपर कसते थे और फिर कह देते थे कि इसमें सोना कितना है, खोट कितनी है। "मुण्डे मुण्डेमतिर्भिन्ना" होते हुए भी यहाँवालोंने योरोपके समान धर्मके नामपर अपने हाथ रक्तसे नहीं रँगे। धार्मिक मतोंपर जितना खण्डन-मण्डन और शास्त्रार्थ हमारे देशमें हुआ उतना कहीं नहीं हुआ पर यह हमारे ही देशकी विशेषता रही कि एक ही छप्रके नीचे आस्तिक और नास्तिक दोनों हिन्दू बनकर डटे रहे।

पहले अध्यायमें हमने थोड़ेसे शब्दोंमें मालवीयजीके जन्मकालके समयकी जिस धार्मिक दशाका परिचय मात्र दिया उससे एक बात तो प्रकट हो गई होगी कि उस समय हिन्दू धर्म बड़े सङ्कटमें था। सन् १८५७ ई० के उपद्रवने देशको एक प्रकारसे सुन्न कर दिया था। सामाजिक और धार्मिक आन्दोलन भी थोड़े दिनों तक चुप्पी साधे पड़े रहे। राजा राममोहनरायका ब्रह्मसमाज वेश धारण कर रहा था और इधर ईसाई पादरी भी हिन्दुओंकी प्रभु यीशुके दरबारमें ले जानेके लिये जी जानसे लगे हुए थे। हमारी भेड़ियाधसान तो प्रसिद्ध ही है। एक मार्ग खुलना चाहिए, उसपर चलनेवालोंकी कमी न होगी। सहस्रों लक्षों भारतीय, जिनके बाप दादोंकी चोटी औरङ्गज़ेबकी रक्तमयी तलवार भी न काट सकी, दिखावटी मीठे बहकावेमें आकर मस्जिद और गिरजाघरमें चोटी चढ़ा आए। जिन्होंने गौकी रक्षाके लिये प्राणतक देनेमें आनाकानी न की उन्हींकी सन्तान गौके गलेपर छुरी फेरने लगी। उत्तरीय ध्रुवसे अचानक ये दक्षिणीय ध्रुव कैसे जा पहुँचे, यह हम बता चुके हैं। अनेक मत और सम्प्रदाय तो बने ही, साथ ही हमारे संस्कार बिगड़ चुके थे। अपने धर्मका हमें ज्ञान न था। हम इतना भी तो नहीं जानते थे कि वेद कितने हैं फिर उनके नामका तो पूछना ही क्या। स्वामी दयानन्द हिन्दू जातिको जगानेके लिये सन् १८६३ में ही निकल पड़े, और सन् १८७५ ई० में उन्होंने आर्य्यसमाजकी स्थापना कर दी। उनका तेज देखकर हिन्दू धर्मके शत्रु काँप गए। कारण यह था कि वे डण्डा लेकर जगा भी रहे थे और सोते हुए हिन्दुओंको उठा ले जानेवालोंको भगा भी रहे थे। इसलिये कुछ घरके लोग भी डण्डेकी चोट खाखाकर स्वामीजीको बुरा भला कहनेसे न चूके और फल यह हुआ कि घरमें ही दो दल हो गए और स्वामी दयानन्दके आर्य्यसमाजको एक दल उतना ही घृणा करने लगा जितना मुसलमान या ईसाई मतको। स्वामी

दयानन्दजीने जिस संयम और उद्देश्यको लेकर वैदिक झण्डा फहराया था वह संयम उनके अनुयायियोंमें न रहा। वे ब्राह्मणोंको "पोप" कहने लगे, उनका पेट 'लेटरबक्स' कहलाया जाने लगा और देव-मूर्त्तियाँ 'गोल-गोल पत्थर' कहलाए जाने लगे। जिन श्रद्धालु हिन्दुओंने युग-युगान्तरसे अपना विश्वास और अपना सर्वस्व देवमन्दिरोंमें रख छोड़ा था और जिन ब्राह्मणोंने कठोर तपस्या करके पुस्तकालयोंके जला दिए जानेपर भी भारतका सारा साहित्य पीढ़ी-दर-पीढ़ी अपने कण्ठमें अतनसे रख छोड़ा था, उनका यह अपमान कोई सहृदय भला कैसे सह सकता था। कुछ लोग अवश्य ही ढोंगी और पाखण्डी थे पर घुनके साथ घुन पीसना भी लोगोंको न जँचा। पर यह कम सन्तोषकी बात नहीं है कि जो लोग राम और कृष्णको छोड़कर पैगम्बरी एकेश्वरवादके पीछे दौड़े चले जा रहे थे वे सँभल गए और वैदिक एकेश्वरवाद मानकर हिन्दू ही बने रहे। स्वामी दयानन्दके सिद्धान्तोंसे मतभेद रखनेवाले लोग भी उन्हें 'हिन्दू धर्मका रक्षक' माननेमें संकोच नहीं करते।

सन् १८६३ ई० के लगभग ही पञ्जाबमें पण्डित श्रद्धाराम फुल्लौरीके व्याख्यानों और उनकी कथाओंकी बड़ी धूम मची हुई थी। जालन्धरके पादरी गोकुलनाथके व्याख्यानोंने कपूर्थला-नरेश महाराज रणधीरसिंहको ईसाई मतकी ओर झुका दिया था। पण्डित श्रद्धारामजी तुरन्त सन् १८६३ ई० में कपूर्थला पहुँचे और उन्होंने महाराजको प्राचीन वर्णाश्रम धर्मके स्वरूपका ऐसा सुन्दर निरूपण किया कि उनकी जितनी शङ्काएँ थीं वे दूर हो गईं और पञ्जाबका एक राज्य ईसाई बननेसे बच गया। समूचे पञ्जाबमें घूमकर पण्डित श्रद्धारामजी उपदेश और व्याख्यान देते और रामायण, महाभारत आदिकी कथाएँ सुनाते। इनकी कथाओंने दूर-दूरके लोगोंको अपनी ओर खींचा। इनकी अमृत-वाणीके प्यासोंकी बड़ी भीड़ लगा करती थी। इनकी वाणीमें गजीव रस था और इनकी भाषा बड़ी ओजपूर्ण होती थी। ठावँ-ठावँपर इन्होंने धर्मसभाएँ स्थापित कीं और उपदेशकोंका एक मण्डल तैयार कर दिया। इन्होंने पञ्जाबी और उर्दूमें भी कुछ पोथियाँ लिखीं, पर अपनी मुख्य पुस्तकें हिन्दीमें ही लिखीं। उधर स्वामी दयानन्दजीका 'सत्यार्थ-प्रकाश' था, इधर इनका अपना सिद्धान्त-ग्रन्थ 'सत्यामृत-प्रवाह' बड़ी प्रौढ़ भाषामें लिखा हुआ था। ये बड़े ही स्वतन्त्र विचारके मनुष्य थे और वेदशास्त्रके वास्तविक अर्थको किसी भी मूल्यपर छिपाकर कहना अनुचित समझते थे। इसी से स्वामी दयानन्दजीकी बहुतसी बातोंका ये बराबर विरोध करते रहे। इन्होंने बहुतसी ऐसी भी बातें कह और लिख डाली थीं जिन्हें कुछ लोग नहीं सह सकते थे, यहाँतक कि कुछ लोगोंने इन्हें 'नास्तिक' तक कहनेमें सङ्कोच न किया, पर जबतक वे जीते रहे तबतक सारा पञ्जाब उन्हें हिन्दू धर्मका स्तम्भ समझता रहा।

पण्डित श्रद्धारामजीने सन् १८६७ ई० में "आत्मचिकित्सा" नामकी एक "अध्यात्म-सम्बन्धी" पुस्तक लिखी जिसे सन् १८७१ में हिन्दीमें अनुवाद करके छपाया। इसके अतिरिक्त "तत्त्वदीपक" "धर्मरक्षा" "उपदेश संग्रह" (व्याख्यानोंका संग्रह) "शतोपदेश" (दोहे) इत्यादि धर्म सम्बन्धी पुस्तकें लिखीं जिनका बहुत प्रचार हुआ। जिस वर्ष मालवीयजीने एफ़० ए० परीक्षा पास की उसी वर्ष सन् १८८१ ई० में अपनी उज्ज्वल कीर्त्ति छोड़कर पण्डित श्रद्धारामजी संसारसे चल दिए।

मालवीयजी बचपन ही से अपने दादा और पिताजीकी कृष्ण-भक्तिकी गोदमें पले थे। बड़े होकर जब वे स्कूलमें अध्यापक हुए थे तभी उन्हें यह बात खटकती थी कि हिन्दू बालक अपने धर्मसे बिलकुल अपरिचित हैं। सन् १८८५ ई० में झंझर-निवासी व्याख्यानवाचस्पति पण्डित दीनदयालु शर्माजीने मथुरासे 'मथुरा

समाचार' नामक पत्र निकाला जिसमें सनातनधर्मके सिद्धान्तोंपर निरन्तर प्रकाश दिया जाता था। सन् १८८६ ई० में जो कलकत्तेमें दूसरी राष्ट्रीय महासभा हुई उसमें मालवीयजी तो पहुँचे ही थे, पण्डित दीनदयालुजी भी मुन्शी हरसुखरायके लाहौरसे निकलनेवाले 'कोहेनूर'के सम्पादकके रूपमें सम्मिलित हुए थे। मालवीयजीका पण्डित दीनदयालुजीसे परिचय हुआ और दोनोंमें उसी राष्ट्रीय महासभाके पुण्य अवसरपर मित्रता की ऐसी गाँठ लगी जो अन्ततक उसी दृढ़ताके साथ बँधी रही। उस राष्ट्रीयमहासभाको देखकर दोनों महानुभावोंके मनमें यही विचार उठा कि इसी प्रकार सनातनधर्मकी भी कोई सुसङ्गठित संस्था हो जिसमें सभी सनातनधर्मी बैठकर एक साथ अपने प्यारे धर्मके पुनरुद्धार और उसकी रक्षा करनेका उपाय सोचें।

संयोग अच्छा था। पहले तो हरिद्वारके पास कनखलमें एक 'श्री गोवर्णाश्रमधर्म सभा कनखल' नामक एक संस्था बनी, किन्तु इसका काम ढीला रहा और यह गङ्गाजीकी तीव्र धारामें विलीन हो गई। इसीके आधारपर कमाऊँके पण्डित विनायकदत्त पाण्डेजी तथा पण्डित दीनदयालुजी आदिके परिश्रम और सहयोगसे सन् १८८७ ई० में महारानी विक्टोरियाकी जुबिलीके अवसरपर गर्मियोंसे पहले हरिद्वारके पवित्र तीर्थपर सनातनधर्मियोंकी बड़ी भारी सभा हुई। दूर-दूरसे बहुतसे धर्म-प्रेमी इकट्ठा हुए। कपूर्थलाके दीवान श्री रामजसराय सी० एस्० आइ०, लाहौरके राजा हरिवंश सिंह, पण्डित नन्दकिशोरदेव शर्मा, पण्डित अम्बिकादत्त व्यास, पण्डित देवीसहायजी, बाबू बालमुकुन्द गुप्त आदि कितनेही विद्वान् और विशिष्ट व्यक्ति उस सभामें आए। सन् १८८२ ई० में प्रसिद्ध थियोसोफ़िस्ट कर्नेल औलकौटने अदयारमें थियोसोफ़िकल सोसाइटीके लिये भूमि ले ली थी और उनका भी मन चल पड़ा था। उन्होंने भी उक्त सभामें सम्मिलित होकर व्याख्यान दिया। उन्होंने सनातनधर्मियोंको सावधान करते हुए कहा था कि 'अपने धर्मकी बुझी हुई चिनगारी तलाश करो और उसे फिरसे उद्दीप्त करो।' पता नहीं औलकौट साहबने यह कैसे अनुमान कर लिया था कि हिन्दू धर्मकी चिनगारी बुझ गई थी। उस सभामें किसीने उन्हें यह समझाया या नहीं कि हिन्दू धर्म वह दिव्य ज्योति है जो भयङ्कर-से-भयङ्कर प्रभंजनोंके आनेपर भी उसी तेजसे जलती रही है। हाँ सभी आँखें उसे सभी समय नहीं देख पातीं। श्रद्धा और विश्वासका चश्मा चढ़ाए बिना वह सत्वर नहीं दिखाई पड़ती। उसी सभामें प्रसिद्ध "भारत-धर्म-महामण्डल" की स्थापना हो गई और चारों ओर धर्मका प्रचार होने लगा।

प्रयाग के वकील पण्डित मदनमोहन मालवीयजीको कचहरी न लुभा सकी। व्यासका पुत्र कहाँतक अपने संस्कारोंको समेटकर रख सकता था। मालवीयजी भी व्यास बन गए पर अपने पिताजी के समान नहीं, कुछ थोड़ेसे परिवर्तनके साथ। भारतधर्म-महामण्डलके महोपदेशकोंमें इनकीभी गिनती होने लगी। प्रयागकी हिन्दू-धर्म-प्रवर्द्धिनी सभासे लेकर सनातनधर्मके बड़े सम्मेलनोंमें स्यात् ही कोई ऐसा सम्मेलन छूटा हो जिसमें मालवीयजीने सनातनधर्मकी महिमा न सुनाई हो और कथाएँ न कही हों। पण्डित दीनदयालु शर्मा और पण्डित मदनमोहन मालवीय ये दोनों ही सनातनधर्मके आधार समझे जाने लगे। सन् १८८९ ई० में २४ से २७ मार्च तक माननीय राजा लक्ष्मणदास सेठ सी० आई० ई० के सभापतित्वमें श्री वृन्दावनमें महामण्डलका दूसरा अधिवेशन हुआ। उसमें अध्यापक मालवीयजी पधारे और सनातनधर्मकी इस अखिल भारतीय संस्थामें मालवीयजीकी मधुर वाणी पहली बार सुनी गई। जिस प्रकार राष्ट्रीय महासभाके द्वितीय अधिवेशनमें मालवीयजीके पहले भाषणने ही सबको अपनी ओर आकर्षित कर लिया था उसी प्रकार भारत-धर्म-महामण्डलके द्वितीय अधिवेशनमें मालवीयजीके पहले ही व्याख्यानने सनातनधर्मी जनताको यह सुझा दिया कि 'अब

है, रक्षक आ पहुँचा है।' और सचमुच जिन्होंने ऐसी कल्पना की थी, और आशा लगाई थी उनकी कल्पना भी सच हो गई और उन्हें निराशा भी न होना पड़ा। सन् १६०० ई० में ९ से १२ अगस्त तक दिल्लीमें भारत-धर्म-महामण्डलका बड़ा भव्य उत्सव हुआ और उसके सभापति हुए श्रीमान् महाराजा बहादुर, दरभङ्गा नरेश। मण्डपका पण्डाल ऐसा भव्य और सुन्दर बना था कि आज तक वैसा पण्डाल किसी भी सम्मेलनमें देखनेमें नहीं आया। मालवीयजी तो उस मण्डपको ही देखकर उछल पड़े थे। वह अधिवेशन सचमुच इतना भव्य हुआ कि उसके विषयमें लोगोंने कह दिया था कि 'न भूतो न भविष्यति' अर्थात् 'ऐसा न हुआ है न आगे होगा'। कम-से-कम अबतक तो यह बात सच होती चली जा रही है।

इसीके अनन्तर निगमागम मण्डलीके संस्थापक श्री स्वामी ज्ञानानन्दजीसे पण्डित दीनदयालुजीका परिचय हुआ तो स्वामीजीने अपनी मण्डलीको भारतधर्म-महामण्डलसे मिलाकर काम करनेकी इच्छा प्रकट की। व्याख्यान-वाचस्पतिजीको तो कोई भार लेनेवाला चाहिए था, उन्होंने मण्डलका काम उनके सिर छोड़ दिया और स्वयं धर्म प्रचारके लिए इन्दौर चले गए। वहाँसे लौटनेपर स्वामीजीके कार्योंसे उनका मतभेद होने लगा। इसलिये सन् १६०२ ई० में मथुरामें महामण्डलकी रजिस्ट्री कराकर नई समितिके हाथ प्रबन्धका भार सौंपकर पण्डितजीने महामण्डलसे हाथ खींच लिया। काशीमें अब इसका प्रधान कार्यालय है और सनातनधर्म सम्बन्धी अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ इसकी ओरसे प्रकाशित हुए हैं। किन्तु स्वामी ज्ञानानन्दजी की कार्य्य प्रणालीसे मालवीयजीको सन्तोष न हो सका और इन्होंने एक नई सभा स्थापित करनेका विचार कर लिया। सन् १६०६ ई० में प्रयागके कुम्भके अवसरपर मालवीयजीने 'सनातनधर्म' का विराट् अधिवेशन कराया जिसमें उन्होंने 'सनातन-धर्म संग्रह' नामका एक बृहत् ग्रन्थ तैयार कराकर महासभामें उपस्थित किया और उसी सम्मेलनमें हिन्दू जाति और सनातनधर्मकी रक्षाके लिये तथा देशकी अविद्या दूर करनेके लिए 'हिन्दू-विश्वविद्यालय' स्थापित करनेका प्रस्ताव महासभामें स्वीकृत हो गया। उसी सम्मेलनमें ब्रह्मचर्याश्रम खोलनेका भी प्रस्ताव पास हुआ था।

कई बरस पीछेतक उस महासभाके कई बड़े-बड़े अधिवेशन मालवीयजीने कराए और दूर-दूरसे बड़े बड़े विद्वान्, पण्डित, धनी-मानी, राजे महाराजे उन सम्मेलनोंमें आते रहे। अगले कुम्भमें त्रिवेणीके सङ्गमपर व्याख्यान वाचस्पतिजीका 'सनातनधर्म महासम्मेलन' भी इस 'श्री सनातन-धर्म महासभासे' ही आ मिला और सन् १९२१ ई० में जब एक ओर गाँधीजीकी आँधीमें सारा देश उड़ा जा रहा था, उस समय भी मालवीयजी बड़ी शान्तिसे सनातधर्मकी वाटिकामें बाड़ लगा रहे थे। सनातनधर्म-सभा इन्हीं भयकर दिनोंमें बनी और काम करने लगी। तबसे मालवीयजीकी सनातनधर्म-सभा अलग काम करती रही है श्री तीर्थराज प्रयागमें सवत् १९८४ के माघ कृष्ण ११ से माघ शुक्ल द्वितीया, (सन् १६२८ जनवरीकी तारीख १८ से २४ तक) अखिल-भारतवर्षीय-सनातन-धर्म-महासभाका अधिवेशन मालवीयजीके सभा-पतित्वमें हुआ। इसमें भारतवर्षके अनेक प्रान्तोंके और अनेक हिन्दू राज्योंके प्रसिद्ध शास्त्र जानने-वाले पण्डित आए और प्रत्येक प्रस्तावपर भली प्रकार विचार हुआ। २७ जनवरी सन् १६२८ ई० को वसन्तपञ्चमीके दिन काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालयमें मालवीयजीने अखिल-भारतवर्षीय सनातन-धर्म-सभाकी नींव डाली। मालवीयजी अन्ततक इसके अध्यक्ष-पदपर प्रतिष्ठित रहे। सनातनधर्म महासभाके सिद्धान्तोंका प्रचार करनेके लिये काशीसे 'सनातनधर्म' नामका साप्ताहिक प्रकाशित होने लगा और लाहौरसे दैनिक 'विश्वबन्धु' निकला।

हरिद्वारका ऋषिकुल ब्रह्मचर्य्याश्रम भी मालवीयजीके प्रसादसे वञ्चित न रहा। सबसे पहले मालवीयजीने ही अपने पाससे पचीस रुपये राय-

बहादुर दुर्गादत्त पन्तजीको दिए थे कि जाओ जाह्नवी तटपर ब्रह्मचर्याश्रम स्थापित करो। सन् १९०६ ई० में उसकी स्थापना हुई। अन्ततक आप उसके (ट्रस्टियों) में बने रहे। वे दस वर्षतक उसकी शिक्षासमितिके भी अध्यक्ष रहे और बराबर उसके अधिवेशनोंमें सम्मिलित होकर पाठ्यक्रममें परामर्श देते रहे।

सन् १९१९ ई० के जल्यानवाला बाग हत्याकाण्डके अवसरपर मालवीयजीने जो पञ्जावकी मरहमपट्टी की और उसके आँसू पोंछे उसने मालवीयजीको पंजावका बन्धु बना दिया और उन्हें सारामान्त अपना सगा सम्बन्धी समझने लगा और देवताकी भाँति उनकी पूजा करने लगा। सन् १९२४ ई० में वे रावलपिण्डीमें प्रान्तीय सनातनधर्म सम्मेलनके सभापति हुए। उस वर्ष तीन सौ से अधिक सभाएँ बनीं और सौ से अधिक महावीरदल स्थापित हुए। उस सभामें उन्होंने अछूतोंकी सार्वजनिक कूओंसे जल भरने देने और सार्वजनिक स्कूलोंमें पढ़ने देनेका उपदेश दिया। सन् १९२५ ई० में धर्म-यज्ञ करवा कर अमृतसरके प्रसिद्ध दुर्गियाना मन्दिर और सरोवरकी स्थापना की।

सन् १९२८ ई० के मार्च महीनेमें उनकी पंजाब यात्रा मार्केकी हुई। सनातनधर्म-सभा, आर्य-समाज, हिन्दूसभा, कांग्रेस-कमेटी और म्युनिसिपल कमेटी सबने आपका जी खोलकर सम्मान किया। पंजाबने दिखला दिया कि अपने हृदय-सम्राटकी पूजा किस प्रकार की जाती है। गाँवगाँव, नगर-नगर, सब लोग इनकी पूजाके लिये उपहार लिए खड़े थे। सनातनधर्मी ही नहीं वरन् सारी आर्य्य-जाति इन्हें अपना समझकर इनकी अर्चना करनेमें तत्पर थी। एक बार लाहौरके सनातनधर्म-महासम्मेलनमें कुछ आर्य्य-समाजी मित्रोंने पुराणोंपर आक्षेप करते हुए कुछ पर्चे बाँटे थे। मालवीयजीके हृदयपर इससे बड़ा आघात पहुँचा। उस सभामें लाला हंसराजजी आदि कुछ आर्यसमाजके नेता भी मौजूद थे। मालवीयजीने अपने दुःखको प्रकट करते हुए कहा था कि 'श्री स्वामी दयानन्दजी बड़े विद्वान और तपस्वी थे किन्तु वे पुराणोंका मर्म नहीं समझ पाए थे। मैं पुराणोंकी सत्यता-पर शास्त्रार्थ करनेको हर समय तैयार हूं, जो चाहे सामने आवे'। अब तो ऐतिहासिकोंने भी स्वीकार कर लिया है कि पुराणोंमें केवल गपोड़े नहीं हैं, उनमें बहुत अधिक ऐतिहासिक और सांस्कृतिक सामग्री भरी पड़ी है।

सन् १९२९ ई० में पञ्जाबमें सनातनधर्मके प्रचारके सम्बन्धमें दौरा किया और सिन्धबलोचिस्तान सम्मेलनके सभापति हुए। इसके पश्चात् २१ से २४ अप्रैल सन् १९३४ ई० में रावलपिण्डीमें सनातनधर्म महासम्मेलन आपकी अध्यक्षतामें हुआ। वहाँ जो स्वागत हुआ और जुलूस निकाला गया वह अपूर्व ही था। यह मालवीयजीके ही उद्योग का फल है कि प्रति वर्ष प्रति पर्वपर धार्मिक-महोत्सव-कथा इत्यादि होती रहती है, जिससे धार्मिक वातावरण बनता चला जाता है और लोग भी धर्मभीरु हो चले हैं।

कितनी सनातनधर्म सभाओंके ये सभापति हुए, कितनी संस्थाओंकी नींव रक्खी, कितने भवनोंका उद्‌घाटन किया, यह तो बड़ी लम्बी गाथा है। गणेश हों तो लिखें, व्यास हों तो वर्णन करें।

गङ्गा नहरका झगड़ा

सन् १९१४ ई० में सरकारी नहर-विभागने हरिद्वारमें गङ्गाजीके प्रवाहको कुछ रोककर नहर निकालनेका प्रयत्न किया। पर हिन्दुओंकी ओरसे आन्दोलन हुआ और सरकारसे कुछ सन्धि हो गई, किन्तु वह सन्धिपत्र कुछ इस प्रकार बना कि हिन्दू सदस्य उसे भली प्रकार न समझ सके और सन् १९१६ ई० में फिर गङ्गाजीकी अविच्छिन्न धाराके लिये आन्दोलन मचा। हरिद्वारमें १८ तथा १९ दिसम्बर सन् १९१६ ई० को युक्त-प्रान्तके माननीय लेफ्टिनेन्ट गवर्नर सर जेम्स स्कौर्जी मेस्टन के सभापतित्वमें एक सभा, जिसमें छः भारतीय नरेश, सात

और सोलह अन्य सज्जन और प्रतिनिधि थे जिसमें मालवीयजी भी थे। उन्होंने जो मत प्रकट किया था वह नीचे दिया जाता है।

मालवीयजी बोले कि —

सन् १९१४ ई० वाले सम्मेलनमें जो लोग उपस्थित थे उन्होंने उस निर्णयको ठीक प्रकार नहीं समझा। उनके मनमें इस बातकी तनिक भी शङ्का नहीं थी कि सरकार अपने वचनका पालन नहीं कर रही है। दो बातोंसे ही सन्देह पैदा हुआ था। पहली तो यह कि जो नई धारा खुलनेवाली थी उसका स्वरूप नहरके जैसा न हो। नहर तो एक सहस्र मीलतक चली गई है किन्तु उसपर कहीं घाट नहीं है। लोगोंको गङ्गाजी तक जानेमें बड़ा रुपया व्यय करना पड़ता है। सरकारने जो सूचना प्रकाशित की है उससे मैंने समझा कि बाँधमें एक यह और द्वार खुल जायगा किन्तु अब पता चला है कि यह द्वार उस फाटकमें रहेगा जो बराबर पानीके ऊपर रहेगा। हमें नहरके लिये अधिक पानी ले लेनेमें भी कोई विरोध नहीं है, किन्तु हम चाहते हैं कि बाँधमें एक ऐसा मार्ग बना दिया जाय कि हमारी आवश्यकताके लिये उसमें से निरन्तर पर्याप्त मात्रामें जल आता रहे। इस विषयमें भारत भरमें जो गम्भीर क्षोभ फैला हुआ है वह मैं वर्णन नहीं कर सकता। लोग बीकानेर, जैसलमेर आदि दूर दूर देशोंसे आते हैं और उनको यह विश्वास होता है कि गङ्गाजीकी धारा अविच्छिन्न और शुद्ध है। मेरा कथन यह है कि धारा अत्यन्त प्राकृतिक होनी चाहिए। उसमें किसी प्रकारका कृत्रिम बाँध आदि नहीं होना चाहिये। समाचार पत्रोंमें जो इस विषयपर वादविवाद प्रकाशित हुए हैं उनसे स्पष्ट है कि लोगोंकी यह इच्छा है कि इतना जल आने कि वे आनन्दसे स्नान कर सकें। गङ्गाजीमें हजारों, लाखों मनुष्य स्नान करते हैं। इसलिये यह मार्ग इतना चौड़ा होना चाहिए कि नीचेके सभी स्थानोंपर शुद्ध जल मिल सके। फाटक लगा देनेसे सभी असन्तुष्ट जान पड़ते हैं। सम्भवत सन् १९१४ ई० की सभामें उपस्थित लोगोंने और जनताने इस विषयको ठीकसे नहीं समझा था। गङ्गाजीकी पवित्रताका ध्यान रखकर यह असन्तोष अवश्य दूर करना चाहिए। यदि इसके लिये कुछ अधिक धन भी व्यय हो तो जनताको सन्तुष्ट करनाही चाहिये। कहा जाता है कि यदि नहरका पानी कम कर दिया गया तो किसानोंको बड़ा कष्ट होगा, किन्तु कोई भी हिन्दू अपने आत्मा और धर्मके आदेशोंसे अपने आर्थिक लाभको अधिक नहीं समझेगा। इस दृष्टिसे पाँच फीटका द्वार पर्याप्त नहीं है। पाँचसे दस लाख यात्री स्नान करनेके लिये तीर्थोंपर आते हैं, बड़ी बड़ी दूरसे आते हैं और उन्हें बड़ी असुविधाका सामना करना पड़ता है। अपने विश्वासके लिये वे कोई भी कष्ट सहनेको तैयार हैं। जब लोगोंके विश्वासकी बात है तो उसके लिए एक या दो लाख रुपयेके व्ययपर विचार नहीं करना चाहिए। यह समझ लीजिए कि उनका विश्वास है कि गङ्गाजी लोगोंको शुद्ध करती और पापोंका नाश करती हैं। मुझे आशा है कि इसके लिये अवश्य कुछ उपाय किया जायगा।

लाट साहबने फाटकके विषयमें प्रश्न किया तो मालवीयजीने उत्तर दिया कि "यदि यह फाटक उसी प्रकार खुला हो जैसे खम्भों पर बना हुआ पुल होता है, तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है। पर मैं फाटक या जलद्वार बनानेके विरुद्ध हूं।"

इसका फल यह हुआ कि यह मान लिया गया और गङ्गाजीकी धारा अविच्छिन्न रखनेका प्रबन्ध हो गया।

११ अप्रेल सन् १९३३ ई० को जल पहुंचानेके निमित्त फिर गङ्गा सभा और नहर विभागके अफसरोंकी हरकी पैड़ीपर पर्याप्त एक सभा हुई जिसमें मालवीयजी भी मौजूद थे। गङ्गा सभाका आरोप यह था कि नहर विभागने सन् १९१६ ई०

में जो वचन दिया था उसका पालन नहीं किया चीफ़ इञ्जिनियरने अपनी कठिनाईयाँ सामने रक्खीं और आगेसे जाड़ेके दिनोंमें अधिक जल बहानेका वचन दिया। इसी सभामें यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि १ संख्यक धारामें एक सहस्र घनवर्ग जल प्रति सेकेण्ड बहानेके बदले अब तीन सहस्र घनवर्ग जल प्रति सेकेण्ड बहाया जाय! चीफ़ इञ्जिनियरने कहा कि यह सन् १९१६ ई० के निर्णयके विरुद्ध बात है। इसपर मालवीयजीने ९ मई सन् १९२२ ई० के एक नहर-विभागके पत्रकी ओर ध्यान आकृष्ट किया जिससे कि नहर-विभाग उक्त कार्य करनेके लिये बाध्य था। इसपर चीफ़ इञ्जिनियरने फिरसे जाँच करनेका वचन दिया।

जो लोग गङ्गाजीको एक साधारण नदी समझते हों उनके लिये यह आन्दोलन भले ही निरर्थक जँचता हो, पर जो गङ्गाजीकी पवित्रधारा में अपनी जननी और पालन करनेवाली माताका स्वरूप देखता हो वह भला गङ्गाजीकी दुर्दशाको कैसे सहन कर सकता था।

प्रयागमें सत्याग्रह

बहुत लोगोंने बीच-बीचमें बहुत बार मालवीयजीको 'नरमदलवाले', 'सरकारसे दबनेवाले', 'जेलसे दूर भागनेवाले' और आराम कुर्सीवाले राजनीतिक' तक कह डाला, पर ये लोग उन्हीं स्कूलके इन्सपेक्टरोंकी तरह हैं जो स्कूलका निरीक्षण करनेके समय वहाँके किसी कोनेमें मकड़ीका जाला देखकर स्कूलको एकदम गन्दा बता डालते हैं। पर जिन्होंने मालवीयजीको भीतर-बाहर परखा है वे ही उनका बड़प्पन देख पाते हैं। महापुरुषकी थाह लगानेके लिये चाहिये महापुरुष जैसा हृदय। किसीको अच्छा या बुरा तो कोई भी कह सकता है। मुखमस्तीति वक्तव्यं दशहस्ता हरीतकी। किसीका मुँह तो कोई पकड़ नहीं सकता पर उसके गुणोंको, उसके भीतरी भावोंको भली भाँति समझनेके लिये चाहिये समालोचककी बुद्धि जो न्याय और अन्याय, गुण और अवगुण, भलाई और बुराई सबको परख ले। मालवीयजीको अच्छी प्रकार समझनेवाले लोग जानते हैं कि मालवीयजीने अवसर पड़ने पर कभी पीछे पैर नहीं रक्खा। जो दूसरोंको 'अर्जुनस्य प्रतिज्ञे द्वे, न दैन्यं न पलायनम्' का उपदेश देता हो— वह कौरवोंकी ग्यारह अक्षौहिणी सेनाको देखकर कभी डर नहीं सकता।

सन् १९२४ ई० में अर्धकुम्भी पड़ी। प्रयागमें गङ्गाजी सदा अपनी चाल बदलती रहती हैं। आज दुर्गके पास यमुनासे भेंट रही हैं तो कल झूँसीके किनारे उनकी मिलन हो रही है। हर बरसातके बाद गङ्गाजी कुछ नया रङ्ग दिखाती रहती हैं। उस वर्ष गङ्गाजीकी धारा ऐसी हो गई थी कि अधिक संख्यामें लोगोंका त्रिवेणी सङ्गममें स्नान करना अवश्य भयानक था। लाखों भक्त और यात्री जमा थे। वहाँके अधिकारियोंने प्रान्तीय सरकारसे बात-चीत करके यह आज्ञा निकाल दी कि त्रिवेणी-सङ्गमपर कोई स्नान नहीं करने पावेगा। मालवीयजीको ज्ञात हुआ। उन्होंने प्रान्तीय सरकारसे बड़ी लिखा-पढ़ी की। स्थानीय अधिकारियोंसे भी त्रिवेणी सङ्गमपर स्नान करने की आज्ञा माँगी, पर सब व्यर्थ। यह मालवीयजीका अपना अपमान नहीं था, यह था सारी हिन्दू जातिका अपमान। मालवीयजी इसे सहन न कर सके और उन्होंने सत्याग्रह करनेकी ठान ली। सारा मेला मालवीयजीके साथ था। सभी त्रिवेणीमें डुबकी लगाना चाहते थे। गङ्गा और जमुनामें ही स्नान करना होता तो लोग हरिद्वारसे प्रयागतक कहीं गङ्गाजी या जमुनाजीमें डुबकी लगा सकते थे। पर वे तो आए थे 'तिरबेणीजीके असनान' को। आगे आगे मालवीयजी, पीछे-पीछे कोई दो सौ और लोग सङ्गमकी ओर चल पड़े। ठीक सङ्गमपर एक बल्लियोंका घेरा बन्द बना हुआ था कि जिससे लोग सङ्गममें स्नान न कर सकें। वहाँ पहुचनेपर पुलीसने मालवीयजीको रोका और इनके पास जो सीढ़ी थी, वह भी इनसे ले ली गई। मालवीयजी

और उनके सभी साथी वहीं बैठ गये। इन सत्याग्रही सिपाहियोंमें हमारे स्वतंत्र राष्ट्रके प्रथम कर्णधार पण्डित जवाहरलाल नेहरू भी थे, जो मालवीयजीके सेनापतित्वमें त्रिवेणीके तटपर सत्याग्रह की पहली कक्षामें भर्ती हुए थे। यह कौन जानता था कि सत्याग्रह पाठशाला का यह छात्र एक दिन इतना नाम कमा लेगा। सूर्य सिरपर चढ़ता चला गया, पर ये सत्याग्रही वहाँसे न टले। ऊपर सूर्य तप रहा था, नीचे रेती और इन दोनोंके बीच इस पुण्य क्षेत्रमें एक पुण्य व्रत लेकर ये तपस्वी तप रहे थे। इनके दोनों ओर पैदल और घुड़सवार पुलीस खड़ी थी। पुलिस भी उकता गई थी और बैठे हुए लोग भी। जवाहरलालजीको क्या सूझा कि झट कूदकर उस बन्दपर चढ़ गए। फिर क्या था, बहुतसे लोग उनके पीछे हो लिये। जवाहरलालजीने उस बन्दपर राष्ट्रीय झण्डा भी टाँग दिया। घुड़सवार पुलिस यात्रियोंको धक्का दे रही थी और डण्डे भी घुमा रही थी, पर किसीको चोट नहीं पहुँचाई। उधर ये सब हो रहा था, इधर मालवीयजी चुप्पी साधे बैठे थे, जैसे सिद्धि पा जानेपर साधककी दशा होती है। पर थोड़ी ही देरमें जैसे बिजलीका बटन दबानेसे—वे अचानक घुड़सवारों और पैदल सिपाहियोंके बीचसे बाणके समान निकल गए। पण्डित जवाहरलालने अपने आत्मचरित्रमें इस घटनाका उल्लेख करते हुए लिखा है कि 'मालवीयजीने जो उस समय करतब दिखाया वह साधारण पुरुषके लिये भी कठिन था, फिर बुढ़ापेकी कायामें लिपटकर ऐसी फुर्ती दिखाना तो बड़े भारी आश्चर्यकी बात थी।' फिर क्या था, सब उनके पीछे-पीछे धारमें कूद पड़े। इधर-उधर हाथ पैर पीटकर पुलिस भी वहाँसे हट गई। सत्याग्रहकी जीत हो गई।

हरिद्वारमें फिर तैयारी

अप्रैल सन् १९२७ ई० में हरिद्वारमें कुम्भ होनेवाला था। हिन्दुओंके विरोध करने और गङ्गा सभाके बहुत कहने-सुननेपर भी मेलेके अधिकारी न माने और ब्रह्मकुण्ड (हरकी पैड़ी) पर एक पुलिया बना ली, जिसपर अफ़सर लोग जूता पहनकर चढ़ते थे। सन् १९२२ ई० में ही लोगोंके विरोध करनेपर वह पुल हटादिया गया था और उसके पास ही दस-पन्द्रह हाथकी दूरीपर द्वीप-वेदी ही थी, फिर भी वहाँके अधिकारियोंने उसके लिये हठ किया। कभी-कभी सरकारी अफ़सर सरकारसे भी बढ़कर हठी हो जाते हैं। हठीली माँके बेटे भी हठीले हों तो अचरज क्या? मालवीयजी वहाँ पहुँचे और अधिकारियोंसे बात-चीत की पर उसका कुछ फल न हुआ। मालवीयजीने कह दिया कि यदि पुल न तोड़ा जायगा तो सत्याग्रह होगा। जितने स्वयंसेवक वहाँ काम करनेके लिये आए थे वे सब सत्याग्रहियोंमें सम्मिलित होनेको उत्सुक थे। मालवीयजीने तेरह सौ शब्दोंका एक बड़ा लम्बा चौड़ा तार संयुक्तप्रान्तके गवर्नरके नाम भेजा जो नीचे दिया जाता है।

हरिद्वार,
१० अप्रैल सन् १९२७ ई०।

सनातनधर्म महासम्मेलनके अध्यक्ष और हिन्दू महासभाके उपाध्यक्षके पदसे मैं एक पुलके प्रयोगके सम्बन्धमें निम्नाङ्कित बातोंकी ओर श्रीमान्‌का ध्यान आकर्षित करता हूँ। हरिद्वारमें धार्मिक कुण्डके ऊपर अस्थायी रूपसे हिन्दुओंके विरोध करनेपर भी इस पुलका निर्माण हुआ है। जो अगणित हिन्दू तीर्थयात्रा करने आते हैं उनके मनमें इस पुलके बननेसे बड़ी उत्तेजना फैली हुई है। जो द्वीप वेदी पवित्र कुण्डके सम्मुख स्थित है, वह लगभग बारह वर्ष पहले बनी थी।

इस घाटके निर्माणके पूर्व, कुण्डमें स्नान करनेवाले यात्रियोंको सँभालनेके लिये कुण्डके ऊपर एक पुल बना दिया जाता था। जहाँपर पुल खड़ा किया जाता है उस स्थानसे केवल दस या पन्द्रह फ़ुटकी दूरीपर द्वीप वेदी बनी हुई है। अतएव पुल बनानेकी आवश्यकता पहलेसे अब और कम हो गई है, और हिन्दू लोग बहुत दिनोंसे इसका

विरोध भी करते आ रहे हैं। हिन्दू जनताकी सम्मति मानकर कुण्डके ऊपरवाला पुल सन् १९२२ ई० में उखाड़ दिया गया था।

गत अक्तूबर मासमें श्रीगङ्गा सभाको पता चला कि ब्रह्मकुण्डमें पुलके बदले एक निरीक्षण मचान बनानेकी स्वीकृति म्युनिसिपल बोर्डने दी है। २० अक्तूबर सन् १९२६ ई० के एक पत्रमें सभाने इस प्रस्तावका विरोध किया। श्रीगङ्गा सभाके मन्त्रीने म्युनिसिपल बोर्डके पास इस आशयका एक पत्र भेजा।

"यह स्मरण होगा कि हिन्दुओंने इस पुलका विरोध कई आधारोंपर किया था। उनमें एक यह है कि इस प्रबन्धके कारण अत्यन्त पवित्र स्थान ब्रह्मकुण्डके भीतरतक भी अफ़सर पहुँच जाते हैं और उसके ऊपर कई हिन्दू भी जूता पहनकर चले गए हैं। प्रस्तावित निरीक्षण मचानके सम्बन्धमें वे विरोध उसी रूपसे सत्य हैं। स्नानके प्रबन्धके लिए जो बोर्डने उत्साह दिखाया है उससे श्रीगङ्गा सभा अपनी पूर्ण सहानुभूति प्रकट करती है, परन्तु वह समझती है कि द्वीप वेदीकी सीढ़ियोंके समीप, या उन्हीं के ऊपर, या ब्रह्मकुण्डके उत्तरवाले पुलके समीप, एक उसी प्रकारका मचान बनानेसे स्नानके प्रबन्धकी व्यवस्था हो सकती है। जिस हिन्दू जातिकी धार्मिक भावनाके संरक्षणके निमित्त सारा प्रबन्ध बोर्ड एवं मेलेके अधिकारियों-द्वारा होता है, उसकी भावनाओंको बिना चोट पहुँचाए हुए भी उस उद्देश्यकी पूर्त्ति भली भाँति हो सकती है। वास्तवमें बोर्ड या कुम्भ मेलेके अधिकारियोंका लक्ष्य भी यही है। अतएव श्रीगङ्गा सभा, आदर-सहित बोर्डसे ऊपर लिखी हुई बातोंको ध्यानमें रखकर अपने निर्णयपर पुनः विचार करने एवं ऐसा करके हिन्दू जनताको अनुगृहीत होनेकी प्रार्थना करती है।"

२६ नवम्बर सन् १९२६ ई० को सभाके सभापति और चार अन्य सदस्योंने श्रीयुत क्रिस्टीसे भेंट की। उन्होंने पुल हटाना अस्वीकार किया किन्तु इससे सहमत हुए कि कार्य्यपर नियुक्त अफ़सरोंको छोड़कर कोई भी पुलपर नहीं जा सकेगा और न कोई वहाँ पर सिगरेट पी सकेगा या पुलपर थूक सकेगा और न कोई वहाँपर चमड़ेका जूता पहनकर जा सकेगा।

अफसरोंके प्रयोगके लिये बिना चमड़ेका जूता देनेका जो प्रस्ताव सभाने किया उसको गत चार जनवरीके एक पत्र द्वारा, श्रीयुत क्रिस्टीने स्वीकार कर लिया। श्रीक्रिस्टीने श्रीगङ्गा—सभाके मन्त्रीको सूचित किया कि लगभग चालीस जोड़े जूतोंकी आवश्यकता पड़नेकी सम्भावना है और जो काममें नहीं आवेंगे उन्हें लौटा दिए जायँगे। जूतेकी तल्ली रबरकी होनी चाहिए। जितने जूतोंकी माँग थी, उनके नाप दिए गए और मन्त्रीसे कहा गया कि उनका ४ फरवरी सन् १९२७ ई० तक प्रबन्ध कर दें। जो कुछ भी हो, तीन दिन बाद श्री क्रिस्टीने मन्त्रीको सूचित किया कि जबतक मैं आपको न कहूँ, आप जूते मत मोल लीजिए। फिर कुछ दिन पश्चात् श्री क्रिस्टीने गङ्गा सभाके अध्यक्षको मौखिक सूचित किया कि इन्सपेक्टर जनरल औफ पुलीस इस प्रस्तावसे सहमत नहीं है कि पुलिसके अफसर जब पुलपर अपने कामपर हों तो बिना चमड़ेके जूते पहने जायँ। जब हिन्दू जनताके प्रतिनिधियोंके पुलको काममें लाने तथा अफ़सरोंको, जूतेसहित पुलपर जाने देनेके विषयमें ज्ञात हुआ तो उनका असन्तोष बढ़ने लगा। फलस्वरूप गत ३ मार्चको मेरठ डिवीज़नके कमिश्नर श्री ओकडन तथा श्री क्रिस्टीसे हरिद्वारमें मैं स्वयं मिला। उनसे मैंने अनुरोध किया कि हिन्दुओंमें, पुलके प्रयोगके विरुद्ध जो भवानाएँ हैं उनका आदर करें।

स्नानकी व्यवस्थाको सँभालनेके निमित्त एक विशेष मञ्च या द्वीप-वेदीपर एक मचान बनानेकी सम्मति श्रीगङ्गा—सभाने अपने २० अक्तूबरवाले पत्रमें दी है, उस सम्मतिका मैं समर्थन करता हूँ। कुछ दिन पीछे कमिश्नरसे मुझसे पूछा कि

हटा दिया जाय तो अफसरोंके लिये एक विशेष मंच बनानेका विरोध तो न

प्रयत्न करना एवं आत्मरक्षाके लिये उन्हें संगठित करना।

(८) हिन्दू विधवाओं और अनाथोंकी रक्षाका समुचित प्रबन्ध करना।

(९) सनातनधर्मके विशेष कार्यके अतिरिक्त हिन्दू जातिके सर्व-साधारणके हितके कामोंमें सब हिन्दुओंके साथ मिलकर काम करना।

(१०). हिन्दुओंके विभिन्न सम्प्रदायोंका संगठन करना एवं उनमें धार्मिक तितीक्षा तथा एकताका भाव बढ़ाना और देशके भिन्न-भिन्न धर्म माननेवाले भाइयोंमें सद्भाव और मेल बढ़ाना।

(११) समाज सेवा तथा हिन्दू जातिकी शारीरिक शक्ति बढ़ानेके लिये महावीर दल संस्थापित करना।

(१२) जनताको गौ तथा उसकी सन्तानके प्रति दयाका बर्ताव करने तथा गौओंकी रक्षा एवं उनकी वृद्धिके लिये प्रयत्न करनेकी शिक्षा देना, सस्ता तथा शुद्ध गोघृत और गोदुग्धकी उपयोगिता बताना एवं उनको उचित मात्रामें प्राप्त करनेके साधनोंका अवलम्बन कराना, हिन्दुओंको गोवंश बढ़ानेके लिये अच्छे साँड़ छोड़ने वृषोत्सर्ग तथा इनकी रक्षाके उपायोंकी शिक्षा देना। गोरक्षाके लिये कार्य करनेवाली संस्थाओंके सहयोगसे उचित स्थानोंपर आवश्यकतानुसार गोशाला, गोपालविद्यालय और गोचिकित्सालयके संस्थापनको प्रोत्साहन देना।

(१३) विभिन्न स्थानोंकी आवश्यकतानुसार गोचर भूमि छोड़ने और उसकी रक्षाका प्रबन्ध करनेकी व्यवस्था करना।

(१४) इस महासभाके समान उद्देश्य रख्‌ने वाली भारत और उसके बाहरकी अन्य संस्थाओं को अपनेसे संबद्ध करना।

(१५) उपर्युक्त उद्देश्य पूरा करनेके लिये चल [illegible] संग्रह करना।

इन उद्देश्यों एवं प्रस्ताव [illegible] स्पष्ट हो जायगी कि सनातनधर्मी लोगोंके भावोंमें इतने ही दिनोंमें कितना अन्तर आ गया।

मालवीयजीने अपने हिन्दूधर्मोपदेश नामक छोटीसी पुस्तिकामें अपने सम्पूर्ण धार्मिक विचार भर दिए हैं। उनपर तनिक विचार करनेसे ही उनके सनातनधर्मका स्वरूप स्पष्ट हो जायगा। वे कहते हैं:—

परमेश्वरको प्रणामकर सब प्राणियोंके उपकारके लिये, बुराई करनेवालोंको दबाने और दण्ड देनेके लिये, धर्मस्थापनके लिये, धर्मके अनुसार सङ्गठन-मिलापकर गाँव-गाँवमें सभा करनी चाहिए। गाँव-गाँवमें कथा बिठानी चाहिए। गाँव-गाँवमें पाठशाला और अखाड़ा खोलना चाहिए। पर्व-पर्वपर मिलकर महोत्सव मनाना चाहिए।

सब भाइयोंको मिलकर अनाथोंकी, विधवाओंकी, मन्दिरोंकी और गौमाताकी रक्षा करनी चाहिए, और इन सब कामोंके लिये दान देना चाहिए।

स्त्रियोंका सम्मान करना चाहिए।
दुखियोंपर दया करनी चाहिए।

उन जीवोंको नहीं मारना चाहिए जो किसी पर चोट नहीं करते। मारना उनको चाहिए जो आततायी हों, अर्थात् जो स्त्रियोंपर या किसी दूसरेके धन या प्राणपर वार करते हों या जो किसीके घरमें आग लगाते हों। यदि ऐसे लोगों को मारे बिना अपना या दूसरोंका प्राण या धन न बच सके तो उनको मारना धर्म है।

अद्वितीय हैं, और जो दुख और पापके हरनेवाले शिव-स्वरूप हैं। जो सब पवित्र वस्तुओंसे अधिक पवित्र, जो सब मङ्गल कामोंके मङ्गल स्वरूप हैं, जो सब देवताओंके देवता हैं और जो समस्त संसारके आदि सनातन अज अविनाशी पिता हैं।

सनातनधर्मी, आर्य्यसमाजी, ब्रह्मसमाजी, सिक्ख, जैन और बौद्ध आदि सब हिन्दुओंको चाहिए कि अपने-अपने विशेष धर्मका पालन करते हुए एक दूसरेके साथ प्रेम और आदरसे वर्त्ते।

अपने विश्वासमें दृढ़ता, दूसरेकी निन्दाका त्याग, मतभेदसे सहनशीलता (चाहे वह धर्म-सम्बन्धी हो या लोक-सम्बन्धी) और प्राणीमात्रसे मित्रता रखनी चाहिए।

सुनो इस धर्मके सर्वस्वको और सुनकर इसके अनुसार आचरण करो। जो काम अपनेको बुरा या दुखदायी ज्ञात पड़े उसको दूसरेके साथ नहीं करना।

मनुष्यको चाहिए कि जिस कामको वह नहीं चाहता है कि कोई दूसरा उसके साथ करे, उस कामको वहभी किसी दूसरेके प्रति न करे। क्योंकि वह जानता है कि यदि उसके साथ कोई ऐसी बात करता है जो उसको प्रिय नहीं है, तो उसको कैसी पीड़ा पहुँचती है।

मनुष्यको चाहिये कि न कोई किसीसे डरे न किसीको डर पहुँचावे। श्रीमद्भगवद्गीताके अनुसार आर्य्य अर्थात् श्रेष्ठ पुरुषोंकी वृत्तिमें दृढ़ रहते हुए ऐसा जीवन जीवे जैसा सज्जनको जीना चाहिए।

हर एकको उचित है कि यह चाहे कि सब लोग सुखी रहें, सबका भला हो, कोई दुःख न पावे. प्राणियोंके दुःख दूर करनेमें तत्पर यह दया बलवानोंकी शोभा है। धर्मके अनुसार चलनेवालोंको कभी इसका त्याग नहीं करना चाहिए।

देशकी उन्नति के कामोंमें देशभक्त पारसी मुसलमान, इसाई, यहूदियोंको साथ मिलकर भी काम करना चाहिए।

यह भारतवर्ष, जो हिन्दुस्तानके नामसे प्रसिद्ध है—बड़ा पवित्र देश है। धन, धर्म और सुखका देनेवाला यह देश सब देशोंसे उत्तम है।

'कहते हैं कि देवता लोग यह गीत गाते हैं कि वे लोग धन्य हैं जिनका जन्म इस भारत-भूमिमें होता है, जिसमें जन्म लेकर मनुष्य स्वर्गका सुख और मोक्ष दोनोंको पा सकता है।'

यह हमारी मातृ-भूमि है, हमारी पितृ-भूमि है। जो लोग सुजन्मा हैं— जिनके जीवन बहुत अच्छे हुए हैं, राम, कृष्ण, बुद्ध, आदि पुरुषोंके, महात्माओंके, आचार्य्योंके, ब्रह्मर्षियों और राजर्षियोंके, गुरुओंके, धर्मवीरोंके, शूरवीरोंके दानवीरोंके, स्वतन्त्रताके प्रेमी देश-भक्तोंके उज्ज्वल कामोंकी यह कर्म-भूमि है। इस देशमें हमको परम भक्ति करनी चाहिए और धनसे भी इसकी सेवा करनी चाहिए।

जिस धर्ममें परमात्माने गुण और कर्मके विभागसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण उपजाए और जिसमें धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थोंके साधनमें सहायक मनुष्यका जीवन पवित्र बनानेवाले ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास ये चार आश्रम स्थापित हैं, सब धर्मोंसे उत्तम इसी धर्मको हिन्दू धर्म कहते हैं। जो लोग सारे संसारका उपकार चाहते हैं उनको उचित है कि इस धर्मकी रक्षा और इसका प्रचार करें।"

मालवीयजी पक्के सनातनधर्मी थे। यह लोगोंका विश्वास है और यह विश्वास ठीक भी है। पर मालवीयजीका पक्का 'सनातनधर्म' कोई सँकरी कोठरी नहीं है जहाँ अपने अतिरिक्त कोई समा ही न सके। वह तो एक बड़ा लम्बा चौड़ा बाड़ा है जिसमें आप भी रहें और बाहरवाले भी बड़े प्रेमसे आकर बैठें। उनका हृदय उस मन्दिरके समान था जहाँ ऐसे देवताकी मूर्त्ति थी जिसे लोग पूजते हों। न जाने कितनी बार सिक्खोंके बीचमें बैठकर मालवीयजीने उनके गुरुओंकी वीरताका वर्णन करके वीर सिक्खोंको रुला दिया। आर्य्यसमाजके उत्सवोंमें उन्होंने स्वामी दयानन्द-

जीकी हिन्दू सेवाका वर्णन करनेमें कभी सङ्कोच न किया। अभी हाल ही में लाहौरके डी०ए०वी० कोलेज़की जुबिलीके अवसरपर आर्य्य-समाजके नेताओंने मालवीयजीको सभापतित्वके लिये बुलाया। रुग्ण होनेपर भी मालवीयजी वहाँ पहुँचे और २४ अक्तूबर सन् १९३६ ई० को उन्होंने पण्डालमें पहुँचकर सबसे पहले आपने महात्मा हंसराजको छातीसे लगाया और अपने भाषणमें आपने कहा कि—'स्वामी दयानन्दजीने ऐसे समय अपना काम प्रारम्भ किया जब सब ओरसे अविद्याका अन्धकार फैला हुआ था यह उनकी तपस्या और देश प्रेमका ही फल था कि उन्होंने जीतेजी वैदिक

डी० ए० वी० कौलेज् लाहौरकी जुबिलीके अवसरपर मालवीयजीका स्वागत

सभ्यताके दर्शन किए क्योंकि वैदिक सभ्यता ही संसारकी सबसे ऊँची सभ्यता थी।"

मालवीयकी धार्मिक भावना जहाँ एक ओर व्यक्तिगत साधनामें बड़ी कठोर थी वहाँ सामाजिक व्यवहारमें अत्यन्त उदार थी। वे कभी युगसे पीछे नहीं रहते थे, रहना भी नहीं चाहते थे किन्तु उन्होंने सदा यह प्रयत्न किया कि विरोध करके, संघर्ष उत्पन्न करके, सामाजिक विषमताको प्रोत्साहन देकर कोई काम न किया जाय। अपने धार्मिक विश्वासकी अशोभन, अव्यवहार्य अथवा असंगत परिपाटीमें भी कोई परिवर्तन किया जाय। तो उसमें विद्वानोंकी सम्मति ले ली जाय और वे जैसा निर्णय दें वही किया जाय। स्वयं उन्हींकी उप जातिमें जब सभी मालवीय ब्राह्मण परस्पर सन्निकट सम्बन्धी हो गए और कन्याओंके विवाहमें बाधाएँ आने लगी तब उन्होंने पण्डितोंकी सभा बुलाई और जब पंडितोंने मिलकर सवर्ण विवाहकी

स्वीकृति दे दी तब उन्होंने अपनी पौत्री और अपने पौत्रोंका विवाह अन्य ब्राह्मणोंमें करनेकी स्वीकृति दी। इससे पूर्व भी एक ऐसी ही समस्या उनके परिवारमें खड़ी हो गई थी किन्तु उस समय मालवीयजी ने उसका घोर विरोध किया था क्योंकि तबतक सामूहिक रूपसे सवर्ण विवाहके लिये व्यवस्था नहीं मिल पाई थी।

एक बार मालवीयजीसे कुछ मित्रों और शिष्यों ने आकर निवेदन किया कि बहुतसे ऐसे परिवार हैं जिनके नाम तथा आचार-व्यवहार तो हिन्दुओंके समान हैं किन्तु जो अपनेको कहते मुसलमान हैं और हिन्दू बननेको भी उद्यत हैं। झट उन्होंने पंडितों की सभा बुलाई, उनकी व्यवस्था ली और शुद्धि सभा स्थापित कर दी। आज उस सभाके कारण लगभग तीन सहस्र परिवार हिन्दू होकर गोरक्षा और धर्मरक्षामें सहायता दे रहे हैं।

गाँधीजीने जब हरिजन आन्दोलन प्रारम्भ किया था उस समय भी मालवीयजीने अन्त्यजोंके उद्धारके लिये पंडितों से व्यवस्था लेकर धर्म-शास्त्रानुमोदित अन्त्यजोद्धारविधिका निर्माण किया और अछूत कहलानेवाली जातियों के उद्धारका ऐसा मार्ग खोज निकाला जो धर्मशास्त्र विहित हो। यद्यपि उस समय ऐसे बहुतसे सनातनधर्मी थे जो हठ पूर्वक अछूतों के बहिष्कारपर डटे हुए थे किन्तु मालवीयजी उनसे यही कहते थे कि यदि आप शास्त्रको प्रमाण मानते हैं तो उसे पूर्ण रूपसे शाश्वत रूपसे मानिए। और इसके आधार पर उन्होंने अछूतों को मन्त्रोपदेश देकर उन्हें समत्वका पद प्रदान किया और उनका दीक्षा संस्कार किया।

इधर बौद्धधर्मका भी पर्याप्त आन्दोलन हुआ और सौभाग्यसे सारनाथ ही उसका केन्द्र है। यहाँके नवीन मन्दिरके संस्थापक स्वर्गीय अनागारिक धर्मपाल भिक्खु, मालवीयजीके बड़े मित्र थे। मालवीयजी कई बार उनसे मिलने सारनाथ गए थे और उनकी मृत्युपर भी मालवीयजी उनके अन्तिम दर्शन करने वहाँ पहुँचे थे। बौद्धोंने भी मालवीयजीको अनेक बार सम्मानित किया है। बिड़लाजीने सारनाथमें बौद्ध यात्रियोंके लिये आर्य्य-धर्मशाला नामक जो विशाल भवन बनवाया है उसकी नींव भी मालवीयजीके हाथों ही पड़ी थी।

मालवीयजी सारनाथमें आर्य्य-धर्मशालाकी नींव रख रहे हैं।

मुसलमान और ईसाइयोंकी सभामें भी मालवीयजीका बड़ा सम्मान हुआ है और उनके भाषण हुए हैं।

मालवीयजी अपने धर्मकी निन्दा तो सुन ही नहीं सकते, साथ ही दूसरे धर्मकी निन्दा भी नहीं सह सकते। एक बार काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालयमें आर्य्य-समाजका जलसा हो रहा था उसमें एक उपदेशक महोदयने इस्लाम तथा ईसाई मतपर जो मनमें आया कहा। मालवीयजीको यह बात बुरी लगी और उन्होंने प्रबन्धकोंसे यह कहला भेजा कि हिन्दू-विश्वविद्यालयमें ऐसे लोगोंके व्याख्यान नहीं होने चाहिए जिनकी वाणी संयत न हो और जो दूसरे धर्मों और धर्मप्रवर्त्तकोंकी निन्दा करें।

हमारे देशमें धार्मिक शास्त्रार्थ बहुत होते रहे हैं और हो रहे हैं किन्तु संभवतः इन शास्त्रार्थोंमें श्री शङ्कराचार्य और श्री मण्डन मिश्रके शास्त्रार्थके जैसा निर्णय कभी नहीं मिला। अब तो शास्त्रार्थ होते हैं, लोग इकट्ठा होते हैं, जिधर हल्ला मचानेवाले अधिक होते हैं वही दल जीत जाता है और उसके पश्चात् समाचारपत्रोंसे ज्ञात होता है कि दोनों दल जीत गए और दोनों दल हार गए। सब अपनी-अपनी ढपलीपर अपना-अपना राग गाते हैं। कुशल है कि यह प्रथा अब समाप्त हो चली है। क्या ही अच्छा हो यदि सबका हृदय धार्मिक विषयोंमें मालवीयजीके जैसा हो कि अपना धर्म भी पालन करें और दूसरेके धर्मका आदर करना भी सीख जायें। यदि इतनी धार्मिक सहनशीलता हम लोगोंमें आ जाय तो हमारी बहुतसी शक्तियाँ सङ्गठित हो जायँ और अवसर पड़ने पर हम दूसरोंको दिखा दें कि देखो हम क्या हैं?

कहा जाता है कि यदि किसीको धर्मके दर्शन करने हों, धर्मसे खुलकर बातें करनी हों और धर्मकी ज्योति लेनी हो तो जाकर मालवीयजीके दर्शन करते। बहुत से लोगोंके हृदयमें धर्म आकर निवास करता है पर मालवीयजी तो सशरीर धर्म थे जिनके आचार-विचार, वेशभूषा और बोलचालसे धर्मकी ज्योति छिटकती थी। उनकी वाणी इसी लिये प्रायः कह उठती थी-"सिर जावे तो जाय प्रभु मेरो धर्म न जाय"

समाजकी नींव

'सात कनौजिए नौ-नौ चूल्हे'वाली कहावत तो सुनी ही जाती है पर 'तीन हिन्दू तेरह मत' वाली कहावत उससे भी पुरानी है। नन्दवंशकी चितापर चाणक्यने कूटनीतिके बल-पर जो राजनीतिक एकताका महल बनाया था उसे महाराज अशोककी दयाका नद बहा ले गया और उसके खँडहरोंने घरमें तो झगड़ा डाल ही दिया साथ ही उसने बाहरवालोंको भी उसमें भाग लेनेका न्यौता दे दिया। इस राजनीतिक उथलपुथलमें 'जैसा राजा वैसी प्रजा' के अनुसार मनु और बुद्ध दोनोंका राज्य रहता आया। झूलेकी पैंगोंकी तरह भारतके भोले-भाले नर-नारी मनु और बुद्धके बीचमें झूलने लगे। जो बड़े थे, जिनके हाथमें तलवार थी या जिनको भगवानने बुद्धि, विद्या या धन दिया था उन्हींका राज्य था।

दीनता केवल पेटको ही भूखा नहीं रखती, वह बुद्धि और आत्मगौरवको भी भूखा रखती है, और, इसी लिये निर्धन लोग चुप मारकर अपनी पीठ उघाड़ देते हैं जिसपर चारों ओरसे कोड़े पड़ने लगते हैं। पहले कुछ पीड़ा अवश्य होती है पर फिर अभ्यास पड़ जाता है और कुछ दिनोंमें वह अभ्यास ऐसा दृढ़ हो जाता है कि वे उसे अपना एक धर्म मान लेते हैं, जैसे बहुतसे छात्र अध्यापकके बेंतोंके इतने अभ्यस्त हो जाते हैं कि लाज हया जाती रहती है, पिटनेमें उन्हें आनन्द आने लगता है। और फिर दूसरे लोग उसे अपनी अयोग्यता न समझकर उन्हें अयोग्य समझ लेते हैं और उन्हें धकेल देते हैं पहाड़से नीचे। उन्हें सिसक-सिसककर जीनेके लिये ऊपरसे कभी-कभी दो रोटी डाल देते हैं। यही दशा हिंदू समाजमें शूद्रोंकी हुई।

कहावत है कि 'घरका जोगी जोगना आन गाँवका सिद्ध' घरमें तो गुणोंका आदर नहीं होता। कोई कितना भी पढ़-लिख गया हो, यश पा गया हो पर घरवाले तुलसीदासको 'वही तुलसिया' समझते हैं। शूद्रोंकी घरमें तो कोई पूछ हो न सकी पर बाहरसे जो अतिथि—सचमुच वे अ-तिथि ही आए थे—आए, उन्हें हिन्दुस्तानके हरे-भरे मैदानमें भरपेट भोजन मिलने लगा, मीठा पानी मिला और मिले रसीले मीठे फल,-बस वे अपना पहाड़ी घर भूल गए और यहीं जम गए। पर उन्हें अपनी रक्षाके लिये बड़े दलकी आवश्य-कता थी। उन्होंने साम, दाम, दण्ड और भेद, सभी प्रकारसे यहाँ वालोंको अपने दलमें मिलाना प्रारम्भ किया। ऊँची जातिवाले तो भला उनकी चमक-दमकके चक्करमें आने क्यों लगे पर जो भूखे थे, पीड़ित थे अपमानित थे, उन्हें जहाँ पेटभर भोजन मिला वहाँकी गाने लगे। खुले रूपसे हमारे अतिथि लोग हमारे घरकी नींव खोद-खोद-कर अपना-अपना मकान उठा रहे थे, पर हम देखते हुए भी सोते रहे। हमें यह समझ नहीं आई कि जिस दिन हमारी नींव ही नहीं रहेगी उस दिन हमारा यह भवन कहाँ रहेगा। गोस्वामी तुलसीदासजीने आकर बहुत समझाया, प्रताप, शिवाजी और छत्रसाल भी अपने ढङ्गसे इस लूटको रोक गए और उखड़ी हुई नींव बहुत कुछ जमा गए, पर फिर वही दशा हुई। सिक्खोंके वन्दनीय गुरुओंने भी बड़ी सँभाल तो की, पर न जाने कब और कैसे हमारे सिक्ख भाई हिन्दू

समाजके विशाल भवनकी एक कोठरी लेकर अलग हो गए और उसीकी रक्षामें लग गए मानों उनका पूरे भवनसे कुछ भी नाता नहीं है—अब उन्हें कौन समझावे कि यदि इस विशाल भवनपर कुछ भी आँच आई तो उनकी कोठरी भी आँच खाए बिना न रहेगी।

आर्य्य-समाजने केवल उपदेशमात्र नहीं दिए वरन् वह काममें भी जुट गया। जो ईंटें बाहरवाले लोग उठा ले गए थे उन्हें उनके मकानमेंसे खोद लाया और जो उठाकर ले जा रहे थे उन्हें बीचसे ही छीन लिया। पर इसमें दोष यही था कि यह काम तो ठीक करता जाता था पर घरवालों को भी आलसी, अन्धविश्वासी और ढोंगी कहता जाता था, इसीलिए घरके बहुतसे लोगोंने इसका साथ न दिया। हम समझते हैं कि यदि यह आपसमें बुरा-भला कहना बन्द हो जाता तो हम लोग संभवत: अपने मकानकी रक्षा और भी अच्छी तरह कर सकते। पहेली छोड़कर अब हम सीधी सीधी बात कहना आरम्भ करते हैं। आर्य्यसमाजने शुद्धिका काम शुरू कर दिया। उसका बड़ा विरोध हुआ पर वह डटा रहा। सनातनधर्म गिरे हुएको उठानेमें लजाता था, इसलिए वह चुपचाप एक ओर खड़ा यह सब देखता रहा।

शिवरात्रिके दिन सन् १९२७ ई० को काशीमें दशाश्वमेध घाटपर मालवीयजी मन्त्र दीक्षा दे रहे हैं।

कट्टर सनातन धर्मियोंमें मालवीयजी एक ऐसे महापुरुष निकले जिन्होंने बेचारे दीनों और पतितोंकी पुकार सुनी और उनकी सहायताको दौड़ पड़े। उन्होंने सबसे पहले सन् १९०९ ई० में नीचे वर्गोंकी शिक्षा के लिये कौन्सिल में भाषण दिया सन् १९२१ ई० के मोपला विद्रोहने मालवीयजीको चौकन्ना कर दिया और उन्होंने हिन्दू महासभा सङ्गठित करके हिन्दुओंको एक डोरीमें बाँध रखनेका उद्योग किया। साथ ही उन्होंने देखा कि हमारे अछूत भाई हमारे हाथसे निकले चले जा रहे हैं, उन्हें कोरे मौखिक प्रोत्साहन सन्तोष नहीं देना चाहिए वरन् उन्होंने

यह विचार किया कि कोई ऐसा उपाय हो कि इनका उद्धार भी हो और साथ ही उनके मनमें यह भाव भी हो कि हमारा समाजमें कोई स्थान है और दुःख पड़नेपर हमारी सहायता करनेवाला भी कोई है। इसलिये मालवीयजीने शुद्धिका बीड़ा तो उठाया ही, साथ ही उन्होंने अपनी सनातनधर्म सभामें अस्पृश्योंको मन्त्रदीक्षा देनेका भी प्रस्ताव स्वीकृत करा दिया। यह कोरा प्रस्ताव ही न रह गया वरन् एक दिन सन् १९२७ ई० में काशीमें महाशिवरात्रिके दिन दशाश्वमेध घाटपर उन्होंने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभीको ॐ नमः शिवाय, ॐ नमो नारायणाय, ॐ रामाय नमः, ॐ नमो भगवते वासुदेवाय आदि मन्त्रोंकी दीक्षा दी। दीक्षा लेनेवालोंमें ब्राह्मण भी थे और चाण्डाल भी थे।

वह दृश्य भूला नहीं जा सकता। जिस समय मालवीयजी रेशमी दुपट्टा ओढ़कर एक-एक को मन्त्र और उपदेश देते थे और फिर उनसे वचन लेकर आशीर्वाद देते थे तो जान पड़ता था मानो समुद्रकी भीषण लहरोंमें पड़े हुए सैकड़ों सहस्रों प्राणियोंको बचानेके लिये कोई दिव्य ज्योति सहस्रों हाथ बढ़ाकर उन्हें ऊपर उठा रही है। वह उनका तेज़ देखने ही योग्य था।

३० दिसम्बर सन् १९२८ ई० को कलकत्ता कांग्रेस हो रही थी, उधर मालवीयजीने हावड़ा पुलके पास लोहाघाटपर सबको मन्त्रदीक्षा देनेकी घोषणा कर दी। बड़ा हल्ला हुआ। मालवीयजीकी यह बात बहुतसे सनातनधर्मियोंको अच्छी न लगी। वे सब वहाँ टूट पड़े मानों कोई बड़ा भारी पाप करने जा रहे हों। एक व्यक्तिने उसका यह आँखोंदेखा वर्णन किया है:—

"ता० ३० दिसम्बर सन् १९२८ ई० को प्रातःकाल कलकत्तेमें गङ्गातटपर लोहाघाट नामक स्थानपर पण्डित मालवीयजी द्वारा सब हिन्दुओंको ॐकारके साथ दीक्षा देनेकी तैयारी की गई थी। एक शामियानेके नीचे होम और दीक्षाकी तैयारी की गई। क़रीब आठ बजे सुबह मालवीयजी दीक्षा-स्थानपर पधारे दीक्षा लेनेवाले लोग इकट्ठा हो ही रहे थे कि कुछ मारवाड़ी सज्जन और कुछ प्राचीन विचारके शास्त्री बहुतसे लोगोंको साथ लेकर वहाँ आ पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने खड़ा किया हुआ शामियाना गिरा दिया और होम और दीक्षाकी सामग्री भी नष्ट-भ्रष्ट कर दी। यह सब देखकर मालवीयजी गङ्गाजीके किनारे गए और वहाँ दीक्षा-कार्य्य करने लगे। परन्तु उपद्रवियोंने वहाँ भी उनका पीछा किया और उनके कार्य्यमें बाधा डालने लगे। मालवीयजीने उनसे कहा कि यदि कोई इस बारेमें शास्त्रीय विरोध हो तो मैं आपके किसी भी पण्डितसे शास्त्रार्थ करनेको तैयार हूं। इतनेमें उन्होंने मालवीयजीको घेर लिया और उनपर कीचड़ मट्टी फेंकने लगे। परन्तु मालवीयजी अत्यन्त शान्तिसे और हँसते हुए उसे सहन करते रहे।

कुछ देरके बाद शान्ति हुई और एक पण्डित अपना विरोध स्थापित करनेके लिये आगे बढ़े। विरोधी पक्षके सब शास्त्री-मण्डलकी आज्ञासे एक पण्डितने लगभग तीन घण्टेतक व्याख्यान देकर अपना मत स्थापित किया। इसके बाद उनका उत्तर देनेके लिये पण्डितजी खड़े हुए। पण्डितजीके खड़े होते ही चारों ओरसे जयजयकारकी ध्वनि गूँज उठी। मालवीयजीने विवादके निर्णयके लिये विरोधी पण्डितोंको कौनसे ग्रन्थ मान्य हैं—यह पहले पूछ लिया और बाद क्रमशः एक-एक प्रश्नका उन्हीं ग्रन्थोंके उद्धरणोंके प्रमाण रूपमें रखते हुए उत्तर दिया। पण्डितजीकी विचार-सरणी लोगोंको अत्यन्त अच्छी लगी। दर्शकोंने प्रचण्ड जयजयकारके द्वारा पण्डितजीका गौरव किया। लग-भग दो बजे दिनको विरोधी पक्षके लोग अपजस लेकर लौट गए।"

उसके बाद मालवीयजीने फिर स्नान किया और साढ़े तीन बजेतक दीक्षा-कार्य्य चलता रहा समयके अभावसे केवल चार सौ आदमियोंको ही दीक्षा दी जा सकी।

हिन्दू महासभाके अध्यक्ष डा० मुञ्जे, श्रीमत्स्वामी सत्यानन्दजी, श्री पद्मराज जैन आदि प्रमुख नेता व अन्य बहुतसे स्वयंसेवक पण्डितजीके साथ प्रातःकालसे दीक्षा समारम्भ समाप्त होनेतक बराबर खड़े रहे। महामहोपाध्याय पण्डित प्रमथनाथ तर्क-भूषण, बङ्गाल हिन्दू महासभाके अध्यक्ष भी समारम्भमें उपस्थित थे।

दीक्षार्थी स्नान करके आते थे। उनको पञ्चगव्य भक्षण कराया जाता था। अनन्तर उनको 'ॐ नमः शिवाय', 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' अथवा 'ॐ नमो नारायणाय' इस मन्त्रकी विधिपूर्वक दीक्षा दी जाती थी। दीक्षा देनेके पश्चात् जिस मन्त्रकी दीक्षा दी गई हो वह मन्त्र छपा हुआ तथा एक वस्त्र उस मनुष्यको ओढ़नेके लिये दिया जाता था। तब चने और बतासे देकर कार्य्य समाप्त किया जाता था।

फिर मन्त्र दीक्षा

कुछ दिनोंके पश्चात् कलकत्तेमें फिर एक दीक्षा-समारम्भ हुआ। यह दूसरा दीक्षा समारम्भ ६ जनवरी सन् १९२८ को हुआ था अबकी बार दीक्षा-स्थानके चारों ओर पुलीस और स्वयंसेवकोंका पूरा प्रबन्ध था। यह सब होते हुए भी जब पण्डितजी नदीमें स्नानको उतरे तब एक शिखा सूत्रधारी गुण्डा छुरा लेकर उनपर टूट पड़ा। परन्तु सौभाग्यवश पण्डितजी बाल बाल बच गए और गुण्डा पकड़ लिया गया। बादमें पण्डितजीने बहुतसे अछूतों तथा अन्य हिन्दुओंको दीक्षा दी। अनेक प्रतिष्ठित व्यक्ति उपस्थित थे। कुछ अंग्रेज़ सज्जन भी आए थे। दीक्षा कार्य्य प्रातःकाल नौ बजे प्रारम्भ होकर दिनके बारह बजे धूमधाम-सहित निर्विघ्न समाप्त हुआ।

इसके अनन्तर भी प्रयागमें, काशीमें कितनी ही बार मालवीयजीने मन्त्र-दीक्षा दी। १२ मार्च, सन् १९३६ ई० को मालवीयजी नासिक गए। वहाँ गोदावरी तट पर राजेबहादुर घाटपर आपने लगभग डेढ़ सौ हरिजनोंको 'नमः शिवाय' मन्त्रकी दीक्षा दी। यहाँ भी मालवीयजीका जो सम्मान हुआ और नगरकी विभिन्न संस्थाओंने जो उन्हें मानपत्र दिए उसका क्या वर्णन किया जाय। मन्त्रदीक्षाके विषयमें कितने लोगोंने उनका विरोध किया पर मालवीयजीने उस वैद्यके समान आचरण किया जो रोगीके लाभके लिए उसकी गालियोंकी चिन्ता नहीं करता।

इसके पश्चात् १ अगस्त सन् १९३३ ई० को महात्मा गान्धीने हरिजन आन्दोलन आरम्भ किया, जिसका मुख्य उद्देश्य था—हरिजनोंके लिये सार्वजनिक स्थानोंका प्रयोग कराना और

नासिकमें मालवीयजी।

मन्दिरोंमें उनका प्रवेश कराना। इसके लिये महात्मा गान्धी चाहते थे कि एक विधान बन

जाय और हरिजन लोगोंके लिये मन्दिर खुल जायँ। महात्मा गान्धीने इस कार्य्यके लिये सारे भारतका दौरा किया। उन्हें स्थान स्थानपर हरिजन आन्दोलनके लिये धन भी मिला और उसका सबसे कड़ा परिणाम यह निकला कि कितने ही सार्वजनिक मन्दिर हरिजनोंके लिये खुल गए, कितने कुओंसे उन्हें पानी निकालनेकी सुविधा हो गई, हरिजन पाठशालाएँ खुल गईं और सार्वजनिक स्कूलोंमें उनके पढ़नेकी व्यवस्था हो गई। गान्धीजीकी सब बातें तो मालवीयजी मानते थे पर वे यह नहीं चाहते थे कि शूद्रोंको मन्दिरोंमें प्रवेश करनेका अधिकार सरकारी कानूनद्वारा मिले। गान्धीजीसे जिन्हें थोड़ासा भी परिचय होगा उन्हें यह जानकर सचमुच अचरज होगा कि सरकारमें तनिकसा भी विश्वास न रखनेवाले गान्धीजी, हरिजनोंके मन्दिर-प्रवेशके लिये सरकारी शरण लेना चाहते थे। पर उनका यह दौरा १ अगस्त सन् १९३४ ई० को काशीमें आकर समाप्त हो गया। उस अवसरपर काशी सेण्ट्रल हिन्दू स्कूलके मैदानमें बड़ी भीड़ हुई। वहाँ मालवीयजीने अपनी इस नीतिको बड़े सुन्दर शब्दोंमें प्रकट किया। उसी अवसरपर पहली अगस्त सन् १९३४ ई० को लोकमान्य तिलककी पुण्यतिथिके दिन काशी-हिन्दू विश्व-विद्यालयमें भी गान्धीजीका भाषण हुआ और उसमें भी उन्होंने अपना मत प्रकट किया।

नीचे के महात्मा गान्धीके भाषणमें ही आप महात्मा गान्धीके हरिजनोद्धारके उपाय और मालवीयजीके हरिजनोद्धारके उपायोंका पूरा विवरण पा सकेंगे। गान्धीजीने कहा :—

"पूज्य मालवीयजी ! भाइयो और बहनो !—

मुझे ईश्वरने दुबारा काशीमें आनेका मौका दिया है, मुझे इसका बड़ा हर्ष है, और मुझे खुशी होती है कि इस पवित्र धाममें ही मेरा हरिजन दौरा समाप्त हो रहा है। मैं जो कुछ पैगाम देना चाहता हूँ वह यहाँ ही दे सकता हूँ। मुझे दुःख है कि वर्णाश्रम स्वराज्य सङ्घकी तरफसे जो पण्डितजी आ रहे थे और जिनके लिये प्रबन्ध भी हो गया है वे कारणवशात् यहाँ अभीतक न

१ अगस्त सन् १९३४ ई० को हिन्दू विश्वविद्यालयके शिवाजी भवनमें देशके दो महापुरुष महात्मा गान्धी और मालवीयजी।

आ सके। मुझे यह प्रिय लगता है कि जिनका इस बारेमें हार्दिक विरोध है वे भी उसी प्लेटफार्म पर आकर बोलें जिसपर मैं बोलता हूँ। मेरा यह कार्य धार्मिक ही है। इसमें दुराग्रहको स्थान नहीं है। इसके लिये कोई भी प्रयत्न किया जाय वह अपूर्ण ही होगा। मुझसे ग़लतियाँ हो सकती

उसका पालन करनेकी चेष्टा करे वह भी भयमुक्त हो सकता है, तो यह बात मेरे जीवनमें कोई नई पैदा नहीं हुई है। इस वृद्धावस्थामें भी पचास या सौ वर्षसे अधिकसे जो मूर्खता चली आई है उसे हटानेमें मुझे तनिक भी सङ्कोच न होगा।

मुझे कहना न होगा कि जितना प्रयत्न शास्त्रियों और पण्डितोंसे विचार करनेका हो सकता है, मैंने किया। जिन शास्त्रियोंका अभिप्राय है कि अस्पृश्यता शास्त्रसम्मत है, मैं ऐसे शास्त्रियोंसे मिला। कुछ निमन्त्रणसे आए और कुछ स्वेच्छा से। वे मानते थे कि आधुनिक अस्पृश्यता शास्त्रसिद्ध है। मैंने उनकी बात भी सुनी किन्तु उनकी बातोंने मेरे दिलपर कोई असर नहीं डाला। मुझे जब कभी अपने अज्ञानका पता चला है तो मैंने बिना किसीकी प्रेरणाके ही अपनी भूल स्वीकार कर ली है। शास्त्रियोंकी बातें समझते हुए भी मेरे दिलपर असर डालनेवाला कोई अस्पृश्यता का प्रमाण नहीं मिला। कोई अस्पृश्य भाइयोंकी संख्या सात करोड़के करीब बताते हैं किन्तु इसमें अतिशयोक्ति है। वास्तवमें वे पाँच करोड़ हैं। इसके प्रमाणके लिये हम जिस स्मृतिको मानते हैं वह नई स्मृति हम सेन्ससके नामसे पुकारते हैं। इस सेन्ससके अनुसार ही हम कहते हैं कि इतने अस्पृश्य हैं। उसमें प्रति दस वर्षमें परिवर्त्तन होता जाता है। चन्द जातियाँ जो दस वर्षमें अस्पृश्य मानी जाती हैं वे अगले दस वर्षमें स्पृश्य हो जाती हैं। और जो आज स्पृश्य हैं वे दस वर्ष बाद अस्पृश्य हो जाती हैं। इसके लिये शास्त्रमें कोई प्रमाण नहीं है। इन लोगोंसे जैसा वर्त्ताव चल रहा है तो शायद ही ऐसा हो कोई नास्तिक हो जो कहेगा कि इसके लिये शास्त्रमें प्रमाण है। यदि एक भङ्गीका बालक कुएँपर जाता है तो पता चलनेपर लोग उसे पानी नहीं भरने देते। उसे छू जानेपर कुआँ अस्पृश्य माना जाता है और यह हरिजन बालक पीटा जाता है, इस अन्यायके लिये हिन्दू जाति ही जिम्मेदार है।

एक हरिजन बालकको न्यूमोनिया हुआ, फेफड़े बिगड़ गए, खाँसी और सर्दी भी हुई, १०४ डिगरी बुखार हो गया। उसके लिये डाक्टर चाहिए, डाक्टरके लिये फ़ीस चाहिए, डाक्टर हिन्दू होता हुआ भी उसकी नाड़ी परिक्षाके लिये मुसलमान डाक्टर भेजता है। तब डाक्टर महोदय उसको बाहर बुलाते हैं और ऊपरसे देखकर ही पुड़िया देनेका वचन देकर चले जाते हैं। जब डाक्टर मुझे देखता है तो अपने यन्त्र-को कभी यहाँ लगाता है, कभी वहाँ लगाता है और अच्छी प्रकारसे परीक्षा करता है, किन्तु हरिजनको केवल देखकर ही वह रोग पहचान लेता है। यदि ऐसा मौका होता तो मैं इसे व्यक्तिगत स्वभावका दोष बतलाकर ही छोड़ देता और किसीके सिर जिम्मेदारी न डालता परन्तु ऐसे सैकड़ों उदाहरण मौजूद हैं। सेन्ससके दफ़्तरमें जो अछूत लिखे गए हैं वे जन्मसे हैं ऐसा मेरी बुद्धि और मेरा हृदय स्वीकार नहीं करता। इसका उत्तर शास्त्री लोग भी मुझे न दे सके। अभी-अभी देवनायकाचार्यजी आप हैं जिस ध्यानसे आपने मेरे शब्द सुने हैं उसी प्रकार पण्डितजीका भाषण भी सुनें और जैसा असर पड़े, जो आप उचित समझें वैसा निश्चय कर सकते हैं। मैं सिर्फ़ एक बात और कहूँगा। काशीके पण्डितोंकी ओरसे जो मुझे स्वागत पत्र मिला है उसके लिए मैं आभारी हूँ। उसे मैं आप लोगोंका आशीर्वाद मानता हूँ। जो द्रव्य मुझे मिला है उसके लिये मैं धन्यवाद देता हूँ। यद्यपि वह बहुत थोड़ा है परन्तु मुझे विश्वास दिलाया जा रहा है कि अभी और संग्रह करनेकी चेष्टा की जायगी।"

इसके बाद वर्णाश्रम स्वराज्य सङ्घके श्री देवनायकाचार्यजीने अपना मन्तव्य प्रकट किया और इसके पश्चात् पूज्य मालवीयजीने भाषण दिया:—

"देवियो और सज्जनो!

अभी आप लोगोंके सामने श्री देवनायका-

चार्यजीने बड़ी शिष्टता और सभ्यताके साथ अपना मत प्रकट किया है। इससे पहले कई बार शास्त्रका विचार करनेका प्रयत्न किया और उसका परिणाम छापकर विद्वानोंके विचारके लिये भेज भी दिया गया था। मैं बहुत समयसे इस प्रयत्नमें हूँ कि निष्पक्ष होकर विद्वान् लोग यह निर्णय करें कि शास्त्र क्या कहता है। मुझे खेद है कि अबतक ऐसा न हो सका किन्तु मुझे आशा है कि यह निर्णय शीघ्र ही होगा और विद्वत्मण्डली रागद्वेष छोड़कर जो बतावे और निर्णय करे उसे सबको मान लेना चाहिए। तभी सबका भ्रम भी मिट जायगा। मुझे गान्धीजीके सन्देशके विषयमें कहनेसे पूर्व कुछ याद आया। वही मैं कहना चाहता हूँ। अस्पृश्यता और मन्दिर-प्रवेश बिलके सम्बन्धमें मेरा अपने भाई (गान्धीजी) से कुछ मतभेद है। मैं उनकी बहुतसी बातें मान लेता हूँ और वे भी मेरी बातें मानते हैं और मुझे आशा है कि मैं धीरे-धीरे उन्हें मना भी लूँगा। मेरी रायमें ऐसा बिल एसेम्बली-द्वारा नहीं पास होना चाहिए। गान्धीजीकी राय है कि वह बिल हिन्दुओंको बहुसंख्याकी रायसे पास हो, दूसरी जातिके लोगोंकी रायसे न बने। इस बारेमें मैं कल अपने भाई (गान्धीजी) से विचार करूँगा।

मन्दिरके विषयमें तो आप जानते हो कि हमारे यहाँ कोई विष्णुका मन्दिर है कोई शिवका और कोई कालीका। फिर किसके मतसे मन्दिर-प्रवेशका निर्णय हो। इसके लिये तो शास्त्रके अनुसार ही निर्णय होना चाहिए। गान्धीजीकी भी राय है कि सनातनियोंको चोट न पहुँचे। जबसे उन्होंने यह प्रयत्न प्रारम्भ किया है तबसे बहुत उन्नति हुई है। अस्पृश्यता भी बहुत मिटी है लोगोंके विचारोंमें भी बहुत परिवर्त्तन हुआ है। मतभेद तो भाई-भाईमें होता है। मेरा और इनका (गान्धीजी) का सम्बन्ध बड़ा घना है। मतभेद प्रकाशनसे परस्पर वैर नहीं होता। अपना-अपना मत रखना तो स्वभाव है। जो न्यायकी बात हो, धर्मकी बात हो और देश-जातिके मङ्गलके लिये हो, वही करनी चाहिए। आप लोग स्मरण रखिए कि महात्मा गान्धीका हृदय सनातनधर्मके भीतर बैठा है और वे इसे बहुत चाहते हैं। अछूत लोगोंको हिन्दूजातिसे बाहर निकालनेका ईसाइयोंने प्रयत्न किया, मुसलमानोंने प्रयत्न किया और कितने ही अछूत भाइयोंको मुसलमान और ईसाई बना भी लिया। जो गौके रक्षक थे, गौको माता मानते थे, मुँहसे राम-राम जपते थे, चुटिया रखते थे, वे आज ईसाई और मुसलमान हो गए। वे अब धर्मरक्षक न रह गए। इसी बातपर महात्मा गान्धीने यह आवाज़ उठाई। चुटिया जिनके सिरपर, मुँहमें राम-राम, घरपर सत्यनारायणकी कथा होती हो ऐसे सनातनधर्मके माननेवाले चमार, भङ्गीको ईसाइयोंने अपने दलमें बुलाया और मुसलमानोंने अपने, किन्तु इन्होंने अनेकों कष्ट सहकर भी गङ्गा और गऊको, राम और कृष्णको न छोड़ा। मेरा सिर उनके सामने झुक जाता है। उन्हीं को लाभ पहुँचानेके लिये ही गान्धीजीने सिर उठाया। मैं सनातनधर्मके नाते चाहता हूँ कि जो लाभ मुसलमान और ईसाइयोंको मिलता हो वही लाभ डोम और भङ्गीको भी मिले। हमारे सनातनधर्मकी महिमा है कि मनुष्य चाहे किसी भी जातिमें रहे किन्तु यदि धर्मसे चले तो उसका उद्धार हो जाता है। मैं धर्मग्रन्थोंके अध्ययनके अनुसार कहता हूँ कि इनको भी देवदर्शनका लाभ मिलना चाहिए। यही अभिलाषा गान्धीकी भी होगी। स्कन्द-पुराणमें भी इसका प्रमाण है कि यदि चाण्डाल सदाचारी हो तो वह ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यके समान आदर पानेके योग्य हो जाता है। यदि ऐसा हो सकता हो तो फिर हम अपने अछूत भाइयोंको सदाचारी क्यों न बनावें। हम उसका सदाचारी बनाकर दिखा दें कि जो भाई छोटे-से-छोटा हो उसे भी हिन्दू धर्म ऊँचा उठा सकता है।

एक ब्राह्मणको अपने ज्ञानका बड़ा अभिमान था। जब वह एक स्त्रीके पास गया तो उसने बतलाया कि मिथिलामें धर्मव्याधके पास जाकर शिक्षा लो। मिथिला जानेपर उसने देखा कि धर्मव्याध दूकानपर बैठा मांस बेच रहा था। किन्तु उसके संस्कार बड़े अच्छे थे, उसको धर्मका ज्ञान था। ब्राह्मणने उससे धर्मका उपदेश सुना। इस कथाका अर्थ यह है कि चाण्डाल जातिमें होनेपर भी उसके पूर्व जन्मके संस्कार इतने उत्तम थे कि ब्राह्मणने उससे धर्म सुना। जहाँ नीमका जङ्गल होता है वहाँके सब पेड़ कड़वे हो जाते हैं, किन्तु जहाँ चन्दन होता है वहाँ सब वृक्षोंमें सुगन्ध आ जाती है। सत्सङ्ग और सदाचारकी यह महिमा है।

सदाचार ऐसी वस्तु है कि इससे नीच कुलमें उत्पन्न होकर भी मनुष्य ऊँचा सम्मान पा सकता है। इस प्रकारका उपदेश माहात्मा गान्धी आपको देते हैं। वे चाहते हैं कि इन लोगोंकी तकलीफ दूर हो। यदि कुएँपर एक हमारा अछूत भाई रामदास जाय, जिसके सिरपर चुटिया है, जो एकादशी व्रत रखता है, सत्यनारायणकी कथा सुनता है, गङ्गास्नान करता है, यदि वह प्यासा रह गया तो समझ लो कि हमारे पूर्व पितर सब प्यासे रह गए। चाण्डाल भी हमारे अङ्ग हैं। हमारा धर्म है कि स्मृतिमें जो उनके लिए धर्मका मार्ग दिखाया है उसका उपदेश दें। क्या आपलोगोंमेंसे कोई चाहते हैं कि उन्हें पानीको पानी न मिले? (श्रोता—नहीं-नहीं)। क्या आप चाहते हो कि जिन सड़कोंपर सब लोग चलतेहों उनपर उन्हें चलनेको न मिले? (कभी नहीं), क्या आप चाहते हो कि जिन स्कूलोंमें ईसाई-मुसलमानोंके लड़के पढ़ते हैं उनमें वे न पढ़ने दिए जायें? (कभी नहीं)। हाँ यह हो सकता है कि जिन पाठशालाओं और विद्यालयोंमें केवल द्विजातियोंके पढ़नेकी व्यवस्था हो वहाँ वे न पढ़ें किन्तु सर्वसाधारण स्कूलोंमें तो उनको पढ़ने ही देना चाहिए। मेरी यही इच्छा है कि ऐसी जगहोंमें जहाँ रोक हो वह मिटे।

आज चार या पाँच करोड़ हिन्दू अछूत कहलाते हैं। इनमें अछूत वे ही हैं जो मैले काम करनेवाले हैं। वे मानव जातिकी वह सेवा करते हैं जो कोई कर नहीं सकता। यदि वे एक दिन भी अपना काम बन्द कर दें तो हमारी क्या दशा होगी, विचार कर लो। भगवानने कहा है:—
"स्वे-स्वे कर्मण्यभिरत संसिद्धिं लभते नरः"
अपने-अपने काममें लगे हुए लोग मेरा पद पा सकते हैं। ये भङ्गी-चमार भाई सब अपना काम करें। फिर स्नान करके यदि सूर्य्यनारायणको अर्घ्य दें, मन्त्र जपें तो बोलो इनका मङ्गल होगा कि नहीं? (अवश्य-अवश्य) देह धोकर यदि हमारा भाई चाण्डाल और हमारी बहिन चाण्डालिनी यदि मन्त्र जपे, रामका नाम ले, कथा सुने, व्रत करे, तो धर्मकी उन्नति हुई कि नहीं? (हुई)

मैं गान्धीजीकी कई बातें नहीं मानता हूँ। किन्तु मुझे विश्वास है कि इनके मतभेदको मैं मिटा दूँगा।

मैं चाहता हूँ कि इन गरीब बहिनोंको ऐसा अवसर प्राप्त हो कि साढ़े चार बजे घरसे निकलकर मल साफ करके नहाएँ और अच्छे कपड़े पहनकर राम-नाम जपें, बताओ तब उन्नति होगी कि नहीं? जबसे मौण्टेगू चेम्सफ़र्ड स्कीम आई तबसे ईसाई कहते हैं कि इनमेंसे आधे हमें दो। मुसलमानोंने अलग हाथ पैर फैलाए, लालच दिए, किन्तु धन्य हैं ये भाई, सब तकलीफ उठाकर भी ये हिन्दू धर्ममें ही रहे। मैं इनके आगे अपना माथा टेकता हूँ।

नृसिंह पुराणमें लिखा है—

ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र तथा अन्त्यज—सबके लिये भगवान्के दर्शनका अधिकार है। जहाँ मन्दिरके अधिकारी प्रसन्नतासे जानेका अवसर दें वहाँ गर्भद्वारके बाहरसे ही दर्शन करा दें। जहाँ न आज्ञा दें वहाँ न जायें। मेरा विचार है कि हर एक बस्तीमें ऐसे मन्दिर बनवा

दिए जायँ, जिनमें सब जातियाँ जा सकें और भजन-कीर्तन, कथा-उपदेश सुन सकें।

हमें इन अछूतों को जल देना है। रहनेको स्थान देना है और इन्हें शिक्षा देनी है। मैं तो चाहता हूँ कि उनके चार करोड़ घरों में मूर्त्तियाँ रक्खी हों और भगवान्‌का भजन हो, तभी तो मङ्गल होगा। महात्माजीने जो बारह महीनेसे कार्य्य उठाया था वह परसों तक इस विश्वनाथजी की नगरीमें समाप्त हो जायगा। भगवान् इन्हें दीर्घायु करें और सदा मङ्गल करें जिससे ये सबका दुःख दूर करें। आपकी तपस्या और परिश्रमके लिये धन्यवाद है। भगवान् विश्वनाथ आपको दीर्घजीवी करें।"

इसके बाद तो बहुत बड़े बड़े विद्वानोंने भी मन्त्र दीक्षा देनी शुरू की, जिनमें महामहोपाध्याय पण्डित प्रमथनाथ तर्कभूषण और पण्डित यज्ञनारायण उपाध्यायजीका नाम उल्लेखनीय है। सन् १९३६ ई० की शिवरात्रिका महोत्सव तो सबसे अधिक भव्य निकला। काशीमें हाथियों पर वेद भगवान् और छहों दर्शनोंके स्वरूप छः विद्वानोंका जलूस था। बड़े बड़े पण्डित शिवमहिम्न स्तोत्र का पाठ कर रहे थे उनके पीछे अपार जनसंख्या, हरिजनोंके अखाड़े, गानेबजानेवालोंकी गाड़ियाँ—एक अपूर्व समारोह था—वर्णन नहीं किया जा सकता। दशाश्वमेध घाटपर जलूस पहुँचा, वहाँ सभा हुई। बीमार होनेपर भी मालवीयजी वहाँ आए और उपदेश दिया। फिर अगले दिन उन्होंने मन्त्र-दीक्षा दी।

इस मन्त्र-दीक्षाका सबसे बड़ा प्रभाव तो यह हुआ कि काशीके सारे हरिजन यह समझने लगे कि हम हिन्दू हैं, हमें भी रामनाम जपनेका अधिकार है।

हरिजनोंके उद्धारके लिये मालवीयजीने इतना ही नहीं किया वरन् कई बार हरिजनोंके मुहल्ले देखनेके लिये गए, उन्हें सफाईका उपदेश दिया और उनके मकान बनानेके लिये उद्योग किया।

मालवीयजीके इस कामने काशीके कुछ पण्डितोंको इतना रुष्ट कर दिया कि कुछ लोग तो मालवीयजीको गालियाँ देने लगे। पर हम पूछते हैं सच्चे हृदयसे, कि क्या वे लोग मालवीयजीके विशाल हृदयको तनिक भी पहचान पाए हैं? इस बातको हम दावेके साथ कह सकते हैं कि जैसा सादा और परम पवित्र जीवन मालवीयजीका था उतना पवित्र जीवन शायद ही विश्वके किसी कोनेमें मिल सके। पर हम समझते हैं कि वे विद्वान् पण्डितगण भी यदि सूक्ष्म दृष्टिसे एकान्तमें बैठकर विचारेंगे तो उन्हें ज्ञात हो जायगा कि मर्य्यादा पुरुषोत्तम रामने जब निषादको गलेसे लगाया उस समय राम, राम ही बने रहे, पर निषाद अपनी स्थितिसे ऊँचे उठ गया। पारस कभी लोहा नहीं बनता है, वह लोहेको सोना बना देता है। हमारे विद्वान् पण्डितगण यह बात जानते हैं और वे जल्दी ही यह समझ जायँगे कि गङ्गाजीकी पवित्रधारामें सारा संसार आकर डुबकी लगा लेता है और सारा मल भी उसमें डाल देता है, पर गङ्गाजी वही जगत्पावनी बनी रहती हैं, और भगवान् विश्वनाथजी नित्य उन्हींके जलसे स्नान करनेको उत्सुक रहते हैं।

गूँगी माता

जब हमें कभी पीड़ा होने लगती है तो हम छटपटाते हैं, रोते और चिल्लाते हैं और बता देते हैं कि पीड़ा कहाँ हुई है। पर यदि वही पीड़ा किसी गूँगे को हो, जिसके हाथ पैर न हो, तब वह अपनी पीड़ा कैसे बतावे? ऐसे कितने लोग हैं जो आँख के आँसू देखकर किसी की विथा पहचान लेते हैं। जो कथा अब हम कहने जा रहे हैं यह बड़ी दुखभरी है। सुनते हैं हमारे देश में दूध की नदियाँ बहती थीं। हमारे उपदेशक लोग बड़े अभिमान से चिल्ला-चिल्ला कर सभाओं में यह बात कहा करते हैं। यह बात वैसी ही है जैसे दिल्ली के कुछ ताँगेवाले सम्राट् अकबर के खानदान से अपना रिश्ता जोड़ा करते हैं। पर और उनके सामने दिल्ली का किला ओर आगरेका ताज उनके पुराने वैभवकी उन्हें याद तो दिलाते हैं। यहाँ दूर तक चले जाइए, खेतों में मरभुखे बैल और गोधनों में सूखी हुई गैयाँ मिलेंगी जिनका एक एक हाड़ गिन लीजिए, और ऐसी भी इतनी कम हैं जो उँगली पर गिनी जा सकती हैं। पर इसका एक और भी रूप है। जबसे अंग्रेज़ हिन्दुस्थानमें आए तबसे हिन्दुस्थानियोंको भी गर्मी अधिक लगने लगी है। उन पहाड़ी प्रान्तोंमें, जहाँ संसारकी मोहमाया त्याग कर लोग अपना जीवन एकान्तमें बिताया करते थे, उन्हीं हिमालयकी पर्वत मालाओं में मोहमायाको साथ लेकर लोग पहुँच गए हैं। पर्वतकी पवित्रता ओर एकान्तता तो मिट ही गई, साथ ही उसका स्वरूप भी बदल दिया। जहाँ लोग ब्रह्म से मिलने जाया करते थे वहाँ विलास ने डेरा जमा लिया। योगियोंका भोगियों ने छीन लिया। इन्हींमेंसे एक मन्सूरी पहाड़ भी है। देहरादूनकी घाटीसे यह पहाड़ सामने दिखाई पड़ता है जहाँ नित्य संध्या को बिजली के दीपोंकी मनोहर दिवाली मनाई जाती है। गर्मीके दिनों में तो वहाँ नन्दनवन ऊपर से उतर आता है और नीचे के देवता लोग ऊपर चढ़ जाते हैं। यहींका एक दृश्य है। कुछ लोगोंने आँखों से देखा होगा, सुना तो बहुतोंने होगा। यहाँ तीसरे-चौथे दिन गायोंका एक झुण्ड आया करता है, जिनके पीछे-पीछे लाठी लिए हुए कसाई बड़ी बेरहमी से हाँकते हुए लाते हैं। ये गौएँ कितनी सुन्दर, स्वस्थ और बलिष्ठ होती हैं कि बस देखते ही बन पड़ता है। जान पड़ता है कि इन्हीं गाओंको देखकर रसखानने कहा था—"आठहुँ सिद्धि नवौ निधिको सुख नन्दकी गाय चराय बिसारौं" पर ये सुन्दर गायें स्मशान में ले जाई जाती हैं। वहाँ कई कई गायें एक साथ छुरेके नीचे पहुँचाई जाती हैं। कुछ गायें हठ करती हैं, आगे नहीं बढ़तीं, उनकी पूँछ ऐसी बुरी तरह मरोड़ी जाती है कि वह टूट जाती है। बेचारी पीड़ासे उछलकर आगे बढ़ती हैं और फिर समाप्त। हिन्दुओंकी ये माताएँ उसी पवित्र हिमालयकी गोदमें, जहाँसे गङ्गा निकलती हैं और उन्हीं हिन्दुओंके सामने, जो उन्हें माता कहते हैं, राक्षसोंका भोजन हो जाती हैं। जहाँ एक ओर आँखमें आँसूभरकर पचीस करोड़ पुत्रोंके होते हुए भी वह माता बेबस होकर प्राण देती है, वहीं दूसरी ओर हम लोग सिनेमा देखते हैं, दूर देशोंके समाचार पढ़ते हैं और अपनी गर्मी शान्त करते हैं। उस हल्लेमें हमें अपनी गूँगी माँका विलाप नहीं सुन पड़ता, हम नहीं समझ पाते कि हमारे

बच्चोंके मुँहसे बलपूर्वक दूध छीना जा रहा है। हम लोग चुप बैठे रहते हैं, साम्यवाद और समाजवादका ढकोसला करते हैं और हमारी आर्थिक समस्याका जो इतना महत्त्वपूर्ण पहलू है उसकी ओर ध्य न नहीं देते।

कौटिल्यके अर्थशास्त्रको पढ़नेसे ज्ञान पड़ेगा कि उस समय दुधारू पशुओंकी रक्षाके लिये राज्यकी ओर से कैसे-कैसे उपाय किए जाते थे। जो ग्वाले गर्मीके दिनों में बछड़ोंके लिये पर्याप्त दूध नहीं छोड़ते थे उनके अँगूठे काट लिए जाते थे। किसी बछड़े, साँड़ या गौको मारनेकी आज्ञा नहीं थी। यह प्रथा बनी चला आई और गौ केवल हिन्दुओंकी माता नहीं, वरन् तीनों लोकोंकी माता कहलाई जाने लगी।

'गावस्त्रैलोक्यमातरः'

हिन्दुओंकी बात तो जाने दीजिए, मुसलमानी शासनकालमें भी गोरक्षापर बड़ा ध्यान रक्खा गया। बाबरने अपने मरनेके समय अपने पुत्र हुमायूँको उपदेश देते हुए यह भी कहा था कि यदि तुम भारतके लोगोंके हृदयपर शासन करना चाहते हो तो गौकी हत्या न होने देना।

मुस्लिम राज्यकी स्थापनासे लेकर फीरोज़ शाह तुगलकके समय तक गौकी बिक्रीपर जुज़ी नामका एक कर लगाया जाता था जिसका उद्देश्य यही था कि गौकी रक्षा हो सके। अकबर और जहाँगीर दोनोंने गौकी रक्षाका प्रयत्न किया। 'इस्लामी गोरक्षण' के अनुसार बादके मुगल-बादशाहों में मुहम्मद शाह और शाह आलम ने भी गोवधकी मनाही कर दी थी।

मुगलोंके अन्तिम दिनोंमें प्रातःस्मरणीय छत्रपति शिवाजीने तो केवल गौ और ब्राह्मणकी रक्षाके लिये ही तलवार सँभाली थी। जब वे बारह वर्षके थे, एक दिन उन्हें ज़बरदस्ती बीजापुरके सुलतानके दरबारमें जानेके लिए कहा गया। उन्होंने साफ़ कह दिया, "हम हिन्दू हैं, वे यवन हैं। वे बड़े नीच हैं क्योंकि वे गौकी हत्या करते हैं। सरेआम गौएँ मारी जाती हैं। मेरा वस चले तो मैं इन हत्यारोंकी गर्दन मार दूँ।"

वर्तमान समयमें काश्मीर और नैपालने गोरक्षा में प्रशंसनीय काम किया है। जोधपुर रियासत तो इससे भी आगे बढ़ी हुई है। वहाँसे गौ, भेड़ और बकरीका बाहर भेजनातक मना है। सन् १९२६ ई० में बेलारी ज़िलेके अन्तर्गत सोण्डर राज्यके शासकने गोवध रोकनेकी तो घोषणा कर ही दी है साथ ही बूढ़ी और सूखी गौओंको भी कसाइयोंके हाथसे ले लेनेका प्रबन्ध राज्यकी ओरसे किया है।

यह जानकर किसे आश्चर्य और हर्ष न होगा कि वर्तमान कालमें सबसे पहले गोरक्षाका काम सीतापुरके प्रसिद्ध मुसलमान वकील श्री सैयद नाज़िर अहमद साहबने प्रारम्भ किया था और उन्होंने सीतापुरमें ही 'इस्लामी गोरक्षण सभा' स्थापित की। वे गौके और गोपाल कृष्णके अनन्य भक्त थे। उन्होंने सदा यह प्रचार किया कि इस्लाम धर्मने कहीं भी गोवधकी आज्ञा नहीं दी है। उन्होंने गोरक्षाके लिये बहुतसे पर्चे और पुस्तकें बाँटीं। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रके शब्दोंमें हम कह सकते हैं:—

'इन मुसलमान हरिजनपर कोटिन हिन्दू वारिए।'

सन् १८७१ ई० में मद्रासमें 'सोसाइटी फ़ौर दि प्रिवेन्शन औफ़ क्रुएल्टी टु ऐनिमल्स' (जीवों को निर्दयतासे बचानेवाली समिति) नामक संस्था शुरू हुई। यह तबसे काम करती आ रही है और इसके इन्स्पेक्टरोंको पुलीसके सिपाहियों के अधिकार मिले हुए हैं कि वे किसी भी जीव-हिंसकको गिरफ्तार कर सकते हैं।

कलकत्तेका 'काउ-प्रिज़र्वेशन लीग' (गोरक्षा-सङ्घ) सन् १९०८ ई० में स्थापित हुआ और इसके अध्यक्ष हुए सर आशुतोष मुकर्जी। फिर तो अनेक पिंजरापोल' गोशालाएँ और गोरक्षक मण्डलियाँ बनीं।

मालवीयजीका गोरक्षा-आन्दोलनसे बड़ा सम्बन्ध रहा है। राष्ट्रिय महासभा (कांग्रेस) के जन्मके बाद ही उसीके साथ प्रतिवर्ष गोरक्षा-

सम्मेलन भी होने लगा और मालवीयजी उसमें बड़ा भाग लेने लगे। इधर हरिद्वारके पास गो-वर्णाश्रम धर्म सभा कनखलने और फिर भारतधर्म महामण्डलने और सनातनधर्म सभाओंने गोरक्षाके लिये आन्दोलन किया और मालवीयजी इनमेंसे अनेक गोरक्षा-सम्मेलनोंके सभापति रह चुके हैं। मालवीयजीने केवल प्रचार मात्र ही नहीं किया वरन् स्थान स्थानपर गोशालाओं और पिञ्जरा-पोलोंके लिये रुपया भी इकट्ठा किया। राजाओं, महाराजाओं, ज़मीन्दारों और तालुकेदारोंसे मिलकर गोचर भूमिके लिये जगह छुड़वाई। मथुराके हासानन्दका नाम गोरक्षाके इतिहासमें अमर रहेगा। वे सदा अपना मुँह काला किए रहते थे और उनका कहना था कि जबतक हम पूरे तौरसे गोवध बन्द नहीं करते तबतक हम लोगोंको अपना मुँह काला ही रखना चाहिए। पूज्य मालवीयजीने हासानन्दजीकी बड़ी सहायता की और मथुराके हासानन्द गोचर-भूमि ट्रस्टके स्थापित करनेमें पूरी मदद दी।

ऊपर हमने कहा है कि राष्ट्रिय महासभाके साथ-साथ गोरक्षा सम्मेलन हुआ करते थे। अखिल भारतीय गोरक्षा समिति, साबरमतीके अधीन महात्मा गान्धीकी सरक्षतामें एक केन्द्रीय गोरक्षा समिति बनी जो बराबर गोरक्षाका काम करती है।

सन् १९२८ ई० में मालवीयजीकी अध्यक्षतामें प्रयागमें जो सनातनधर्म महासम्मेलन हुआ उसमें गोरक्षाके सम्बन्धमें बड़े महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव हुए। ये केवल प्रस्तावमात्र नहीं हैं वरन् गोरक्षाकी पूरी कार्यप्रणाली ही है।

गोरक्षा

(१) (क) इस महासभाको यह देखकर बहुत सन्ताप होता है कि इस देशमें गोवंशका बड़ा भयङ्कर संहार हो रहा है। अतएव महासभा हिन्दू भाइयोंसे सानुरोध प्रार्थना करती है कि वे गौओंको वधिकोंके हाथ पड़नेसे बचावें और वन्ध्या और बूढ़ी गौओंको ऐसे स्थानोंमें, जङ्गलोंमें और रियासतोंमें रखनेका प्रबन्ध करें जहाँ क़ानूनसे गोहत्या निषिद्ध हो।

(ख) यह महासभा ज़मीन्दारोंसे निवेदन करती है कि गाँवोंमें गोचारणके लिये काफ़ी भूमि छोड़नेका नियम करें और जहाँ गोचारण भूमिको खेतोंमें मिला लिया गया हो उसे छोड़ दें तथा गवर्नमेंटसे अनुरोज करती है कि ऐसी ज़मीनपर मालगुज़ारी न ले।

(ग) जहाँ-जहाँ उचित जान पड़े एक एक आदर्श गोशाला खोली जाय।

(घ) प्रत्येक हिन्दू जिसको सामर्थ्य हो, एक गौ पाले।

(ङ) यह महासभा गोदान करनेवालोंको आदेश करती है कि वे योग्य पात्र ही को गोदान दें और गोदानके योग्य ही गोओंका दान करें तथा गोदान लेनेवालोंसे प्रार्थना करती है कि उन्हें गौके रखनेकी सामर्थ्य न हो तो उसका दान न लें।

(च) यह सनातनधर्म महासभा सब सनातनधर्मानुयायी सज्जनोंसे निवेदन करती है कि वृषोत्सर्गमें वे साँड़ केवल उत्तम जातिके छोड़ें और वहीं छोड़ें जहाँ उनकी आवश्यकता हो। और छोड़नेके पहले म्युनिसिपल या डिस्ट्रिक्ट बोर्डसे या रियासतोंकी सरकारके साथ इस बातका पक्का प्रबन्ध कर लें कि उनके छोड़े हुए साँड़का ठीक ठीक पालन पोषण और रक्षा होगी। बिना ऐसा प्रबन्ध किए साँड़को छोड़ना इस कलियुगमें पापका मूल हो गया है और उससे प्रत्येक धर्मशील प्राणीको बचना चाहिए।

(छ) यह महासभा हिन्दूमात्रके प्रति आदेश करती है कि वे कसाइयोंके साथ किसी तरहके लेन देनका व्यवहार न करें, और जो इसके विरुद्ध लेन-देन करे या गौको वधिकोंके हाथ बेचे, उसे उचित सामाजिक दण्ड दें।

(ज) यह महासभा प्रत्येक हिन्दूसे अनुरोध करती है कि वह जहाँ तक हो सके चमड़े का व्यवहार कम करे।

(२) इस महासभाका यह निश्चय है कि गोवध केवल मांसके कारण ही नहीं वरन् चमड़ा, चरबी

इत्यादि वस्तुओंके कारण भी होता है, और वध की हुई गायका चमड़ा काममें लानेसे गो-हत्याको उत्तेजना मिलती है । इसलिये यह महासभा हिन्दूमात्रसे अनुरोध करती है कि वे स्वाभाविक मौतसे मरे हुए पशुओंके ही चमड़ेसे बने हुए जूते आदिको काममें लावें, और हिन्दू धनिकोंसे प्रार्थना करती है कि स्वाभाविक मौतसे मरे हुए पशुओंके चमड़ेके जूते वगैरह बनवा करके सब हिन्दुओंके लिए उनका प्राप्त करना सुलभ करदें, और हिन्दू मिलवालोंसे अनुरोध करती है कि वे कपड़ेकी माँड़ी इत्यादिमें चरबीके स्थानपर अन्य निर्दोष वस्तुओंका प्रयोग करें ।

(३) इस महासभाकी रायमें आजकल बड़े शहरोंमें दूध बेचनेवाले लोग गौओंसे बहुत बुरा बर्ताव कर रहे हैं, जिससे वह पूर्ण युवावस्थामें ही प्रायः वन्ध्या होकर मार डाली जाती हैं और उनके बच्चोंको भी मार डालते हैं। इसलिये यह महासभा सब गोशालाओं पिञ्जरापोलोंके व्यवस्थापकों से अनुरोध करती है कि वे उनको दुग्धालयके रूपमें परिणत कर दें। वृद्ध, अशक और दूध न देनेवाली गौओंको, जहाँ उनके पालनेका खर्च कम हो, ऐसे स्थानपर भेज दें, और अपने साँड़ोंके ज़रियेसे गौओंकी नसल इस तरह सुधार दें और दूध बढ़ा दें कि किसीके लिये भी उनका वध करना आर्थिक दृष्टिसे असम्भव हो जाय ।

(४) सनातनधर्म महासभाको यह देखकर अत्यन्त दुःख होता है कि बड़े-बड़े नगरोंमें दूध देनेवाली गौएँ ले जाई जाकर दूध बन्द होनेपर कसाईयोंके हाथ बेच दी जाती हैं और उनसे बच्चे नहीं लिए जाते । इस भयङ्कर पाप और हानिको रोकने के लिये सन् १९१३ ई० में जो बोर्ड ऑफ़ एग्रिकल्चरने कोयम्बटूरमें क़ानूनकी आवश्यकताको बतलाया था, उसकी ओर महासभा सरकार और कौन्सिलोंके मेम्बरोंका ध्यान दिलाती है ।

गोरक्षा-कोष

(१) यह सनातनधर्म महासभा निश्चित करती है कि हिन्दू जातिके परम कल्याणके साधन गोधन और गोरक्षाकी वृद्धिके लिये एक "अखिल भारतवर्षीय गोरक्षा-कोष" की स्थापना की जावे जिससे गोचरभूमिकी वृद्धि और गोरक्षा के और-और साधन प्रस्तुत किए जावें ।

(२) यह सनातनधर्म महासभा आदेश करती है कि सनातनधर्मकी सभाएँ इस विषयमें अन्य भाइयोंसे मिलकर काम करें।

(३) यह सनातनधर्म महासभा अपनी कार्य्यकारिणी समितिको आदेश करती है कि वह स्थान-स्थानपर गोचर-भूमिके छुड़ाने और गोरक्षाके अन्य आवश्यक उपायोंको करनेके लिये विशेषकर सरकारी जङ्गलोंमें गोचर-भूमि छोड़े जानेके लिये, प्रान्तीय कौन्सिलों तथा व्यवस्थापिका सभा तथा देशी राज्योंके द्वारा कानूनबनानेका प्रयत्न करे।

(४) यह सनातनधर्म महासभा निश्चय करती है कि कार्त्तिक शुक्ल प्रतिपदासे कार्त्तिक शुक्ल अष्टमी अर्थात् गोवर्द्धन-पूजाके दिनसे गोपाष्टमीतक प्रतिवर्ष सारे भारतवर्षमें गो सप्ताह मनाया जावे, जिसमें गोरक्षा-सम्बन्धी उत्सव, गोपूजा, गोकथा गोमाहात्म्य, व्याख्यान, तथा गोपरिपालनके ...त्यका प्रचार किया जावे, और प्रतिपदके दिन सारे हिन्दू जगतमें गोरक्षाके लिये दान माँगा जाय । और यह सब द्रव्य ·खिल भारतवर्षीय गोरक्षा-कोष, काशीमें, भेजा जाय, और बैंकमें महासभाके हिसाबमें "गोरक्षा-कोष" इस नामसे जमा हो, और सब हिसाबसे अलग रक्खा जाय और गोरक्षाके काममें ही व्यय किया जाय ।

(५) सनातनधर्मकी यह महासभा जमीन्दारोंसे निवेदन करती है कि उनकी जमीन्दारीके भीतर जहाँ गौ बैलके बाज़ार लगते हों, उनमें वे ऐसा प्रबन्ध करें कि वहाँ धोखेमें पड़कर कोई हिन्दू किसी गौको कसाईके हाथ न बेंचे और धोखा देकर कोई कसाई गौको न खरीद सके ।"

इसी सम्बन्धमें एक बात और कहनी आवश्यक जान पड़ती है कि प्रारम्भमें मुज़फ्फ़रनगरके माननीय लाला सुखवीर सिंहने कौन्सिलके द्वारा गो रक्षा विधान बनवानेका प्रयत्न किया और उसके

बाद फिर कुछ और लोगोंने भी गोरक्षा कानून बनवानेका प्रयत्न किया, पर दोनों ही वार सफलता न मिल सकी। जान पड़ता है कि अभी हमारे माननीय सदस्य लोग हिन्दुस्तानकी और भी अधिक दुर्दशा देखना चाहते हैं।

मालवीयजीकी गोभक्ति उनके घर दिखाई देती थी। उनके बँगलेके भीतर कई गैयाँ और बछड़े बँधे रहते थे और कभी-कभी जब बछड़े कूदते थे उछलते थे तो मालवीयजीके नेत्र एकदम खिल जाते थे। जान पड़ता था कि वे भी उन्हीं के साथ साथ छलाँग मारने को तैयार हैं। कृष्णभक्तोंके घर में तो वैसे भी गौकी पूजा होती है, पर मालवीयजी तो गौमें उस प्रकारकी श्रद्धा रखते थे, जो कहते हैं—

गावो मेऽग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः ।
गावो मे हृदये सन्तु गवा मध्ये वसाम्यहम् ॥

एक वारकी घटना है। पञ्जाब और आसामका दौरा समाप्त करनेके उपरान्त मालवीयजी जूनके अन्तिम दिनोंमें गोरखपुर पहुँचे। चौरीचौरा काण्डने गोरखपुरकी बड़ी शोचनीय दशा बना दी थी। बेचारे निरीहों और भयार्त्तोंको इनके पहुँचने से बड़ा अभय दान मिला। आपको दण्डविधानकी एक सौ चवालीस धाराके द्वारा चौरी-चौरामें भाषण देने की मनाही कर दीगई थी परन्तु आपने एक सौ चवालीस धाराको तोड़नेका भी सङ्कल्प कर लिया था। "स्वदेश" सम्पादक पण्डित दशरथ प्रसाद द्विवेदी तथा मौलवी अब्दुल अहद साहबके साथ मोटरमें आप पड़रौनासे गोरखपुर आ रहे थे। रात अधिक हो गई थी। आप लोगोंको निद्रा आ गई। नींदने ड्राइवरको भी आ घेरा। फलतः घनघोर अँधेयारीमें मोटर टकरा गई—टूट फूट गई। मालवीयजीको भी चोट आ गई। परन्तु इसकी कुछ चिन्ता न कर आप जल्दी-जल्दी आगे बढ़े। कारण यह था कि अँधेरी रातमें एक बैलगाड़ी आगे बढ़ रही थी। आपने सोचा कि कदाचित् बैलोंको चोट आ गई हो। जब आपने देख लिया कि बैलोंको कुछभी चोट नहीं लगी है तब आपने अपने चोटकी खबर ली। साथियोंके हृदय पर इस घटनाका गहरा प्रभाव पड़ा। मोटर तो बेकार हो ही गई थी, मरहमपट्टी कर एक एक्का जो संयोगसे मिल गया, उसीसे मीलोंका सफ़र तै कर आप गोरखपुर पहुँचे।

मालवीयजीने गौके बारेमें कहा है गौ मानव जातिकी माताके समान उपकार करनेवाली, दीर्घायु, बल और निरोगता देनेवाली और मनुष्य जातिकी आर्थिक उन्नति बढ़ाने वाली देवी है। यह तृण जल खाकर मनुष्यको माताके दूधके समान दूध पिलाती, अनेक प्रकारसे मनुष्यकी सेवा करती और उसको सुख पहुँचाती है। इसके उपकारसे मनुष्य कभी उऋण नहीं हो सकता। हमको यह स्मरण रखना चाहिए कि गौ समान रीतिसे मनुष्य मात्रकी सेवा करती है, और इसलिये सब जाति, धर्म और सम्प्रदायके मनुष्योंको गोवंशकी रक्षा करने, उसके साथ न्याय और दया का बर्त्ताव बढ़ानेमें प्रेमके साथ शामिल होना चाहिए। गोरक्षा सप्ताहमें, गोरक्षा के सम्बन्धमें व्याख्यानोंके द्वारा तथा अन्य रीतियोंसे सर्वत्र गौओंके उपकारका स्मरण करना और कराना, हर बस्तीमें गौओंके चरनेके लिये गोचर-भूमियोंका स्थापित करना और गोवंशको बलवान् तथा दीर्घायु बनाना चाहिए जिसमें शुद्ध और सस्ता गौका दूध गरीबसे गरीब भाइयोंको मिल सके। ऐसा प्रबन्ध करना मनुष्य मात्रका कर्त्तव्य है। इस काममें सब जाति और धर्मके अनुयायी लोग गौके प्रति प्रेम और दयाका भाव बढ़ानेमें सहायक हों।'

आज करोड़ों भारतके लाल रीता कटोरा लिए हुए 'दूध दूध' चिल्लाते हुए अपना जीवन दे डालते हैं और उनकी इतनी भारी मृत्युका कारण बतलाया जाता है 'पर्देकी प्रथा, बाल विवाह और गन्दगी'। पर हम पूछते हैं कि आजसे सौ वर्ष पहले भी तो ये सामाजिक कुरीतियाँ मौजूद थीं, फिर क्यों सौ-सौ बरसतक लोग जीवित रहे। सारी दुनियाँ मानती है कि दूध मनुष्यका सर्व-

श्रेष्ठ भोजन है। वे यह भी मानते हैं कि माताके दूधके बाद सर्वश्रेष्ठ दूध गौका ही होता है। वे यह भी मानते हैं कि गौओंकी संख्या कम होती जा रही है। और प्रतिवर्ष गौओंकी खालें अधिकसे अधिक संख्यामें विलायत भेजी जा रही है, पर न जाने वे क्यों नहीं मानते कि हमारे बच्चोंकी रक्षाके लिये गोवध भी बन्द होना आवश्यक है। हम यह मानते हैं कि घड़ीमें चमड़ेका फ़ीता बाँधनेवाले, चमकीले चमड़ेका जूता पहनने वाले और चमड़ेके सामानका व्यवहार करनेवाले लोग गोवधके लिए बहुत उत्तरदायी हैं। जो लोग भारतकी बेकारी दूर करनेके लिए विलायती हल जोतनेकी राय देते हैं उन्हें जानना चाहिए कि पहले गौ पालकर लोग घी, दूधका बड़ा भारी व्यापार करते थे, उनका पेट भी भर जाता था, उनके बच्चे भी हँसते-खेलते थे और दुर्दिनके लिए वे कुछ बचा भी रखते थे पर अब उन्हें खेत ज़ोत-बोकर हाथपर हाथ धरे बैठे रहना पड़ता है।

हिन्दू विश्वविद्यालयके वाइस चान्सलर पद त्याग देनेके पश्चात् वे गोसेवामें ही लग गए और शिवपुर काशीमें उन्होंने च्यवनाश्रमकी प्रसिद्ध गोशाला स्थापित की और अन्त तक गोपाष्टमीके उत्सवमें सम्मिलित होते रहे। सम्वत् २००३ की गोपाष्टमीके दिन वे च्यवनाश्रम गए और वहाँ भाषण भी दिया। वहाँ मल्लयुद्ध हो रहा था उसे बहुत देर तक देखते रहे। अन्तमें वहाँ व्यासजीने उन्हें अनारका रस पिला दिया। बस वह रसही विष हो गया, सर्दी कर गया, कफ बढ़ने लगा और उसके प्रभावसे उन्होंने जो शैया पकड़ी फिर उठ ही नहीं पाए।

गोभक्त मालवीयजी स्वयं चमड़ेका जूता नहीं पहनते थे। वे सैकड़ों, सहस्रों गूँगी माताओंके आशीर्वादसे ही आयु पाते चले जा रहे थे। वही पवित्र दूध मालवीयजीके शरीरमें उत्साह, बल, कान्ति और मेधा दे रहा था और बेचारी गाएँ बड़ी आशासे उनकी ओर उस दिनकी बाट जोहती हुई निहारती थीं जब भारतमें गोवध बन्द हो और वे स्वतन्त्रतापूर्वक फिर पहलेके समान विचरें।

सन् १९४१ के नवम्बरमें एक सालकी नैनी जेलयात्राके अनन्तर पं० यज्ञनारायण उपाध्यायजी को मालूम हुआ कि मालवीयजी महाराज प्रयाग में हैं। वे सीधे उनके पास पहुँचे। वे उस समय तेलकी मालिश करा रहे थे। उन्होंने कहाकि मेरे हाथ पैर काम नहीं कर रहे हैं। दो चार कदम भी चलना मेरे लिये असम्भव है। हाल ही में मैंने गोरक्षा मण्डलकी स्थापना की है और उसकी रजिस्ट्री भी करा दी है। कुछ सज्जनोंसे हज़ार, दो हज़ार सहायता मिल चुकी है। यद्यपि मैं यावत् जीवन कुछ न कुछ गोमाताकी सेवा करता रहा किन्तु इस समय गोरक्षाके सम्बन्धमें व्यवस्थित रूपसे कुछ कार्य करना है। यदि तुम इस कार्यमें लग जाओगे तो संभव है यह कार्य व्यवस्थित रूपसे चलने लगेगा। उन्होंने कहा कुछ दिन हुए बम्बईसे चौंड़ेजो महाराज काशीमें आए थे। उन्होंने कहा आप जीवन भर देशकी सेवा नाना प्रकारसे करते रहे किन्तु आपने गोमाताकी व्यवस्थित रूपसे कोई सेवा नहीं की।

इस समय मैं देख रहा हूँ कि देशमें स्थान २ पर लाखों गौओंका संहार युद्धके कारण हो रहा है। दूध घी दुर्लभ हो रहा है। तुम्हारे बिना खड़े हुए यह कार्य किसी प्रकार नहीं हो सकता। मैंने कहा कि चौंड़ेजी महाराज इस समय मेरे हाथ पैर काम नहीं देते, यदि १० वर्ष पूर्व यहकार्य मुझे सौंपते तो मैं अवश्य कुछ कर सकता लेकिन आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। यही वार्तालाप गोरक्षामण्डलकी स्थापनाका मूल है। काशी लौटने पर मालवीयजी महाराज नियमित रूपसे प्रतिदिन गोसंबंधी भारतीय और पाश्चात्य देशोंके साहित्यका अनुशीलन करते थे। पंजाब निवासी ब्रह्मदत्त शर्मा यूरोप, अमेरिका आदि देशोंका गोसंबंधी वर्णन सुनाते थे और हिन्दू विश्वविद्या-

लयकी विद्वन्मण्डली वेदसे लेकर भारतीय गो संबंधी साहित्य उनको सुनाया करती थी।

उनका कहना था कि जब किसी कार्यमें लगना हो तो तत्संबंधी साहित्यका पूर्ण रूपसे अनुशीलन करना परम कर्तव्य है। मंडलकी प्रबंधसमितिने इस संस्थाका उपमंत्री उपाध्यायजीको नियुक्त किया और गोरक्षा संबंधी मालवीय महाराजके आदेशानुसार जो कार्य ५ वर्षोंमें हुआ उसका संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है। मंडलद्वारा विहार, युक्तप्रांत और मध्यप्रांतके प्रायः सभी जिलोंमें गोरक्षाका प्रचार, गोशालाओंका संगठन और उनको व्यवस्थित रूपसे चलानेका प्रबंध किया गया। सभी गोशालाओंको एक सूत्रमें बाँधनेका संघटित उद्योग हुआ।

हमारे भारतवर्षके सभी स्थानोंमें कार्त्तिक शुक्ल प्रतिपदासे अष्टमीतक गोसप्ताह मनानेका आयोजन किया गया। मालवीयजी महाराज कहा करते थे कि मेरे जीवनमें प्रथम भाषण मिर्जापुरमें १६ वर्षको अवस्थामें गोरक्षा पर हुआ था। उनकी आंतरिक अभिलाषा थी कि गोमाताकी सेवा करते हुए जीवन समाप्त हो। श्री विश्वनाथजीके अनुग्रहसे ऐसा ही हुआ। च्यवनाश्रम में गोपाष्टमी के उत्सव में अंतिम भाषण गोरक्षा पर हुआ था।

युद्धकालमें भारतीय गवर्नमेण्टके खाद्य सदस्य सर योगेन्द्रसिंह सर्दारजी काशी हिन्दू विश्वविद्यालय देखने आये और वे पूज्य मालवीयजी महाराजसे मिले। महाराज ने खाद्य सदस्य को बतलाया कि भारतमें कई स्थानों पर ऐसी गर्भिणी गायें मारी जाती हैं और गर्भ के बच्चों के नम्र चमड़ों का सामान बनाया जाता है जो देश विदेश में कीमती बिकता है। इसके कारण महाराज बड़े दुःखी रहते थे। अतः मालवीयजी महाराजने खाद्य सदस्य पर बहुत जोर देकर कहा था कि भारतवर्षमें गोवध बन्द होना चाहिये। उन्होंने उत्तर दिया था कि इसके लिये संघटित और देशव्यापी आन्दोलन होना चाहिये। तत्काल उन्होंने १० वर्षसे कम उम्रके बैल, दूध देनेवाली या गर्भिणी गाय और बछड़ोंके वधकी विशेष आज्ञा निकाल दी। प्रान्तीय सर्कारोंके द्वारा म्युनिसिपलबोर्डों और डिस्ट्रिक्ट बोर्डोंमें कहाँतक इसका पालन हुआ यह कहना संभव नहीं है।

उन्हींकी प्रेरणाका फल है कि खाद्य सदस्यने गोशालाओंका बड़ाभारी सम्मेलन दिल्लीमें कराया जिसका विस्तृत विवरण प्रकाशित हो चुका है। उसीके आधारपर प्रान्तीय सर्कारेंभी अपने अपने प्रान्तोंकी गोशालाओंके संघटनमें तत्पर हो गईं।

अब भारतवर्ष स्वतन्त्र हो गया है और आशा की जाती है कि शीघ्रातिशीघ्र इस पवित्रभूमिसे गोसहार दूर हो जायगा। हालहीमें संयुक्त प्रान्तके प्रधानमंत्री श्री गोविन्दवल्लभ पंतने असेम्बलीके अपने भाषणमें कहा है कि आर्थिक दृष्टिसे हमारे प्रान्तमें गोवध नहीं होना चाहिये।

मालवीयजी महाराजने भारतीय गोरक्षाप्रचारक मंडलके उद्देश्योंमें यह स्पष्टतया घोषित किया है कि आर्थिक दृष्टिसे गोवध इस देशमें बंद होना चाहिये।

क्योंकि गोमूत्र और गोबर की खाद भूमि को उपजाऊ बनाता है। इस प्रकार करोड़ों रूपयोंकी खाद प्रतिवर्ष किसानोंको मिलती है जिससे खेत की उपज कई गुनी बढ़ जाती है। भारत कृषिप्रधान देश है जिसमें ७ लाख गाँव हैं और ९० प्रतिशत निवासी कृषक देहातों में रहते हैं जिनका जीवन खेती पर ही अवलम्बित है। अच्छी खाद न मिलने से पृथ्वी की उर्वराशक्ति क्षीण होती जाती है। हमारे देश में खेती बैलों के द्वारा होती है। गोवध से बैल कम हो रहे हैं और उनकी संख्या वेगसे घट रही है और मूल्य बढ़ता जा रहा है।

मालवीय जी महाराजका कहना था कि खेती के साथ साथ किसानों को गोपालन भी करना चाहिये। गौओंसे दूध, घी और दही प्राप्त होता है जिससे किसान अपने परिवारको हृष्ट पुष्ट बनाता

और बचा हुआ दूध घी बेचकर अपने आयको बढ़ा सकता है। सस्ता और शुद्ध गोदुग्ध प्रत्येक व्यक्ति को अधिक से अधिक मात्रा में मिलना चाहिये। हमारे देशका मानसिक, बौद्धिक और शारीरिक जो ह्रास होरहा है उसका मुख्य कारण गोदुग्ध का पर्याप्त मात्रा में न मिलना ही है। पाश्चात्य देशों में जैसे इङ्गलैंड, जर्मनी तथा अमेरिका में प्रति व्यक्ति को औसत सेर सवा सेर दूध मिलता है किंतु हमारे देश में प्रति व्यक्ति एक छटाँक का औसत नहीं है। इसका मुख्य कारण अंग्रेज़ों की गोसम्बन्धी घृणित नीति है। पाश्चात्य देशों में मनुष्य की आयु का अनुपात पचास, साठ वर्ष है। किंतु हमारे देश में इक्कीस, बाईस वर्ष आयुका अनुपात है। पाश्चात्य देशोंमें एक हज़ार पैदाइशमें पचास, साठ बच्चे एक वर्षकी अवस्था में मरते हैं किन्तु हमारे देशमें मृत्युसंख्या दो ढाई और तीन सौ तक पहुँच जाती है। तरह तरह की बीमारियाँ जो हमारे देश में होती हैं उनका मुख्य कारण शुद्ध गोदुग्ध का अभाव ही है। अमेरिका आदि देशों में आठ-आठ दस-दस मील चौड़ी गोचरभूमि छोड़ी जाती है जहाँ हजारों गौएँ स्वच्छन्दता से चरती हैं और एक मन तक प्रति दिन दूध देती हैं। इसके विपरीत हमारे देश में अंग्रेजों की दुर्नीति और जमींदारों की अर्थ लोलुपता से गाँवकी गोचर भूमि नष्टप्रायः होगई है। वह जमीन लेकर ज़मींदारों ने बेंच दी है। अतः गोवंशके ह्रास का मुख्य कारण गोचर भूमि का अभाव है। बनारस ऐसे घने बसे हुए जिले में भी महाराजने बहुत द्रव्य व्यय करके ३०० बीघा भूमि मोल ली थी जिसमें हजारों गौएँ प्रतिदिन चरती हैं और मालवीय जी महाराजको आशीर्वाद देती हैं। उन्होंने मिर्जापुर, लखीमपुर झाँसी आदि जिलों में मीलों लंबी चौड़ी विस्तृत गोचर भूमि छुड़वाने का प्रयत्न किया था और वहाँ के जमींदारों ने वचन दिया था कि वे इस कार्य में सहायता करेंगे लेकिन महाराजकी मृत्युके कारण यह कार्य आगे न बढ़ सका। मालवीय जी के जीवन का अन्तिम भाषण च्यवनाश्रम में गत संवत् कार्तिक शुक्ल गोपाष्टमी के दिन हुआ था। वहाँ देहाती जनता के सामने कहा था—

दूध पियो कसरत करो नित्य जपो हरि नाम।
हिम्मतसे कारज करो पूरेंगे सब काम॥

प्रत्येक भारतवासी को अधिक से अधिक गोदुग्ध और घृतका सेवन करना चाहिये। ग्राम-ग्राममें विस्तृत गोचर भूमि छूटना चाहिये और ऐसा प्रयत्न होना चाहिये कि प्रत्येक किसान कमसे कम एक गौ रख सके। च्यवनाश्रममें उन्होंने विशाल गोशाला बनवाई थी और सैकड़ों गायोंका पालन पोषण विधिवत् होता था। आज मालवीयजी महाराज संसार में नहीं हैं इससे उनका गोरक्षा का काम अधूरा रह गया है। प्रत्येक भारतवासी और भारतीय सरकारका कर्तव्य है कि इस देशमें गोवध न हो और गोदुग्ध और गोघृत भारतीय संतान को उपलब्ध हो जिससे भारतवर्ष की खोई हुई सुख समृद्धि और संपत्ति फिरसे लौटे।

कहा जाता है कि हमारे देशमें घी और दूध की नदियाँ बहती थीं। आज वह देश निर्जीव, निर्बल और तरह तरह के रोगों से पीड़ित हो रहा है। इसका पुनरुत्थान गोमाता के दूध के बिना नहीं हो सकता। किसी विद्वानने कहा है—

गौ चेद् गवां यदि पयोः पृथिवीतलेऽस्मिन्।
संवर्द्धनं न च भवेत् विधिसंततीनाम्॥
यो जायते विधिवशेन तु सोऽपि रुग्णो।
निर्वीर्यशक्तिरहितः सुकृशः कुरूपः॥

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति का मूल

भारतमें मुग़लोंके क़िलोंपर विदेशियोंकी पताका फहरानेपर भी मुसलमानी छाप 'हिन्दुस्थान' पर बनी रही। मुसलमानोंकी बात तो जाने दीजिए, हमारे ब्राह्मण और क्षत्रियोंके बच्चोंका विद्यारम्भ 'अलिफ़, बे, पे, से' होता रहा क्योंकि हमारी बोलचालकी भाषाको लोग 'भाखा' कहकर दुरदुराया करते थे और आजकी 'नागरी' उस समय 'गँवारी' समझी जाती थी, फ़ारसी उसका गला दबाए बैठी थी। ब्रजका घाघरा पहने हुए जब वह कचहरीमें घुसने लगी तो मुग़लोंकी मुँहचढ़ी फ़ारसीने उसे वहाँ घुसने न दिया। भला शहरीलोग गाँववालोंका आदर ही क्यों करने लगे। लाख सिर पटकनेपर भी बेचारी नागरीकी कुछ सुनवाई न हुई। वह उल्टे पैरों लौट आई। फारसी राजाकी मुहचढ़ी थी, किसके दो सिर हुए थे कि उसके विरुद्ध मुँह खोले।

पर नागरीका यह अपमान कुछ लोग सह न सके। राजा शिवप्रसादने 'बनारसी अख़बार' में बेचारी नागरीकी ओरसे बड़ी वकालत की। पर राजा साहबने देखा कि हवाका रुख ठीक नहीं है, वे पाल समेटकर तो नहीं बैठ रहे पर उन्होंने कुछ तो हवा का सहारा लिया और कुछ पतवार का। देशी घाघरेके साथ-साथ फ़ारसकी चोली अच्छी तो न लगी पर और कोई उपाय न था। उर्दू भाषा मुसलमानी संस्कार लिए हुए भी नागरी वस्त्र पहनकर आई। राजा साहबकी हिन्दी ऐसी ही चलती रही। यह भी क्या कम था?

मालवीयजीके जन्मके साथ-साथ आगरेसे राजा लक्ष्मणसिंहका 'प्रजा हितैषी' भी पैदा हुआ और पहले पहल उनके प्रसिद्ध 'अभिज्ञान शाकुन्तल' का हिन्दी अनुवाद निकला। लोगोंने जी खोलकर इस 'शकुन्तला' का स्वागत किया। इन हिन्दी वस्त्रोंमें वह सचमुच कितनी भली भी तो लगती थी। इधर युक्तप्रान्तमें तो ये लोग हिन्दी और नागरीके राज्याभिषेककी तैयारी कर रहे थे, उधर पञ्जाबमें सन् १८६३ और १८८० ई० के बीच बाबू नवीनचन्द्र रायने भी उसकी प्रतिष्ठाकी पूरी तैयारी कर ली थी। स्वामी दयानन्दजीके आर्य्यसमाजने और पण्डित श्रद्धाराम फुल्लौरीके धार्मिक आन्दोलनोंने आर्य्य-भाषा हिन्दीको जी भरकर अपनाया और उसका पढ़ना सबके लिये आवश्यक कर दिया। श्रद्धाराम फुल्लौरीजी हिन्दी गद्यके बहुत अच्छे लेखक थे और सन् १८८१ ई० में अपनी मृत्युके समय उन्होंने कहाभी था कि "भारतमें भाषाके लेखक दो हैं—एक काशीमें दूसरा पञ्जाबमें—परन्तु आज एक ही रह जायगा।" यह काशीके लेखक भारतेन्दु 'बबुआ' हरिश्चन्द्रके अतिरिक्त और कौन हो सकते थे।

बबुआ हरिश्चन्द्र वर्त्तमान हिन्दी गद्यके पिता कहलाते हैं। उन्होंने अनेक मौलिक पुस्तकें लिखीं, अनेकोंका अनुवाद किया। सच पूछिये तो बेचारी हिन्दीको सिंहासनपर हाथ पकड़कर बैठानेका श्रेय बबुआको ही था। मुन्शी सदासुखलालने उसे पुराने पण्डिताऊ ढङ्गके कपड़े पहनाए, लल्लूलालजीने ब्रजका घाघरा पहनाया और सदल मिश्रने पूर्वी धोती। पर ये सब वस्त्र न जँचे। राजा शिवप्रसादके मुसलमानी कपड़ोंमें भी वह अच्छी न लगी। इसीलिये भारतेन्दु बाबूने उसे बिलकुल देसी—खद्दरकी तो नहीं—हाँ रेशमी साड़ी पहना दी। अब तो हिन्दीका रङ्ग निखर उठा। बबुआ

भारतेन्दुजीने हिन्दीके गद्य और पद्य दोनों रूपोंको माँज दिया उसपर रङ्ग चढ़ाकर ऐसा चमका दिया कि सबकी आँखें उसी ओर जा लगीं। न जाने कितने लेखक और कवि 'बबुआ' के दरबारमें आकर जुटने लगे। सन् १८७२ ई० में बबुआने 'हरिश्चन्द्र मैगज़ीन' निकाली जो आठ अङ्कोंके बाद 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' कहलाने लगी। इस हिन्दीके बारेमें स्वयं उन्होंने अपनी 'कालचक्र' नामक पुस्तकमें नोट किया है कि 'हिन्दी नई चालमें ढली सन् १८७३ ई० में।" अब तो हिन्दीका बड़ा बोल-बाला हो गया, सैकड़ों हज़ारों लेखक और कवि बन गए और पत्र-पत्रिकाएँ चल निकलीं। बबुआ उन दिनोंके नौजवानोंके प्रिय थे। सब लोग अपनी कविता और लेख उन्हींके दरबारमें भेजा करते थे और भारतेन्दुजी भी राजाओंकी भाँति उनका आदर तो करते ही थे साथ ही उन्हें पुरस्कार भी देते थे।

प्रत्येक व्यक्तिके जीवनमें एक ऐसा अवसर आया करता है जब उसकी कल्पना आकाशमें उड़ा करती है और वह अपने नये भावोंकी नई दुनियाँ बनाया करता है। यह उसकी कविताका युग होता है। बबुआके दरबारमें लोग अपनी कविताएँ तो पढ़ते ही थे साथ ही समस्यापूर्त्ति भी करके भेजा करते थे। इन कवियोंमें प्रयागके एक नौजवान रसिक कवि 'मकरन्द' भी थे। समस्या थी 'राधिका रानी'। 'मकरन्द' ने कुछ सवैये भेजे। कल्पना तो देखिये—गोरी रानी राधिका काला कम्बल ओढ़नेवाले काले कलूटे गाय चरानेवाले पर कैसे रीझ गईं, इस समस्यापूर्त्तिमें कवि 'मकरन्द' ने एक नई समस्या खड़ी कर दी। सुनिए—

नटनागर। गीताके अनुसार वे तो 'भ्रामयन् सकलान् जीवान् यन्त्रारूढानि मायया' रहे! श्रीकृष्ण सामने हैं पर मानिनी राधा आँख उठाकर देखती भी नहीं। उनकी एक सखी समझा रही है:—

वे कबके उत ठाढ़े अहैं इत बैठि अहौ तुम नारि चुगानी।
याकी तुम्हैं समुझावत साँझतें ऐसी मैं रावरी बानि न जानी॥
मोहि कहा पै यहै 'मकरन्दहूँ' जो कहूँ सीजि कै रूसन ठानी।
आजु मनाये न मानति हौ कल्ह आपु मनाइहौ राधिका रानी॥

रानी तो प्रसिद्ध हैं, पर कृष्णके लिये राधिकाजी कजूसी कर रही हैं। इसपर कृष्णके मुखसे हमारे 'मकरन्द' जी कहला रहे हैं इसमें रसिकताकी पराकाष्ठा ही समझिए।

माँगत मोतिन माल नहीं नहि माँगत तोसें मैं भेजन पानी।
भारी न माँगत हौं 'मकरन्द' न थारी अनेक सुगन्धन सानी॥
माँगत हौं अधरा-रस रुचक सोउ न दीजतु हौ मनमानी।
सूमता ऐसी तुम्हैं नहीं चाहिए बाजति हौ कहूँ राधिका रानी॥

व्रजके फागका सरस वर्णन भी इसी समस्याकी पूर्त्तिमें देखिए। आँखोंके सन्मुख बहारदार दृश्य नाचने लगता है:—

इधर प्रतापनारायण मिश्र हिन्दीके सिंहासनकी सजावट कर रहे थे, उधर सन् १८७६ ई० में बालकृष्ण भट्ट अपना 'हिन्दी-प्रदीप' लेकर उसकी आरतीका थाल सजा रहे थे। साथ ही उपाध्याय पण्डित बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन—क़लमकी कारीगरी समझनेवाले—अपनी लच्छेदार डोरियों का हार गूँथ रहे थे। बड़ी चहल पहल थी। संसारके किसी महाराजा या महारानीके लिये भी इतनी लगन और उत्साहके साथ तैयारी न हुई होगी जितनी हिन्दीके राज्याभिषेकके लिये हुई। इन्हीं दिनों कवि 'मकरन्द' के सवैये अपने निर्माताकी पूरी रसिकता लेकर हमारे सामने आए। हम क्या कहें, आपको 'मकरन्द' कविका परिचय देंगे तो आप चौंक उठेंगे, किन्तु परिचय देना भी तो आवश्यक है। भारती-भवन मुहल्लेमें उनका मकान है, हिन्दू यूनिवर्सिटी उनका स्मारक है और भारतवासियोंके हृदयमें वे निवास करते आ रहे हैं। उनका इतना ही परिचय देनाही पर्याप्त होगा।

सचमुच मालवीयजी बड़े रसिक थे और हैं भी। कहनेकी बात तो नहीं है पर उन्होंने स्वयं अपने मुँहसे कई बार कही हैं, इसलिये हम भी उसे क्यों छिपा रक्खें। मालवीयजीको कविता करनेका और सुननेका प्रेम तो था ही, इन्होंने सैकड़ों सूरके पद और विहारीके दोहे याद कर रक्खे थे। आजकल बहुतसे लोग बेचारे बिहारीके पीछे हाथ धोकर पड़े हुए हैं और उसे देशनिकाला दिलानेका उद्योग कर रहे हैं। हम मानते हैं कि बिहारीको स्कूलोंमें स्थान देना मूर्खता है, पर बिहारी बड़ी सरलता प्रौढ़ युवकों और युवतियोंके हाथमें दिए जा सकते हैं। शृङ्गार रस मनुष्य जीवनका आधार है। इसी रसके कारण स्त्री पतिव्रता बनती है, पुत्र माता-पिताका भक्त है, सेवक स्वामीकी सेवा करता है और संसारमें रसकी व्याप्ति होती है। भवभूतिका करुण रस मसान घाटपर या मुहर्रमके दिनोंके लिये है। प्रेम, श्रद्धा, भक्ति, अनुरक्ति, सेवा, सबका आधार शृङ्गार रस है। शृङ्गार रसपर नाक-भौं सिकोड़ने वाले वे ही नीरस लोग होते हैं जिन्हें या तो जीवन और सुखका ज्ञान नहीं होता या जो ढोंगी होते हैं।

हाँ तो जब मालवीयजीका विवाह हुआ, वह उनकी कविता और कल्पनाका युग था। वे विहारी के सुन्दर-सुन्दर दोहे और सूरके पद कण्ठ कर-करके अपने धर्मपत्नी [बहुधा] को सुनाया करते थे। चौदह वर्षकी अवस्थामें ही शृङ्गार रसके विषयमें आपने एक दोहा कहा था—

> यह रस ऐसो है बुरो, मनको देत बिगारि।
> याके पास न जाइये, जब लौं होय अनारि॥

अर्थात् शृङ्गार रस ऐसा है कि इससे मनकी भावनाएँ कुछ बिगड़ जाती हैं, इसलिये अनारि [अनाड़ी] तथा अनारि [अविवाहित] व्यक्तिको इसके पास नहीं फटकना चाहिये। हम समझते हैं कि विहारीविरोधी आन्दोलन चलानेवालोंको इस दोहेसे पर्याप्त सन्तोष मिलेगा।

एक बार एक सज्जनसे ग्राम्य कविताएँ सुनकर मालवीयजीने अपना सोरठा कहा था—

> गुणी जननको साथ, रसमय कविता मोहि रुचि।
> सदा दीजियो नाथ, जब-जब ,इहाँ पठाइयो॥

इधर हिन्दी-प्रचारकी धूमने और इनके साहित्य प्रेमने उनके मनमें मातृ-भाषाकी सेवाका भाव भर दिया, जो प्रयागके लिटरेरी इन्स्टिट्यूट [साहित्य-समाज] के रूपमें प्रगट हुआ।

सन् १८८४ ई३ में 'हिन्दी-उद्धारिणी-प्रतिनिधि-मध्यसभा, प्रयागमें खुली, जिसका उद्देश्य था नागरीको उसका अधिकार दिलाना। मालवीयजी ने इसमें जी खोलकर काम किया, व्याख्यान दिए, लेख लिखे और अपने मित्रोंको भी इस काममें भाग लेनेको उसकाया। आरम्भमें पण्डित बालकृष्ण भट्टजीके 'हिन्दी-प्रदीप'में ये बहुत कुछ लिखते रहे। फिर तो इन्होंने 'हिन्दुस्तान' के सम्पादक और 'अभ्युदय' के सम्पादन द्वारा जो मातृ-भाषाकी सेवाकी उसका उल्लेख हम पीछे कर आए हैं।

इतनी सब कुछ तैयारी होने पर भी अदालत से उर्दू न निकाली जा सकी। इस उर्दू लिपिसे भारतके लोगोंको कितनी कठिनाई होती थी, कितना कष्ट होता था अब क्या कहें। जो आवेदन-पत्र देनेवाले होते थे उन्हें यही नहीं ज्ञात होता था कि उस आवेदन-पत्रमें लिखा क्या है। लिखा जाता था कुछ, पढ़ा जाता था कुछ। फिर उर्दू यहाँके लोगोंकी व्यवहारकी लिपि भी नहीं थी। पुराने उर्दू जाननेवाले अधिकारियोंने नई भाषा सीखनेका कष्ट बचानेके लिये बड़ा हाय तोबा मचाया और उर्दूका पलला कसकर पकड़ रक्खा अदालतकी लिपि और भाषा उर्दू ही थी और सभी लोग उर्दू ही पढ़ते थे। नागरी अक्षरोंमें पुस्तकें ही नहीं थीं। कैसे क्या हो कुछ समझमें नहीं आता था। सन् १८९२ ई० में बाबू श्याम-सुन्दरदास, पण्डित रामनारायण मिश्र और ठाकुर शिवकुमार सिंहके उद्योगसे काशी-नागरी-प्रचारिणी सभाकी स्थापना हुई। इस सभाके दो उद्देश्य हुए नागरी अक्षरोंका प्रचार और हिन्दी साहित्यकी समृद्धि। बबुआ हरिश्चन्द्रके मूल मन्त्र—

निज भाषा-उन्नति अहै, सब उन्नतिको मूल।
बिनु निज भाषा ज्ञानके, मिटत न हियको सूल॥

और पण्डित प्रतापनारायण मिश्रके 'हिन्दी' हिन्दू हिन्दका राग ज़ोरोंसे गाया जाने लगा। उधर मेरठमें पण्डित गौरीदत्तजीने भी देवनागरी प्रचारका बीड़ा उठाया और अपना सर्वस्व इसी कार्यमें लगाकर वे तन, मन, धनसे इस काममें जुट गए। 'जै रामजीकी' और 'प्रणाम, नमस्कार' के स्थान पर उन्होंने 'जैनागरीकी' कहना प्रारम्भ किया। उन्होंने सन् १८९४ ई० में दफ्तरोंमें नागरी लिपि चलानेके लिये एक अभ्यर्थना-पत्र भेजा, किन्तु उसको रद्दीकी टोकरीमें चिर विश्राम दे दिया गया।

युक्तप्रान्तके दिन कुछ अच्छे थे और हिन्दीका भी भाग था कि सन् १८९५ ई० में इस प्रान्तके छोटे लाट सर एण्टोनी मैकडोनल काशी पधारे। नागरी-प्रचारिणी सभाने उनको एक आवेदन-पत्र देकर यह दिखलाया कि नागरीकी अवहेलना करनेसे जनताको बड़ी कठिनाइयाँ होती हैं और शिक्षाका प्रचार भी रुक जाता है। लाट साहबने इस पर विचार करनेका वचन दिया।

मालवीयजी नागरी-प्रचार आन्दोलनके मुखिया बने। नागरीके सबसे बड़े शत्रु सर सैयद अहमद समाधिमें गहरी नींद ले रहे थे, पर मुसलमानोंके मुखिया मोहसुनुलमुल्कने नागरीके विरुद्ध घन-घोर आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। जान पड़ा कि बेचारी नागरी यों ही पड़ी रह जायगी। लौर्ड कर्ज़नकी सरकार उनकी ओर झुकी जा रही थी पर मालवीयजीसे लोहा लेना टेढ़ी खीर थी। दिन रात एक करके अपनी वकालतके सुनहले दिनोंमें धुनके साथ मालवीयजीने गहरी छानबीन के साथ नागरीके पक्षमें प्रमाण और आँकड़े इकट्ठे किए। सैकड़ों स्थानों पर डेपुटेशन भेजे गए और हिन्दी भाषा और नागरी लिपिकी सुन्दरता और उपयोगिता दिखलाई गई। मालवीयजीने वकालत करते हुए भी अपने मित्र पण्डित श्रीकृष्ण जोशीके साथ मिलकर घोर परिश्रम किया। अपने पाससे रुपया व्यय करके कोर्ट लिपिका इतिहास, प्राचीन अधिकारियोंकी सम्मतियाँ एकत्र करके एक बड़ा सुन्दर लेख लिखा जो 'कोर्ट कैरेक्टर ऐण्ड प्राइमरी एजुकेशन इन नार्थ वेस्टर्न प्रौविन्सेज़' कहलाता है यह अभ्यर्थना-लेख लेकर २ मार्च सन् १८९८ ई० को अयोध्यानरेश महाराजा प्रतापनारायण सिंह, माँडाके राजा रामप्रसाद सिंह, आवागढ़के राजा बलवन्त सिंह, डाक्टर सर सुन्दरलाल और माल-वीयजी आदिका एक दल दिनको बारह बजे गवर्न-मेण्ट हाउस प्रयागमें छोटे लाट सर एण्टोनी मैकडोनलसे मिला।

मालवीयजीका परिश्रम सफल हो गया। उनकी सब बातें मान ली गईं। इस आन्दोलन के समय मुसलमानोंमें बड़ी खलबली मची, बहुतसी सभाएँ हुईं। मालवीयजी इन दिनों उनके वक्तव्यों को देखनेके लिये नित्य सन्ध्याको 'पायोनियर' टटोलते रहते पर जैसी कि 'पायोनियर' की नीति

है उसने इस विषयमें चुप्पी साध ली। मालवीय जी कभी-कभी खीझकर कह देते थे "पायोनियर की चुप्पी देखकर जी खीझ जाता है।"

सारे प्रान्तने मिलकर अपने विजयकी माला धन्यवादके रूपमें एण्टोनी मैकडोनलके गलेमें डाल दी। बहुआका चलाया हुआ आन्दोलन मालवीय जीने सफल बना दिया। हिन्दीका राज्य-तिलक मालवीयजीके हाथों ही बदा था।

एक दिन छोटे लाटके प्राइवेट सेक्रेटरीका पत्र मिला कि छोटे लाट साहब प्रयाग आ रहे हैं और भेंट करना चाहते हैं। समय स्वीकार कर लिया गया। पर तीन-चार दिन पहले ज्वर आ गया और नित्य आने लगा। पण्डित शिवराम पाण्डेय वैद्यसे कड़ी ज्वर-रोधक-औषधि लेकर तथा सागूदाना और दूध खाकर भेंटको गए। दो घण्टे तक बात-चीत हुई। बड़े प्रसन्न थे। लाट साहबको मुसलमानोंके अड़ङ्गे लगानेकी चिन्ता न थी। उन्हें निश्चय था कि जो आज्ञा दी गई है वह ठीक और सोच-समझकर दी गई है मुसलमान जी भर आन्दोलन मचा लें, सुनाई सम्भव नहीं है। उनका आन्दोलन धीरे-धीरे ठण्डा पड़ गया। पर इस आज्ञाको चरितार्थ करनेमें बहुत बाधाएँ हुईं। वे सरकारी नौकर, जिन्होंने जन्म से ही उर्दूका दूध पिया था, हिन्दीको सौतेली माँ समझने लगे क्योंकि उन्हें आज्ञा हुई कि वे शीघ्र ही हिन्दीमें पर्याप्त योग्यता पैदा कर लें। लाट साहबके बदल जाने पर उनकी जानमें जान आई। कितने नागरी हितैसियोंने अपना पैसा लगाकर हिन्दीमें बिना कुछ लिए ही प्रार्थना-पत्र लिख देनेवाले मुन्शी कचहरियोंमें भेजे, पर बाबुओंकी डॉट-फटकारने उन्हें व्याकुल कर दिया। इतने पर भी हठपूर्वक दिए गए पत्र उन्हें लेने ही पड़े। पर अपनी करनीमें वे कसर न छोड़ते थे। अब इतने समय पश्चात् प्रार्थना-पत्र और अभियोग हिन्दीमें 'लिए जाते हैं' और माँगनेसे आज्ञा-पत्र भी हिन्दीमें मिल जाते हैं।

इस नई विजयने नागरी-प्रचारिणी सभाको उत्साहित कर दिया। १ मई सन् १९१० ई० की बैठकमें सभाने हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन करनेका निश्चय किया जहाँ सब लोग मिलकर अपने साहित्यकी उन्नतिके उपाय सोचें। इस कार्य्यके लिए एक समिति बनाई गई और शीघ्र ही सम्मेलनका हल्ला हो गया। समय और सभापतिके लिये सम्मतियाँ माँगी गईं। हिन्दी संसारके सामने हिन्दीके परम सेवक एक ही महापुरुष थे—वही श्वेत पगड़ीवाले, श्वेत साफेवाले। वही सभापति चुने गए।

निदान सोमवार, १० अक्तूबर, सन् १९१० ई० को दिनके साढ़े ग्यारह बजे नागरी-प्रचारिणी सभा, काशीके बाड़े में एक बड़े मण्डप के नीचे सम्मेलन प्रारम्भ हुआ। हिन्दी संसारने अपने कर्णधार मालवीयजीका उस अवसरपर जो सम्मान किया वह मनुष्यकी लेखनीके सामर्थ्यसे बाहर है। उनके सभापति पदके प्रस्तावका अनुमोदन करते हुए पण्डित श्यामबिहारी मिश्रने जो कुछ कहा था वही लिख देना हम पर्याप्त समझते हैं। मालवीयजीने हिन्दीके लिये क्या किया उसका भी थोड़ा सा परिचय हो जायगा –

"........जिस समय मालवीयजीने हिन्दीकी उन्नतिका यत्न करना आरम्भ किया था उन दिनों हिन्दीके जाननेवाले बहुत थोड़े थे। हिन्दीकी उन्नतिका यत्न करनेमें हिन्दी-सेवियोंको अगणित असुविधाओंका सामना करना पड़ता था। मालवीयजी उन दिनों हिन्दीकी उन्नतिके सम्बन्धमें हिन्दीमें बहुतेरी वकृताएँ दिया करते थे। मुझे स्मरण है कि जब मैं बहुत छोटा था तब एक दिन मैंने मालवीयजीकी वकृता सुनी थी, उससे पहले कभी वैसी वक्तृता मैंने कभी नहीं सुनी थी, वह मुझे आजतक याद है। मालवीयजीने हिन्दीको कभी नहीं बिसारा, इसको उन्नतिका जैसा उद्योग आप पहले करते थे वैसा ही अब भी कर रहे हैं। हिन्दीकी जो उन्नति दिखाई देती है उसमें मालवीयजीका उद्योग मुख्य कहना चाहिए।

चापहीके यत्नसे हिन्दीको अदालतोंमें जगह मिली है। यह बात सब लोगोंको मालूम रह सकती है कि तरह-तरहके कामोंमें फँसे रहकर भी मालवीयजी हिन्दीकी सेवा कर रहे थे—"

इस सम्मेलनके पश्चात् फिर तो निरन्तर प्रतिवर्ष कहीं-न-कहीं सम्मेलन होता रहता है। साहित्य सम्मेलनके आठवें अधिवेशनमें सभापति महात्मा गान्धी हुए, उसके अगले वर्ष फिर मालवीयजीकी पुकार हुई। वह अपने 'छोटे भाई' गान्धीजीका अनुरोध कैसे टाल सकते थे। १९,२०,२१ अप्रैल सन् १९१९ ई० को साहित्य सम्मेलनका महोत्सव फिर मालवीयजीके सभापतित्वमें दोपहरको ठीक एक बजे बम्बईके भव्य नाटक-भवन एम्पायर थियेटर हॉलमें हुआ। लक्ष्मीपुरी बम्बईने अपने सभापतिका कैसा सम्मान किया होगा यह तो प्रत्येक व्यक्ति समझ सकता है।

पिछले वर्ष इन्दौर साहित्य सम्मेलनके लिये भी उनका निर्वाचन हुआ पर कुछ तो उनकी बीमारीने और कुछ उनके बहुधन्धी जीवनने उन्हें छुट्टी न दी।

मालवीयजीका हिन्दी प्रेम वे ही लोग जानते हैं जो उनके साथ रहते हैं या जिन्हें उनको हिन्दी सुननेका अवसर मिला है। मालवीयजी कितनी मीठी सरस और सुबोध हिन्दी बोलते हैं यह तो सभी जानते हैं पर उन्हें हिन्दी साहित्यसे कितना प्रेम है इसका हम कुछ तो आभास दे ही चुके हैं पर यदि और अधिक जानना हो तो कभी तुलसी जयन्तीपर या कृष्णाष्टमीपर आप काशी हिन्दू विश्वविद्यालयमें पधारते, तब सुनते जी भरकर असली ठेठ हिन्दी जिसे आप भी समझ लें और आपके बच्चे भी।

मालवीयजीके जीवनका एक-एक अध्याय एक-एक महाभारत है। सत्यकी विजयके लिये उन्होंने जो-जो लड़ाइयाँ लड़ी हैं; स्वार्थत्याग, सेवा और सचाईके साथ जो काम किए हैं वे किसीसे छिपे नहीं हैं। 'अदालतकी लिपि और प्रारंभिक शिक्षा' पर जो उनका लेख है वह मानो हिन्दी बनाम उर्दूके अभियोगका सदाके लिये निर्णय है। उसके विषयमें कहा जाता है कि जो इसको पढ़ ले वह केवल हिन्दीका पक्षपाती ही नहीं, उसका प्रचारक भी बन जायगा।

काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालयमें एम्० ए० तक हिन्दी साहित्यका अध्यापन होता है और अब इण्टर मेजिएट कक्षाओंमें सभी विषय हिंदीमें पढ़ाए जाते हैं। यह जानकर किसे सुख न होगा कि हिन्दीके परमसेवी बाबू श्यामसुन्दरदास, अद्वितीय विद्वान् पण्डित रामचन्द्र शुक्ल तथा कवि सम्राट् पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्यायजी, प्रसिद्ध टीकाकार श्री भगवानदीनजी आदि हिन्दीके आचार्य सब काशी हिन्दू विश्वविद्यालयमें हिन्दी विभाग द्वारा मालवीयजीकी संरक्षतामें हिन्दीकी सेवा कर चुके हैं। अब तो देश भरमें हिन्दी फैल रही है, लोग बड़े चावसे हिन्दी सीख रहे हैं। राष्ट्रीय महासभाने भी जबसे हिन्दीको अपनाया और जबसे देशके नेता 'मिष्टर प्रेसिडेण्ट, लेडीज़ एण्ड जैण्टिलमैन' के स्थानपर 'सभापति महोदय, देवियो और सज्जनों' से अपना व्याख्यान प्रारम्भ करने लगे तबसे हिन्दी सचमुच राष्ट्रभाषा हो गई तभीसे तो हिन्दीका बड़ा ही प्रचार हुआ है और होता चला जा रहा है। इस हिन्दी प्रचारकी उमंगकी एक कथा हमें याद है। सन् १९२८ ई० में पण्डित मोतीलाल नेहरू राष्ट्रीय महासभाके सभापति थे। वे अपना भाषण पढ़ने खड़े हुए। उन्होंने जहाँ प्रारम्भ किया 'लेडीज एण्ड जैण्टिलमैन' कि चारों ओरसे शोर हुआ 'हिन्दीमें, हिन्दीमें, हिन्दीमें', पण्डित मोतीलालजीने अपने पदकी दुहाई दी, बहुत कहा-सुना, पर उनकी एक न सुनी गई। वे हिन्दीमें बोलनेके लिये बाध्य किए गए। मद्रास और बङ्गाल, सिन्ध और पञ्जाब सर्वत्र हिन्दीकी तूती बोल रही है। पर एक बात बड़ी खटकती है, और प्रत्येक देशप्रेमीको खटकनी चाहिए कि स्वतन्त्र हो जानेपर भी हमारे अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे भाई अंग्रेज़ी बोलनेमें अपनी शान समझते हैं और जो हिन्दी बोलते हैं वह भी अंग्रेज़ी-

के बोझसे दबी हुई निकलती है। एक बार बाबू शिवप्रसाद गुप्तजीने कहा था कि आजकलके लोग शानके मारे अपनी स्त्रीको अंग्रेज़ी पत्र लिखते हैं चाहे वह बेचारी ए. बी. सी. भी न जानती हो। किन्तु यह सब होते हुए भी हिन्दी तीव्र गतिसे बढ़ती चली जा रही थी। दक्षिणमें हिन्दी प्रचार सभा खुली और उसके प्रेरक स्वयं गाँधीजी थे। हिन्दी साहित्य-सम्मेलनकी राष्ट्रभाषा प्रचार सभा, वर्धाकी ओरसे उत्कल, बंगाल, सिंध, पंजाब, महाराष्ट्र, गुजरात, मद्रास आदि प्रान्तोंमें अनेक केन्द्र खुले और लाखोंकी संख्यामें नरनारी हिन्दी पढ़ने और सीखने लगे। किन्तु इसी बीच गाँधीजीने कहा कि राष्ट्रभाषा हिन्दी नहीं हिन्दुस्तानी होनी चाहिए जिसमें संस्कृत और फ़ारसी मिली जुली हो और जो नागरी तथा फ़ारसी दोनों लिपियोंमें लिखी जा सके। गाँधीजीके इस विचारने बड़ा संघर्ष उत्पन्न कर दिया, बैठे बैठाए दो दल बन गए; पर गाँधीजी अपनी टेक पर अड़े रहे।

हिन्दी साहित्य सम्मेलनकी साँप छछूँदरवाली गति हो गई। वह गाँधीजीको छोड़ना भी नहीं चाहता था और हिन्दुस्तानी नामकी बनावटी, अव्यावहारिक और अस्तित्वहीन तथा कथित भाषा का विरोधभी करना चाहता था। जब सन् १९३९ में कई प्रान्तोंमें कांग्रेसी सरकारें बन गईं तब इसे 'हिन्दुस्तानी'का का बड़ा हल्ला हुआ और उस बनावटी भाषामें जो पुस्तकें निकलीं वे इतनी दरिद्र थीं कि चारों ओरसे उनपर आक्रमण होने लगे। उसी समय संवत् १९९६ (सन् १९३९) के दशहरे पर काशी अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन हुआ। पुण्यश्लोक मालवीयजी स्वागताध्यक्ष थे। बिहारसे प्रकाशित हिन्दुस्तानीकी नई अव्यवस्थित पुस्तकें देखकर मालवीयजीको बड़ा क्षोभ हुआ और उन्होंने बाबू राजेन्द्रप्रसादजीका तो ध्यान उस ओर आकृष्ट किया ही साथ ही अपने स्वागत भाषणमें भी उसका विरोध किया। केवल भाषा ही नहीं उस समय देवनागरी लिपि बिगाड़नेका भी बड़ा षड्यन्त्र चल रहा था। अतः मालवीयजीने अपने स्वागत भाषणमें इन दोनों दुष्प्रवृत्तियोंका विरोध करते हुए कहा—

बड़े बड़े प्रश्न सम्मेलन और नागरीप्रचारिणी सभाके सामने उपस्थित हैं, और यह आवश्यक है कि हिन्दी भाषा और नागरी लिपिके प्रेमी सभा ओर सम्मेलनके कार्योंको ध्यानसे देखते रहें और उसमें भाषा तथा लिपिके रक्षाके कार्यमें बहुत सावधानतासे काम करें।

मैं केवल दो बातोंपर विशेष ध्यान दिलाना चाहता हूँ। पहला हिंदी भाषाके स्वरूपपर, दूसरा नागरी लिपि पर। हमें यह जान लेना चाहिए कि भाषा बहुतसी बातोंके संयोगसे बनती है, वह बनाई नहीं जाती। हिंदी भाषाके विषयमें कमसे कम यह बात बहुत स्पष्ट है, इसका स्वरूप भाषाके बननेके अनुसार बना है, इसका निकास उस भाषासे है जो पृथ्वीमंडलकी भाषाओंमें पुरानी है और जिसका सबसे पुराना ग्रंथ ऋग्वेद है, जिसकी प्राचीनता और महत्ताका यूरोपियन लेखक भी आदर करते हैं और कमसे कम चार हजारवर्षोंका पुराना मानते हैं। ऋग्वेदकी पहली ऋचा "अग्निमीले पुरोहितं" में पहला शब्द आया हैं 'अग्नि' वह आज भी हिन्दीमें अगिन और आगके नामसे प्रचलित है। दूसरा शब्द आया है 'पुरोहितम्' वह जैसा हजारों वर्ष पहले था वैसा ही आज भी है। यदि कोष लेकर कोई बैठे तो जान पड़ेगा कि जितने विशेष्य विशेषण और क्रियात्मक शब्द हिंदीमें हैं उनका मूल संस्कृत है। भाषाविज्ञान शास्त्र जाननेवालोंका कहना हैं कि हिंदीके समान दूसरी कोई भाषा नहीं है जिसमें तद्भव शब्दोंके इतने और ऐसे सुन्दर उदाहरण मिलें जितने हिन्दीमें मिलते हैं। जैसे नदीकी तलीमें लुढ़कते लुढ़कते पत्थर गोल और चिकने हो जाते हैं, वैसे ही संस्कृतके शब्द समयके प्रवाहकी रगड़से गोल और चिकने हो गए। कर्ण कान हो गया, अक्ष आँख, मुख मुँह, दंत दाँत, हस्त हाथ, शिर सिर, मिष्ट मीठा, दृष्ट

रूखा, त्रीणि तीन, सप्त सात हुआ। ऐसे ही और भी अनेक शब्द हैं।

मुसलमानोंके समयमें बहुतेरे मुसलमानी शब्द हमारी भाषामें मिल गए और अब वे भाषाके अङ्ग हैं। इसी प्रकार कुछ अंग्रेजीके आनेसे अंगरेजी भाषाके शब्द भी हमारी भाषामें मिल गए किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि हमारी भाषा उन शब्दोंसे बनी है या उनके कारण बनी है। हमारी भाषा उन्हीं शब्दोंसे बनी है जो संस्कृतसे प्राकृत और अपभ्रंश बनकर हिन्दीकी शोभाको बढ़ाते हैं। जीवित भाषाओंकी यह स्वाभाविक गति है कि उनमें प्रयोजनके अनुसार दूसरी भाषाके शब्द मिला लिये जाते हैं। किन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं होना चाहिए कि हम अपने शब्दोंको छोड़कर उनके स्थानपर दूसरी भाषाके शब्द भी ग्रहण करें। हमें केवल उन्हीं विदेशी शब्दोंको ग्रहण करना चाहिए जिनसे हमारी भाषाकी शक्ति बढ़े और भावको स्पष्ट प्रकट करनेमें सहायता मिले।

जबसे भारतीयोंके राष्ट्रको फिरसे स्थापन करनेका जतन होने लगा तबसे इस बातकी चिन्ता बहुतसे देशभक्तोंको हो गई है कि राष्ट्रीय कार्यों और व्यवहारोंके लिये एक राष्ट्रभाषा मान ली जाय। अतः उन्होंने हिन्दी को राष्ट्रभाषा मान लिया क्योंकि यही देशके अधिक स्थानोंमें बोली और समझी जाती है। यह उद्योग सर्वथा सराहने के योग्य है। किन्तु जिस रीतिसे आजकल भाषाका स्वरूप बदलनेका जतन हो रहा है वह मेरी रायमें देश और समाजके लिए हितकारी नहीं होगा और हमारे धार्मिक तथा सांस्कृतिक भावोंको इससे हानि पहुँचनेकी आशंका है। उदाहरणके लिये भाषा सुधारके उद्देश्यसे लिखी हुई एक नई पाठ्यपुस्तकका उदाहरण आप लोगोंको दिखाता हूँ जो' महमूद सीरीजकी रीडरोंमें रामचन्द्रजीकी कथामेंसे लिया गया है—"बहुत पुराने जमानेकी बात है कि अयोध्यामें दशरथ नामके एक राजा राज करते थे। उनके राज्यमें रैयत बड़ी खुशीके साथ अपनी जिन्दगी बिताती थी। बादशाह इतने अच्छे थे कि वे कभी किसीको किसी चीजकी तकलीफ न होने देते थे।" रामचन्द्रजीकी शिक्षाके विषयमें उसी पुस्तकमें लिखा है बादशाहने "इन्हें पढ़ानेके लिये एक गुरु बहाल कर दिया; गुरुजी सभी लड़कोंके पढ़ानेके तरीकेसे पूरे वाकिफ थे। कुछ ही दिनोंमें बादशाहके चारों बेटोंने सभी तालीम अच्छी तरह सीख ली।"

उसी पुस्तकमालामें श्रीकृष्णचन्द्रजीके जीवन-चरित्रमें लिखा है—"दूसरे दिन सुबहमें बसुदेवने कंसको वह लड़की देते हुए कहा, देवकीके हमलसे यही लड़की पैदा हुई है।' आगे कृष्णजीके गुणोंका वर्णन करते हुए उसमें लिखा है—"श्रीकृष्णचन्द्र-में सभी सीफतें और हुनर थे। थोड़ेही दिनोंमें वे इतने हुनरमंद हो गए कि लोग हुनरमंदीकी एक ज़बानसे तारीफ़ करने लगे। उन्होंने कमान और किताब वगैरहकी इतनी इल्म हासिल की कि जिससे उनकी होशियारीकी खबर फैल गई।" उसी पुस्तकमालामें गंगाजीका वर्णन इस प्रकार है—"गंगा नदी हिंदुस्तानकी सभी नदियोंमें ज्यादा इज्जत और खातिरकी नजरोंसे देखी जाती है।" यह भाषा और कोई भाषा हो, हिंदी नहीं हो सकती।

दूसरा प्रश्न नागरी लिपिका है। सुधारके नामपर नागरी लिपिका जो बिगाड़ किया जा रहा है उससे हमलोगोंको सावधान हो जाना चाहिए। कई सदियोंके निरंतर कलात्मक विकास होनेके बाद नागरी अक्षरोंने एक सुन्दर रूप स्थिर कर लिया है और इस लिपिको सीखने वाला बिना किसी बाधाके लिखने और पढ़ने लगता है। इससे अधिक लिपिकी श्रेष्ठताका और क्या प्रमाण मिल सकता है? इसमें अनावश्यक परिवर्तन करनेसे यह लिपि कलकी वस्तु हो जायगी और हमारा संपूर्ण लिखा हुआ और छपा हुआ साहित्य अजायबघरकी सामग्री बन जायगा। अतः सब प्रतिनिधियोंसे मेरा निवेदन है कि वे इन दिनों समस्याओंपर गम्भीरता पूर्वक सुस्थिर होकर

सावधान होकर विचार करें और ऐसे परिवर्तनोंका विरोध करें जो हमारे सांस्कृतिक जीवनमें किसी प्रकारकी बाधा उपस्थित करें।

यह नई हिन्दुस्तानी किस प्रकार बन रही थी, इसका उदाहरण तो आपको मिल ही गया होगा कि उसकी भाषा केवल असंस्कृत ही नहीं है अशुद्ध भी है। गाँधीजी और उनका हरिजन सेवक दोनों इस 'हिन्दुस्तानी' के समर्थक बने रहे और यह विरोध उस समय चरम सीमाको पहुँच गया जब गाँधीजीने संवत् १६०२ में हिन्दी साहित्य सम्मेलनसे अपना त्यागपत्र दे दिया और सम्मेलनने अनिच्छा होते हुए कृतज्ञता प्रदर्शनके साथ उसे स्वीकार कर लिया। इस हिन्दी-हिन्दुस्तानी-संघर्षमें श्री पुरुषोत्तमदास टंडनजीने अद्वितीय नैतिक साहस दिखलाया और गाँधीजी की हिन्दीका प्रबल समर्थन किया।

इसीके पश्चात् हिन्दू विश्वविद्यालयने बी. ए. बी. एस. सी., बी. टी. आदि परिक्षाओंमें हिन्दीमें लिखनेकी सुविधा दे दी और थोड़े ही [illegible] यहाँ की संपूर्ण शिक्षा हिन्दीमें ही होने लगेगी। स्वतन्त्रता प्राप्त करनेके पश्चात् युक्तप्रान्तने राजभाषा हिन्दी और अपनी राजलिपि [illegible] घोषित कर दी है। और यह विश्वास है [illegible] केन्द्रीय सरकार भी हिन्दीको राष्ट्रभाषा नागरीको राष्ट्रलिपि स्वीकार कर लेगी।

निरीह हिन्दू

'मनु' के कड़े नेममें पला हुआ, गाण्डीवकी डोरीकी गूँजसे शत्रुओंको कँपा देनेवाला, भिखारीको चुपचाप कुण्डल और कवच उतारकर दे देनेवाला और अपनी जान देकर भी दीनोंकी पीर हरनेवाला हिन्दू कब, कैसे और कहाँ लुप्त हो गया, यह एक बड़ी उलझी हुई पहेली है। ताड़के सूखे हुए पत्तोंमें उसके सुहागकी कथा लिखी हुई है, समुद्रकी तरङ्गें और हिमालयकी ऊँची चोटी उसके आँखों देखे साक्षी हैं, पर किस मार्गसे वह हिन्दू अपना देश छोड़कर भाग गया, यह कौन बतायगा? मोहन-जो-दड़ो और हरप्पाकी खुदाईने यह सिद्ध कर दिया कि वह यहीं मारकर गाड़ दिया गया और उसकी समाधिपर मङ्गोल, फ़ारस, अरब, यूनान और योरोपके लोगोंने आकर अपना-अपना फाग खेला। जिसका रङ्ग पड़ा उसी रङ्गमें वह समाधिमें पड़ा हुआ मुर्दा हिन्दू रँगता गया।

कहा जाता है कि श्रीकृष्णजीने महाभारत करा कर उसका अँगूठा काट लिया और एकलव्यकी भाँति उसने सदाके लिये अपने धनुषका चिल्ला उतारकर रख दिया। कोई कहते हैं कि भगवान् बुद्ध और महावीरके दयाके नदमें वीर हिन्दू डूब मरा। किसी किसीका मत है कि कन्नौजके राजा जयचन्दके विश्वासघातने और पृथ्वीराजकी क्षमाने मिलकर उस वीर हिन्दूका गला घोंट दिया। कभी सुनते हैं कि अकबरके मीनाबाज़ारमें ही वह लूटा गया और औरंगजेब की वधशालामें दो टुकड़े कर दिया गया। फिर सुना कि योरोपमें जाकर वह भूखे मरते हुए भी चोटी कटाकर, टाई बाँधकर और विलायती ढङ्गके कपड़े पहनकर ईसाई बन गया। किसको सच मानें किसको झूठ। सच पूछिये तो केवल एक ही कारण नहीं है, सभी कारणोंने जोंकों की भाँति इसका रक्त बारी-बारीसे चूसा है।

हिन्दू जातिने अतिथि-सत्कारका पाठ बचपनमें ही सीखा और वह संस्कार उसके साथ ऐसा लगा कि अतिथि सत्कारमें उसने अपना सब कुछ लुटा दिया। इधर इसीके घरमें पैदा होनेवाले बच्चोंने भी इनकी सेवा करना तो दूर रहा, अपनी डेढ़ चावलकी खिचड़ी अलग पकानी शुरु कर दी। बौद्धोंने अपना अलग घर बनाया, जैनियोंने अलग, पर इसके बाद जो बहुतसे आस्तिक और नास्तिक मत सम्प्रदाय बने वे सब न जाने कैसे हिन्दू बने रहे।

इस हिन्दू धर्मपर कितने बड़े-बड़े वीरोंने सिर कटा दिए, कितनी स्त्रियोंने अपना कुन्दनसा शरीर आगमें झोंक दिया। यह तो बहुत लम्बी कथा है पर इस सिसकते हुए हिन्दू धर्ममें गुरु गोविन्द सिंहके वीर सपूत जुझावरसिंह और जोरावरसिंह दीवारमें चुने हुए अब भी खड़े हैं उस वीर बालक हक़ीक़तकी कथा सुनकर किसे अभिमान न होगा जिसके हिन्दूपनको न तो तलवार डरा सकी और न मुल्लाओंकी लाल आँखें। यह सचमुच हमारी कृतघ्नता है कि उस वीर बालकका उतना सन्मान न कर सके जितना करना चाहिये। जहाँ प्रातः-स्मरणीय छत्रपति शिवाजी और महाराणा प्रतापकी पूजा होती है, जयन्ती मनाई जाती है, चित्र टाँगे जाते हैं, वहाँ हक़ीक़त और गुरु गोविन्दसिंहके वीर लड़के हिन्दू या सिक्ख उपदेशकोंकी कथाओं-तक ही कैसे रह गए, कुछ समझमें नहीं आता।

सावधान होकर विचार करें और ऐसे परिवर्तनोंका विरोध करें जो हमारे सांस्कृतिक जीवनमें किसी प्रकारकी बाधा उपस्थित करें।

यह नई हिन्दुस्तानी किस प्रकार बन रही थी इसका उदाहरण तो आपको मिल ही गया होगा कि उसकी भाषा केवल असंस्कृत ही नहीं है अशुद्ध भी है। गाँधीजी और उनका हरिजन सेवक दोनों इस 'हिन्दुस्तानी' के समर्थक बने रहे और यह विरोध उस समय चरम सीमाको पहुँच गया जब गाँधीजीने संवत् १९०२ में हिन्दी साहित्य सम्मेलनसे अपना त्यागपत्र दे दिया और सम्मेलनने अनिच्छा होते हुए कृतज्ञता प्रदर्शनके साथ उसे स्वीकार कर लिया। इस हिन्दी-हिन्दुस्तानी-संघर्षमें श्री पुरुषोत्तमदास टंडनजीने अद्वितीय नैतिक साहस दिखलाया और गाँधीजीकी हिन्दीका प्रबल समर्थन किया।

दर्शोंके पश्चात् हिन्दू विश्वविद्यालयने बी. ए., बी. एस. सी., बी. टी. आदि परिक्षाओंमें हिन्दीमें लिखनेकी सुविधा दे दी और थोड़े ही दिनोंमें वहाँ की संपूर्ण शिक्षा हिन्दीमें ही होने लगेगी। स्वतन्त्रता प्राप्त करनेके पश्चात् युक्तप्रान्तने अपनी राजभाषा हिन्दी और अपनी राजलिपि नागरी घोषित कर दी है। और यह विश्वास है कि केन्द्रीय सरकार भी हिन्दीको राष्ट्रभाषा और नागरीको राष्ट्रलिपि स्वीकार कर लेगी।

निरीह हिन्दू

'मनु' के कड़े नेममें पला हुआ, गाण्डीवकी डोरीकी गूँजसे शत्रुओंको कँपा देनेवाला, भिखारीको चुपचाप कुण्डल और कवच उतारकर दे देनेवाला और अपनी जान देकर भी दीनोंकी पीर हरनेवाला हिन्दू कब, कैसे और कहाँ लुप्त हो गया, यह एक बड़ी उलझी हुई पहेली है। ताड़के सूखे हुए पत्तोंमें उसके सुहागकी कथा लिखी हुई है, समुद्रकी तरङ्गें और हिमालयकी ऊँची चोटी उसके आँखों देखे साक्षी हैं, पर किस मार्गसे वह हिन्दू अपना देश छोड़कर भाग गया, यह कौन बतायगा? मोहन-जो-दड़ो और हरप्पाकी खुदाईने यह सिद्ध कर दिया कि वह यहीं मारकर गाड़ दिया गया और उसकी समाधिपर मङ्गोल, फ़ारस, अरब, यूनान और योरोपके लोगोंने आकर अपना-अपना फाग खेला। जिसका रङ्ग पटा उसी रङ्गमें वह समाधि में पड़ा हुआ मुर्दा हिन्दू रँगता गया।

कहा जाता है कि श्रीकृष्णजीने महाभारत करा कर उसका अँगूठा काट लिया और एकलव्यकी भाँति उसने सदाके लिये अपने धनुषका चिल्ला उतारकर रख दिया। कोई कहते हैं कि भगवान् बुद्ध और महावीरके दयाके नदमें वीर हिन्दू डूब मरा। किसी किसीका मत है कि कन्नौजके राजा जयचन्दके विश्वासघातने और पृथ्वीराजकी क्षमाने मिलकर उस वीर हिन्दूका गला घोंट दिया। कभी सुनते हैं कि अकबरके मीनाबाज़ारमें ही वह लुट गया और ओरंगजेब की वधशालामें दो टुकड़े कर दिया गया। फिर सुना कि योरोपमें जाकर वह भूखे मरते हुए भी चोटी कटाकर, टाई बाँधकर और विलायती ढङ्गके कपड़े पहनकर ईसाई बन गया। किसको सच मानें किसको झूठ। सच पूछिये तो केवल एक ही कारण नहीं है, सभी कारणोंने जोंकों की भाँति इसका रक्त बारी-बारीसे चूसा है।

हिन्दू जातिने अतिथि-सत्कारका पाठ बचपनमें ही सीखा और वह संस्कार उसके साथ ऐसा लगा कि अतिथि सत्कारमें उसने अपना सब कुछ लुटा दिया। इधर इसीके घरमें पैदा होनेवाले बच्चोंने भी इनकी सेवा करना तो दूर रहा, अपनी डेढ़ चावलकी खिचड़ी अलग पकानी शुरु कर दी। बौद्धोंने अपना अलग घर बनाया, जैनियोंने अलग, पर इसके बाद जो बहुतसे आस्तिक और नास्तिक मत सम्प्रदाय बने वे सब न जाने कैसे हिन्दू बने रहे।

इस हिन्दू धर्मपर कितने बड़े-बड़े वीरोंने सिर कटा दिए, कितनी स्त्रियोंने अपना कुन्दनसा शरीर आगमें झोंक दिया। यह तो बहुत लम्बी कथा है पर इस सिसकते हुए हिन्दू धर्ममें गुरु गोविन्द सिंहके वीर सपूत जुझारसिंह और जोरावरसिंह दीवारमें चुने हुए अब भी खड़े हैं उस वीर बालक हक़ीक़तकी कथा सुनकर किसे अभिमान न होगा जिसके हिन्दूपनको न तो तलवार डरा सकी और न मुल्लाओंकी लाल आँखें। यह सचमुच हमारी कृतघ्नता है कि उस वीर बालकका उतना सन्मान न कर सके जितना करना चाहिये। जहाँ प्रातः-स्मरणीय छत्रपति शिवाजी और महाराणा प्रतापकी पूजा होती है, जयन्ती मनाई जाती है, चित्र टाँगे जाते हैं, वहाँ हक़ीक़त और गुरु गोविन्दसिंहके वीर लड़के हिन्दू या सिक्ख उपदेशकोंकी कथाओं-तक ही कैसे रह गए, कुछ समझमें नहीं आता।

तो यह आर्य्यावर्तकी बलवान जाति आपसमें ही बँट गई। रस्सीकी ऐंठन खुल गई, तार बिखर गए। जिसके गुरुओंने हिन्दू धर्मके लिए अपने सीस दे दिए, और अपने शरीरपर गरम तेल छुड़वाया, वही बलवान् सिक्ख जाति, अपनेको हिन्दू कहलानेमें सङ्कोच करने लगी, अपना मकान अलग बनाकर बैठ गई। हिन्दूजातिका मानो एक हाथ ही कट गया।

बङ्गालमें जो ब्रह्म समाज और देव समाज आदि चले वे भी हिन्दू न रह गए। अपनी थोड़ीसी पूँजी लेकर वे भी अलग हो गये पर स्वामी दयानन्दजीका आर्य्यसमाज हिन्दू ही बना रहा। मथुरामें जो दयानंद शताब्दी मनाई गई उस समय किसीने यह प्रस्ताव किया था कि आर्य्यसमाजको हिन्दुओंसे अलग कर दिया जाय, किन्तु स्वामी श्रद्धानन्द और प्रत्येक समझदार आर्य्यसमाजीने इसका विरोध किया। जिसकी जान बचानेके लिए आप कोशिश कर रहे हों उसीसे बोलचाल बन्द, यह भला कैसे हो सकता था। पर हिन्दू जाति छिन्न भिन्न अवश्य हो गई थी।

एक बहुत पुरानी कथा है। उस समय बौद्ध-धर्मका बड़ा बोलबाला था, ज्ञानका भण्डार वेद कूड़ेखानेमें फेंका जाने लगा और वेदके रक्षक ब्राह्मणोंकी निन्दा होने लगी, चम्पानगरीके राजा सुधन्वा भी बुद्धके 'अरिय सच' और 'अट्ठाङ्ग मग्ग' के चक्करमें पड़े हुए थे, पर उनकी रानी अभीतक वेदका पल्ला थामे हुए थीं। एक दिन वह अपने राजभवनकी खिड़कीमें बैठी चिन्ता कर रही थी—

"किं करोमि क्व गच्छामि को वेदानुद्धरिष्यति"—'क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, कौन वेदोंका उद्धार करेगा।' कुमारिल भट्ट उसी मार्गसे चले जा रहे थे। उन्होंने यह दीनता भरी पुकार सुनी और खड़े हो गए। वहीं उन्होंने पूरे स्वरसे कहा—

'मा विषीद वरारोहे भट्टाचार्य्योऽस्मि भूतले'

"हे रानी! चिन्ता न करो, मैं भट्टाचार्य्य अभी पृथ्वीपर हूँ।" कुमारिलभट्टने बौद्ध गुरुओंसे बौद्ध-धर्म सीखा और सुधन्वाके दरबारमें ही शास्त्रार्थ हुआ। कुमारिलभट्ट जीत गए और एक बार वेदकी दुन्दुभि बज उठी। उन्होंने बौद्धगुरुओंसे ज्ञान लेकर उन्हींकी निन्दा और उनका विरोध किया। इसके प्रायश्चित्तमें प्रयागमें त्रिवेणीतटपर भूसीकी अग्निमें जलकर उन्होंने अपना शरीर छोड़ दिया। यह वेदके उद्धारकी बात थी दो सहस्र बरस पहले।

उसके दो सहस्र वर्ष पश्चात् उसी त्रिवेणीके तटपर एक ब्राह्मणके घरमें एक बालक पैदा हुआ मानो जातिको यही आश्वासन देता हुआ जन्मा—

"मा विषीद वरारोहे मालवीयोऽस्मि भूतले।"

स्वामी दयानन्दजीका आर्य्यसमाज वेदका उद्धार तो कर ही रहा था साथ ही वह हिन्दू समाजको सुधार भी रहा था। यह सब होते हुए भी एक ऐसी संस्थाकी आवश्यकता थी जहाँ हिन्दुस्थानका प्रत्येक हिन्दू कहलानेवाला एक झण्डेके नीचे खड़ा होकर अभिमान कर सके कि 'अब हमें कोई भय नहीं है, हम पचास करोड़ हैं'। हितोपदेशमें एक कथा है कि तीन साँड़ एक जङ्गलमें रहते थे। जबतक वे एक साथ रहते रहे तबतक सिंह उनका बाल भी बाँका न कर सका पर जिस दिन वे अलग-अलग हुए कि सिंह उन्हें मारकर खा गया। यही दशा हिन्दू जातिकी हुई। चारों ओरसे शेर, बाघ, भेड़िये जुटे थे जो इसको मार खानेकी ताकमें थे।

यद्यपि आर्य्यसमाजने हिन्दुओंमें प्रचलित बहुतसी बातोंका विरोध किया पर मूर्त्ति-पूजाका स्वतः विरोध करते हुए भी कई बार मन्दिरों और मूर्त्तियोंकी रक्षाके लिये आर्य्यसमाजियोंने लड़ाई लड़ी। अछूतोद्धार, शुद्धि, विधवा-संरक्षण, बाल-विवाह-निषेध आदि बातें लेकर ही आर्य्य-समाजका प्रचार शुरू हुआ। इनमेंसे सभीको बादमें सनातनधर्म सभाने भी अपना लिया।

सन् १८८० ई० में प्रयागमें जो हिन्दू समाज और सन् १८८४ ई० में जो मध्य हिन्दू समाज स्थापित हुआ था उसकी कथा हम कह आये हैं। सन् १८९१ ई० तक मध्य हिन्दू समाजके वार्षिक

महोत्सव होते रहे। हिन्दू समाजके बड़े-बड़े नेता वहाँ आकर हिन्दू धर्मकी चर्चा करते और उसमें सुधार करनेके लिये बहुतसी बातें होती रहतीं। इन्हीं दिनों युक्तप्रान्तमें उर्दूके स्थानपर हिन्दी होनेके लिये आन्दोलन हुआ और मध्य हिन्दू समाजके प्रायः सभी नेता और उसके सर्वेसर्वा मालवीयजी भी उसी आन्दोलनमें पड़ गए जैसा कि हम पीछे कह चुके हैं। नागरी प्रचार आन्दोलनके सफल होनेके बाद मालवीयजी फिर हिन्दुओंके उद्धारमें जुट गये और उन्होंने हिन्दू युवकोंकी आध्यात्मिक, मानसिक और शारीरिक उन्नतिके लिये एक विश्वविद्यालय खोलनेकी बात चलाई। सन् १९०४ ई० में उनकी यह हिन्दू समाजके सुधारकी सार्थक और सारयुक्त योजना प्रकट हो गई। सन् १६०५ ई० में कांग्रेसके अवसरपर ३१ दिसम्बरको टाउन हॉलमें यह हिन्दू विश्वविद्यालयका प्रस्ताव भी विचारके लिये एक सभामें पेश किया गया।

सन् १९०५ ई० का बङ्गभङ्ग वर्त्तमान हिन्दू सङ्घटनका प्रारम्भ समझना चाहिए। लार्ड कर्ज़नने जो लात लगाई थी उससे बङ्गालके तो दो टुकड़े हुए ही, साथ ही हिन्दुओंकी भी सारी आशा टुकड़े-टुकड़े हो गई। सन् १६०५ ई० में राष्ट्रीय महासभाके साथ-साथ सर गणेशनारायण चन्दावरकरके सभापतित्वमें सोशल कॉन्फ्रेन्स हुई, और बरारके श्रीयुत बी० एन्० महाजनीके सभापतित्वमें टाउन हॉलमें हिन्दुओंकी बड़ी भारी सभा हुई। हिन्दू सभाकी नीति वही थी जो लोकमान्य तिलकने कहा था कि 'सामाजिक सुधार किसी भी समाजमें उसके भीतरसे ही विकसित होने चाहिए, न कि बाहरसे थोपे जायँ। यदि ऐसा न हो तो समाजमें एकता नहीं हो सकती।'

बङ्गालके दो टुकड़े तो हुए पर हिन्दू एक होने लगे। उन्होंने अब अनुभव किया कि हमें यदि जीना है तो एक मिलकर रहना होगा। सन् १६०७ ई० में फिर हिन्दूमहासभाकी बैठक हुई। बहुतसे प्रस्ताव पास हुए, पर वे दिन भारतके लिए दुर्दिन थे। पञ्जाबकेशरी लाला लाजपतरायको देश निकाला हो गया, श्री अरविन्दघोष और उनके साथी पकड़ लिए गए और मुकुटहीन सम्राट् लोकमान्य तिलकको छः वर्ष कारागारका दण्ड मिल गया। लहरोंके बीचमें पड़ी हुई नौकाको जब अपने बचनेकी चिन्ता रहती है तो फिर वह कर ही क्या सकती है। लोर्ड मिण्टो अपनी साथ रायमुख भकम्प लाए थे। पञ्जाबमें काँगड़ाके भूकम्पने इन्हींके श्री चरणोंकी अगवानी की थी। लॉर्ड मिण्टोने अपना कुदर्शन दमन-चक्र चलाकर पृथक् निर्वाचन प्रणाली प्रारम्भ करदी। सन् १६०६ ई० में फिर हिन्दुओंकी महासभा हुई और लॉर्ड मिण्टोके साम्प्रदायिक विशेषाधिकारके विरोधमें पत्र और प्रतिनिधि-मण्डल भेजे गए। इस विरोध और प्रतिनिधि-मण्डलके कर्त्ता-धर्त्ता मालवीयजी ही थे या यों कहिए कि यह उपज भी मालवीयजी की ही थी। बड़ी दौड़-धूप करके एक प्रतिनिधि मण्डल लॉर्ड मिण्टोसे मिला, पर उसका कुछ फल न निकला।

इसके बाद फिर हिन्दू सभा नींद लेती रही, किन्तु सन् १६१३ ई० के कानपुरके दङ्गेने इसकी नींद खोल दी। अप्रैल सन् १९१४ ई० में फिर अखिल भारतीय हिन्दू सभाकी बैठक हुई। उपद्रवियोंको गाली, सङ्घटनका शोर, सुधारके प्रस्ताव-बस इतना ही समझिए। स्वर्गीय पण्डित देवरत्न शर्मा किसी प्रकार उस हिंदू-सभा-आन्दोलनको आगे ढकेलते रहे।

सन् १९२० ई० में भारतका 'तिलक' उठ गया, इधर असहयोगकी आँधी आई, उधर खिलाफ़तका तूफान आया, इस अँधेरी धर-पकड़में ही ननकानामें निहत्थे वीर सिक्ख सरकारी गोलियोंसे भून दिए गए। सन् १६२१ ई० में मालाबारके मोपलाओंने जो हिन्दुओंकी दुर्गति की उनका धन लूटा, आग लगाई, स्त्रियोंकी बेइज्जती की, उसके कोड़ेने हिन्दुओंकी पीठ छील दी। मालवीयजी बीमार थे। उनको बड़ा दुःख हुआ। वे वहाँ जाना चाहते थे पर लाचार थे। उन्होंने गान्धीजीको काशीमें बुलाया और फिर पीड़ित

हिन्दुओंकी सहायताके लिये उन्होंने जो रुपये अन्न, वस्त्र, भिजवाए और उनकी खोज-खबर ली, यह तो अकथ कहानी है।

अभी यह घाव भरने भी नहीं पाया था कि मुल्तानमें दंगा हो गया। असङ्गठित हिन्दू शक्ति रखते हुए भी बुरी तरह पिट गए। मालवीयजी, बाबू राजेन्द्रप्रसाद और हकीम अजमलखाँ वहाँ गए। वहाँकी दशा देखकर बाबू राजेन्द्र प्रसाद, हकीम अजमलखाँ और मालवीयजी बच्चोंकी तरह रो पड़े। बस इतनेसे ही उसका अनुमान लगा सकते हैं। मनुष्य क्या इतना पशु हो सकता है, हम लोग कल्पना भी नहीं कर सकते। इससे अधिक लज्जाकी और बात ही क्या हो सकती है कि इतने मर्दोंके रहते हुए भी वहाँकी स्त्रियोंको अपनी इज्जत बचानेके लिये तालाबमें डूबकर मरना पड़ा। पर उसी मुल्तानके दङ्गेका एक और भी पहलू है। जहाँ कुछ गुण्डे मुसलमान थे, वहाँ एक भली मुसलमान बहनने अपनी जान हथेलीपर रखकर चालीस हिन्दू मर्दों, स्त्री और बच्चोंको आश्रय दिया, अपने बच्चोंको भूखा रखकर इन आश्रित हिन्दुओंको घरमें रक्खा, उसके पास जो पावभर आटा था दिया और उनके बच्चोंको दूध पिलाया। इस बहनका नाम अल्लाह बसाई था। कौन हिन्दू होगा जो इस मुसलमान बहनके आगे सिर न झुका देगा।

इसके बाद सहारनपुरमें भी ऐसा ही दंगा हुआ और वहाँभी हिन्दू पिटे। हम जानते हैं कि वहाँ बलुवसे हिन्दुओंने घरमें घुसकर किवाड़के पीछेसे अपनी माताओं, बहनों और बेटियोंकी निर्दय हत्या होते देखी है और कायरताके साथ अपने प्राण बचाए हैं।

इन घटनाओंने हिन्दुओंको जो चाबुक लगाया उससे वे तड़पकर उठ बैठे और मालवीयजी, लाला लाजपतराय और स्वामी श्रद्धानन्दने हिन्दुओंको एक सूत्रमें बाँधनेका बीड़ा उठाया। स्वामी श्रद्धानन्दजी और लाला लाजपतरायके उद्योगसे सन् १९०७ ई० वाली हिन्दू सभा और सन् १९१४ ई० वाली अखिल भारतीय हिन्दू सभाने और सन् १९२३ ई० में एक नया भव्य और व्यवस्थित रूप धारण कर लिया और उसका नाम पड़ा अखिल भारतीय हिन्दू महासभा। १९ और २० अगस्त सन् १९२३ ई० को काशीमें सेण्ट्रल हिन्दू स्कूलके काशीनरेश हालमें मालवीयजीके सभापतित्वमें बड़ी धूम-धामसे महासभा हुई। सनातनधर्मी, आर्य्यसमाजी, बौद्ध, सिक्ख, जैनी, पारसी सभी सम्प्रदायवाले लोग वहाँ ईकट्ठा हुए और भारतके इतिहासमें पहली बार यह जान पड़ने लगा कि भारतमें पैदा होकर, विभिन्न विचार रख-कर भी हम एक ही मञ्चसे बोल सकते हैं और एक ऐसा भी स्थान है जहाँ हम एक साथ बैठकर विचार कर सकते हैं। यह अधिवेशन कई बातोंके कारण महत्त्वपूर्ण रहा। इस सभामें एक ओर कट्टर सनातनधर्मी, दूसरी ओर कट्टर आर्य्य-समाजी और इन दो हिम-शिलाओंके बीच मालवीयजी नाव खे रहे थे और जिस कौशलके साथ उन्होंने कार्य्य किया वह क्या वर्णन किया किया जा सकता है। इस विरोधी जनसमूहके द्वारा ही मालवीयजीने हिन्दू समाजको सङ्गठित कर दिया।

इस हिन्दू सभाके उद्देश्य बड़े व्यापक बने।

हिन्दू सभाके उद्देश्य

(१) हिन्दू समाजके सर्वपन्थियोंमें तथा सर्व-वर्गियोंमें पारस्परिक प्रेमकी वृद्धि करके, एकीकरण द्वारा इस अपने महान् समाजको सुसङ्गठित, प्रबल व उत्कर्षोन्मुख बनाना और उसकी सर्वाङ्गीण प्रगति करना यही हिन्दू सभाका उद्देश है।

(२) सङ्गठित हिन्दू जाति व भारतमेंकी अन्य पर धर्मीय जातियोंके साथ परस्पर सद्भाव उत्पन्न करके भारतको स्वयं-शासित स्वराज्ययुक्त एक महान् राष्ट्र बनानेका प्रयत्न करनेके लिये उनसे मित्रता बढ़ाना।

(३) हिन्दू जातिके निम्न वर्गोंके साथ सर्व-वर्णोंकी उन्नति करके उनको ऊँचे उठाना।

(४) हिन्दुओंके हितकी जहाँ आवश्यकता हो वहाँ रक्षा करना।

(५) हिन्दुओंका संख्याबल क़ायम रखना व उसे बढ़ाना।

(६) हिन्दू स्त्रियोंकी स्थिति सुधारना।

(७) गोरक्षण व गोसंवर्द्धन करना।

(८) हिन्दू जातिके धर्म, सदाचार, शिक्षण और सामाजिक, राजकीय तथा आर्थिक उन्नतिके लिये प्रयत्न करना।

टिप्पणी—हिन्दू सभा हिन्दू जातिमें के किसी भी विशेष पन्थका, राजनीतिक पक्षका, पक्षपात अथवा विरोध नहीं करेगी, अथवा किसी पन्थके मतमें रद्दोबदल नहीं करेगी।

इसी सभामें बालविवाहके विरुद्ध एक प्रस्ताव था कि चौदह वर्षके पूर्व कन्याका विवाह न किया जाय। बहुतसे लोगोंने इसका विरोध किया और नरकमें पड़नेका भय और आशङ्का प्रकट की। मालवीयजीने बड़ी गम्भीरतासे उसका निर्णय देते हुए कहा—'आठ-दस बरसकी अवस्थामें कन्याओंका विवाह करनेसे तो रजोदर्शनके बाद भी विवाह करना श्रेष्ठ है और इसके लिए यदि हमें नरकमें भी जाना पड़े तो नरकमें जाना अच्छा है पर बालविवाह करना अच्छा नहीं।' चाहे इस निर्णयसे किसीको सन्तोष भले ही न हुआ हो पर इसके आगे सबने सिर झुका दिया।

इसी अधिवेशनमें, जब अस्पृश्यता-निवारणका प्रश्न उठा तो लोगोंने कहा कि मालवीयजी स्वयं तो छूत-छात इतनी मानते हैं और ऊपरसे उपदेश देते हैं, पर थोड़ी ही देर पश्चात् उनकी शङ्का दूर हो गई क्योंकि मालवीयजीने थोड़ी ही देर बाद देहरादूनके एक हरिजन (चमार) सज्जनका हाथ पकड़कर खड़ा किया और कहा कि अब मेरे भाई बिहारीलाल कुछ कहेंगे। न जाने कितने नेत्रोंने इन प्रेमभरे शब्दोंपर मोती बरसा दिए थे।

इसके बाद तो हरद्वार, दिल्ली, कानपुर जबलपुर कलकत्ता, बेलगाँव, अकोला, अजमेर आदि बहुतसे स्थानोंमें हिन्दू-महासभाके वार्षिक अधिवेशन हुए।

कलकत्तेके अधिवेशनकी बात है। कलकत्ता नगर हॉलीडे पार्कमें पञ्जाब-केसरी लाला लाजपतरायकी अध्यक्षतामें हिन्दू महासभाका अधिवेशन हो रहा था। महा सभाके खुले अधिवेशनमें लाहोरके उर्दू-दैनिक 'वन्देमातरम्' के सम्पादक लाला रामप्रसादजी, एम० ए० ने अछूतों और शूद्रों को वेद-पाठका अधिकार देनेका प्रस्ताव उठाया। स्वामी सत्यदेव परिव्राजकने समर्थन करते हुए कहा—"ईश्वरकी दी हुई रोशनी, हवा और वर्षा से जब शूद्र वञ्चित नहीं हैं तब ईश्वर की वाणी (वेद) से क्यों वञ्चित रहें?" पण्डालमें बड़ी हलचल मच गई। बहुतोंको यह बात अच्छी न लगी। उनको सँभालनेके लिये किसी नेताने आगे बढ़नेका साहस न दिखाया। नाव मँझधार में आ पड़ी। पण्डालमें बड़ा शोर मचा।

वहाँ मालवीयजी तो थे ही। व्याख्यान-वाचस्पतिजीने तथा अनेक प्रमुख सज्जनोंने और स्वयं लालाजीने भी उन्हें बोलनेको कहा। तालियोंकी गड़गड़ाहटके बीच मालवीयजी उठे, और अपनी अमृतमयी वाणीकी धारामें कहना प्रारम्भ किया —"ईश्वरके दिए हुए प्रसाद प्राणिमात्रके लिए सुलभ हैं। पर वेदोंका अध्ययन करनेके लिये कठोर तपस्याकी आवश्यकता है, जो सबके लिये साध्य नहीं। इसीलिये स्वयं भगवान्ने वेदशास्त्रोपनिषदोंका सार 'श्रीमद्भगवद्गीता' के रूपमें प्रकट कर दिया। वह भी साक्षात् ईश्वर ही की वाणी है। गीता भूमण्डलका सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है। उसका अध्ययन और मनन सबके लिये सुलभ है। शूद्र और अन्त्यज भी उसका पाठ करके सफल-मनोरथ हो सकते हैं। वेद-पाठका अधिकार-मात्र लेनेसे कोई लाभ नहीं। उसके लिये कठिन साधनाकी आवश्यकता होगी। प्रस्ताव वही पास करना चाहिए जो कार्यरूपमें परिणत हो सके। भगवान् ने यही समझकर गीताका उपदेश दिया है कि कलियुगमें वेदपाठ सब श्रेणीके मनुष्योंके लिये

उनमें परस्पर भाई भाईकी तरह प्रेम करना चाहिए और प्रत्येक हिंदूके प्रति सहनशील बनना चाहिए, परन्तु उन मुसलमानोंके प्रति सहनशील बिल्कुल नहीं होना चाहिए, जो उन्हें शान्तिके साथ रहने देना नहीं चाहते।

मैं इस प्रकारकी प्रेरणा करना अपना कर्तव्य समझता हूँ, क्योंकि इस समय मानवता दाँवपर लगी है। हिंदू संस्कृति और हिंदू धर्म खतरेमें है। परिस्थिति संकटापन्न है और ऐसा समय आ गया है कि हिंदू एक होकर सेवा तथा सहायताके साधनोंको परिपुष्ट करें और अपनी रक्षा तथा अपने स्वत्वको प्रभावशाली बनायें।

समूचे भारतवर्षमें अनेकों मुसलमान नेताओंने अपने लेखों और आडम्बरपूर्ण व्याख्यानोंमें जहर उगला है। मुस्लिम-लीगके नेताओं, मि० गजनफर अली खाँ तथा दूसरोंने अपने लेखों तथा व्याख्यानोंमें जंगली और दायित्वशून्य भाषामें हिंदुओंको चुनौती दी है। बङ्गालकी घटनाओं पर एक भी मुस्लिम लीगी नेताने घृणा प्रगट नहीं की है। बल्कि इन बर्बर तथा पाशविक घटनाओंपर वे एक आँतरिक आनन्दका अनुभव करते हैं। मैं उनकीसी विषघुली स्याहीमें अपनी लेखनी डुबोकर कुछ नहीं लिखना चाहता। मैं अपने हिंदू भाइयोंसे यह नहीं कहता कि जहाँ मुसलमान कमजोर या कम हों, वहाँ वे आक्रमण करें। पर हिंदुओंसे मैं अवश्य कह रहा हूँ कि जहाँ वे दुर्बल हैं, वहाँ सबल बनें, और जहाँ उनकी संख्या कम है, वहाँ सफलतापूर्वक अपनी रक्षा करें। हिंदू बहुसंख्यक प्रान्तोंमें हिंदुओंने अल्पसंख्यकोंके अधिकारोंका कभी विरोध नहीं किया, बल्कि उनके अधिकारोंकी गारंटी दी है हालाँकि वे देखते आ रहे हैं कि मुस्लिम-बहुसंख्यक प्रान्तोंमें न केवल हिंदुओंके अधिकारोंकी भीषण एवं क्रूर अवहेलना की जाती है बल्कि उनके जीवन, धन और धर्मपर भी आघात होता है। सामाजिक संघटनके आधारपर निर्मित अराजनीतिक संस्था जैसे कि अभावने राष्ट्रीयताके मोर्चेको बहुत दुर्बल बना दिया है और खुश करनेकी राजनीतिक नीतिको तथा मुस्लिम-लीगकी असम्भव माँगोंको जन्म दिया है।

केवल धर्म और संस्कृतिके नामपर ही नहीं, अपनी प्यारी जन्मभूमिके नामपर भी मैं समस्त हिंदुओंसे अपील करता हूँ कि यदि वे भारतवर्षमें चिरकालके लिए शान्ति चाहते हैं और ऐसा सन्देश देना चाहते हैं कि जिसको मुसलमान तथा अन्य जाति एवं धर्मके लोग सुनें तो वे एक हो जायँ और अपनी रक्षा करें। सन्देश यह हो कि—'जैसे वे पहले रह चुके हैं, अब भी वे एक साथ एक ही भूमिपर रहना चाहते हैं। और यदि वे हिंदुओंके साथ शान्तिसे रहना चाहते हैं तो उन्हें निश्चय ही हिंदुओंके धर्मका आदर करना पड़ेगा, वे हिंदुओंके पूजागृहों-मन्दिरोंको भ्रष्ट नहीं कर सकेंगे और धार्मिक स्वतन्त्रता, जीवनकी पवित्रता एवं स्त्रियोंके सतीत्वका उन्हें अवश्य सम्मान करना पड़ेगा।'

साध्य न होगा। गीता प्रत्यक्ष भगवद्वाणी है। यह वेद ही के समान पूज्य और फलप्रद है। मानवजातिके कल्याणके लिये उसमें सब कुछ है। आप लोग प्रयत्न करें कि घर-घरमें गीताका प्रचार हो। प्रत्येक हिन्दूके पास गीताकी पोथी रहे। शूद्र और अस्पृश्य भी उसका पाठ करें और अल्प प्रयाससे ही वेदोंका मुख्य तत्त्व प्राप्त करें। ईसाई लोग एक-एक आनेमें बाइबिल बेचकर स्वधर्मका प्रचार करते हैं। हिन्दू धर्मका हृदय गीतामें है। आप लोग उसके सस्ते संस्करण निकालकर प्रत्येक हिन्दूके हाथमें वेदोंका सार रख दें। उसे पाकर फिर किसी ग्रन्थकी चाह न रहेगी।"

क्षुब्ध समुद्रपर तेल पड़ गया। बिड़लाजीने गीताके सस्ते संस्करणकी एक लाख प्रतियाँ बाँटनेकी घोषणाकी। देखते-देखते आँधी थम गई।

२७ तथा २८ दिसम्बर सन् १९२९ ई० को बेलगाँवकी हिन्दू महासभा हुई और मालवीयजी ही सभापति बनाए गए। यह सभा बेलगाँव काँग्रेसके साथ ही हुई थी और इसमें गान्धीजी, लाला लाजपतराय, देशबन्धु चित्तरञ्जनदास, पण्डित मोतीलाल नेहरू, स्वामी श्रद्धानन्द, श्री केलकर, श्रीसत्यमूर्ति, मौलाना मुहम्मद अली और शौकत अली, डाक्टर मुञ्जे आदि सभी भारतीय नेता उपस्थित थे।

जनिक शिक्षा आदि पर उन्होंने महत्वपूर्ण प्रकाश डाला।

हिन्दू-मुस्लिम एकता

बहुतसे लोग समझते हैं कि मालवीयजी मुसलमानोंसे द्वेष रखते थे पर हम उनका ध्यान मालवीयजीके उस वक्तव्यकी ओर आकर्षित करना चाहते हैं जो उन्होंने २८ जून सन् १९३३ ई० को लाहोरमें अपने भाषणमें कहा था:—

तक नहीं गई। किसी गिरजाघर अथवा मसजिदके पाससे जब मैं जाता हूँ, तब मेरा मस्तक अपने आप झुक जाता है। जब कि परमेश्वर एकही है तो लड़नेका कारण क्या? भूमि एक, देश एक, वायु एक, ऐसी परिस्थिति रहते हुए भी आपसमें दंगे टण्टोंका होना, इससे बढ़कर और आश्चर्यकी बात क्या हो सकती है। हमारा रक्षण विदेशी सैन्य करें यह बड़ी लज्जाकी बात है। पाठशालाओंमें सैनिक शिक्षण देना चाहिये और गाँव-गाँव तथा मुहल्ले-मुहल्लेमें नगर रक्षणका बन्दोबस्त होना चाहिये।"

१४ अप्रैल, सन् १९२६ ई० को लखनऊमें अयोध्या हिन्दू परिषद्का अधिवेशन भाई परमानन्दजीकी अध्यक्षतामें हुआ। उसमें भी मालवीयजीने भाग लिया और उस अवसर पर पं० मालवीयजीने इस आशयका व्याख्यान दिया था:-
बहनों और भाइयो!

"यह विषम परिस्थिति सरकारने उत्पन्न की है। कांग्रेसमें बहुतसे लोग ऐसे हैं जो अपनेको हिन्दू कहनेमें शरमाते हैं। कांग्रेस केवल मुट्ठीभर लोगोंकी संस्था नहीं है। आजकल उसमें स्वराज्य पक्षका प्राबल्य है। उसका मत समझदार मनुष्योंके पालने योग्य नहीं है। कांग्रेस पक्षके लोग सरकारका विरोध करनेके लिए कौन्सिलमें गए। परन्तु वे अपने ध्येयका संरक्षण नहीं कर सके। श्री पटेलने अध्यक्ष-पद स्वीकार किया व पण्डित नेहरूजीने स्कीम कमेटीमें जगह ली। इस प्रकार विरोधकी बात समूल नष्ट हो गई। पं० नेहरूने एक बार कमेटीमें स्थान स्वीकार करके फिर उसे बीचही में छोड़ दिया, यह अत्यन्त अदूरदर्शिता की। असेम्बलीमें के स्वराज्य पक्षका लक्ष्य निरर्थक ही सिद्ध हुआ। अतः अब जो प्रतिनिधि कौन्सिल में हिन्दू हितका रक्षण करेंगे उन्हींको चुनिए"।

मार्च सन् १९३१ ई० में कानपुरमें हिन्दू मुसलमानोंमें बड़ा दङ्गा हुआ। उसके बाद तुरन्त ही २१ अप्रैल सन् १९३१ ई० को कानपुरमें हिन्दू-मुसलमानोंकी एक भारी खुली सभा हुई। उसमें भाषण करते हुए पण्डितजीने कहा:—

"मैं मनुष्यताका पूजक हूँ। मनुष्यत्वके आगे मैं जातपाँत नहीं मानता। कानपुरमें जो दङ्गा हुआ उसके लिये हिन्दू या मुसलमान इनमें से एक ही जाति जवाबदेह नहीं है। जवाबदेही दोनों जातियों पर समान है। मेरा आपसमें आग्रहपूर्वक ऐसा कहना है कि ऐसी प्रतिज्ञा कीजिए कि अब भविष्यमें अपने भाइयोंसे ऐसा युद्ध नहीं करेंगे। वृद्ध, बालक व स्त्रियों पर हाथ नहीं छोड़ेंगे। मन्दिर अथवा मसजिद नष्ट करनेसे धर्मकी श्रेष्ठता नहीं बढ़ती। ऐसे दुष्कर्मों से परमेश्वर प्रसन्न नहीं होता। आज आप लोगोंने आपसमें लड़कर जो अत्याचार किए हैं उसका जवाब आपको ईश्वरके सामने देना होगा। हिन्दू और मुसलमान इन दोनों में जबतक प्रेमभाव नहीं उत्पन्न होगा तबतक किसीका भी कल्याण नहीं होगा। एक दूसरेके अपराध भूल जाइए और एक दूसरेको क्षमा कीजिए। एक दूसरेके प्रति सद्भाव और विश्वास बढ़ाइए। गरीबोंकी सेवा कीजिए, उनका प्रेमसे आलिङ्गन कीजिए और अपने कृत्यों का पश्चात्ताप कीजिए।"

शुद्धि

शुद्धिपर मालवीयजीने कहा है:—

"इस देशमें आज सात करोड़ मुसलमान दिखाई दे रहे हैं। उनमें से बहुत थोड़ेसे विदेशसे आए हुए हैं। अरब और अफ़गानिस्तानसे अधिकसे अधिक पचास लाख मुसलमान यहाँ आए होंगे। बाक़ी सब यहींके बनाए हुए मुसलमान हैं। कोई मुसलमान यदि ईसाई हो जाय तो फिर क़लमा पढ़कर वह मुसलमान हो जा सकता है। परन्तु हिन्दू ऐसा नहीं कर सकते। यह बड़े दुःख की बात है।

इस प्रकार क्रमशः घटते-घटते आज हमलोगों में से साढ़े छः करोड़ हिन्दू परधर्ममें चले गए। हिन्दुओंको मुसलमान बनानेके लिए नाना प्रकार के उपायोंसे काम लिया जाता है। मलकाना

साध्य न होगा। गीता प्रत्यक्ष भगवद्वाणी है। यह वेद ही के समान पूज्य और फलप्रद है। मानवजातिके कल्याणके लिये उसमें सब कुछ है। आप लोग प्रयत्न करें कि घर-घरमें गीताका प्रचार हो। प्रत्येक हिन्दूके पास गीताकी पोथी रहे। शूद्र और अस्पृश्य भी उसका पाठ करें और अल्प प्रयाससे ही वेदोंका मुख्य तत्व प्राप्त करें। ईसाई लोग एक-एक आनेमें बाइबिल बेचकर स्वधर्मका प्रचार करते हैं। हिन्दू धर्मका हृदय गीतामें है। आप लोग उसके सस्ते संस्करण निकालकर प्रत्येक हिन्दूके हाथमें वेदोंका सार रख दें। उसे पाकर फिर किसी ग्रन्थकी चाह न रहेगी।"

क्षुब्ध समुद्रपर तेल पड़ गया। बिड़लाजीने गीताके सस्ते संस्करणकी एक लाख प्रतियाँ बाँटनेकी घोषणाकी। देखते-देखते आँधी थम गई।

२७ तथा २८ दिसम्बर सन् १९२९ ई० को बेलगाँवकी हिन्दू महासभा हुई और मालवीयजी ही सभापति बनाए गए। यह सभा बेलगाँव काँग्रेसके साथ ही हुई थी और इसमें गान्धीजी, लाला लाजपतराय, देशबन्धु चित्तरञ्जनदास, पण्डित मोतीलाल नेहरू, स्वामी श्रद्धानन्द, श्री केलकर, श्रीसत्यमूर्ति, मौलाना मुहम्मद अली और शौक़त अली, डाक्टर मुञ्जे आदि सभी भारतीय नेता उपस्थित थे।

इसके बाद २९ दिसम्बर सन् १९३५ ई० को पूनाके तिलक स्मारक हौलमें पूज्य मालवीयजीके सभापतित्वमें हिन्दू महासभाका सत्रहवाँ अधिवेशन बड़े धूम-धामसे हुआ। हिन्दू सेवासमिति पूनाने उन्हें अभिवादन-सम्मान दिया।

इस अधिवेशनको सुन्दरतम बनानेमें महाराष्ट्र के हिन्दुओंने कुछ उठा न रक्खा। इस अवसरपर मालवीयजीने जो सभापतित्व पदसे भाषण दिया वह कम महत्वका नहीं है। इसीमें मन्त्र-दीक्षाका महत्व, शारीरिक तथा सैनिक शिक्षाकी आवश्यकता, अछूतोद्धार, मन्त्रदीक्षा और सार्वजनिक शिक्षा आदि पर उन्होंने महत्वपूर्ण प्रकाश डाला।

हिन्दू-मुस्लिम एकता

बहुतसे लोग समझते हैं कि मालवीयजी मुसलमानोंसे द्वेष रखते थे पर हम उनका ध्यान मालवीयजीके उस वक्तव्यकी ओर आकर्षित करना चाहते हैं जो उन्होंने २८ जून सन् १९३२ ई० को लाहौरमें अपने भाषणमें कहा था:—

"हिन्दू बलवान होकर मुसलमानोंको तकलीफ़ दें, ऐसी मेरी स्वप्नमें भी कल्पना नहीं है। मेरे मनमें ऐसा विचार आया कि मैं धर्मच्युत हुआ समझिए। मेरी सदा ऐसी इच्छा है कि हिन्दू और मुसलमान शक्तिमान हों और जगत्‌के अन्य समाजोंके साथ खड़े होनेके लायक बनें। हिन्दू और मुसलमान एकत्र हों और उनके अखाड़े भी एक ही हों, ऐसी मेरी प्रबल इच्छा है। गामा और गुलामने परदेशी पहलवानोंको चित किया, इसका आनन्द हिन्दुओंको नहीं हुआ, ऐसा तो कोई नहीं कह सकता। हिन्दुओंकी अपेक्षा मुसलमानोंको उस जीतका सुख अधिक हुआ, यह बात भी नहीं कही जा सकती।

"समाजमें ऐक्य स्थापन करना यह स्वराज्य सोपान चढ़नेकी पहली सीढ़ी है। दोनों समाजोंका सम्बन्ध इतना दृढ़ होना चाहिए कि उसे कोई भी तोड़ न सके। इस भारतवर्षका नागरिक होना एक बड़े सौभाग्यकी बात है। हिन्दू और मुसलमान दोनोंको ऐसा निश्चय करना चाहिए कि कैसा भी प्रसंग आवे, हम आपसमें धर्म अथवा मतके लिये कभी न झगड़ेंगे। भगनी, माता व कन्या इनकी और सम्मान भरी दृष्टिसे देखना चाहिये आज जो अपनी दुर्दशा हो रही है वह न हो, इस विषयमें अधिक दक्ष रहना चाहिए। दूसरेका अनिष्ट चिन्तन नहीं करेंगे व दूसरेका अकल्याण नहीं करेंगे, ऐसा निश्चित किया कि ऐक्य स्थापन हुआ ही समझिए।

"मेरा अपने धर्म पर दृढ़ विश्वास है, परन्तु परधर्मका अपमान करनेकी कल्पना मेरे मनको छू

तक नहीं गई। किसी गिरजाघर अथवा मसजिदके पाससे जब मैं जाता हूँ तब मेरा मस्तक अपने आप झुक जाता है। जब कि परमेश्वर एकही है तो लड़नेका कारण क्या? भूमि एक, देश एक, वायु एक, ऐसी परिस्थिति रहते हुए भी आपसमें दंगे टण्टोंका होना, इससे बढ़कर और आश्चर्यकी बात क्या हो सकती है। हमारा रक्षण विदेशी सैन्य करें यह बड़ी लज्जाकी बात है। पाठशालाओंमें सैनिक शिक्षण देना चाहिये और गाँव-गाँव तथा मुहल्ले-मुहल्लेमें नगर रक्षणका बन्दोवस्त होना चाहिये।"

१४ अप्रैल, सन् १९२९ ई० को लखनऊमें अयोध्या हिन्दू परिषद्का अधिवेशन भाई परमानन्दजीकी अध्यक्षतामें हुआ। उसमें भी मालवीयजीने भाग लिया और उस अवसर पर पं० मालवीयजीने इस आशयका व्याख्यान दिया था:- बहनों और भाइयो!

"यह विषम परिस्थिति सरकारने उत्पन्न की है। कांग्रेसमें बहुतसे लोग ऐसे हैं जो अपनेको हिन्दू कहनेमें शरमाते हैं। कांग्रेस केवल मुट्ठीभर लोगोंकी संस्था नहीं है। आजकल उसमें स्वराज्य पक्षका प्राबल्य है। उसका मत समझदार मनुष्योंके पालने योग्य नहीं है। कांग्रेस पक्षके लोग सरकारका विरोध करनेके लिए कौन्सिलमें गए। परन्तु वे अपने ध्येयका संरक्षण नहीं कर सके। श्री पटेलने अध्यक्ष-पद स्वीकार किया व पण्डित नेहरूजीने स्कीम कमेटीमें जगह ली। इस प्रकार विरोधकी बात समूल नष्ट हो गई। पं० नेहरूने एक बार कमेटीमें स्थान स्वीकार करके फिर उसे बीचही में छोड़ दिया, यह अत्यन्त अदूरदर्शिता की। असेम्बलीमेंके स्वराज्य पक्षका लक्ष्य निरर्थक ही सिद्ध हुआ। अतः अब जो प्रतिनिधि कौन्सिल में हिन्दू हितका रक्षण करेंगे उन्हींको चुनिए"।

मार्च सन् १९३१ ई० में कानपुरमें हिन्दू मुसलमानोंमें बड़ा दङ्गा हुआ। उसके बाद तुरन्त ही ११ अप्रैल सन् १९३१ ई० को कानपुरमें हिन्दू-मुसलमानोंकी एक भारी खुली सभा हुई। उसमें भाषण करते हुए पण्डितजीने कहा:—

"मैं मनुष्यताका पूजक हूँ। मनुष्यत्वके आगे मैं जातपाँत नहीं मानता। कानपुरमें जो दङ्गा हुआ उसके लिये हिन्दू या मुसलमान इनमें से एक ही जाति जवाबदेह नहीं है। जवाबदेही दोनों जातियों पर समान है। मेरा आपसमें आग्रहपूर्वक ऐसा कहना है कि ऐसी प्रतिज्ञा कीजिए कि अब भविष्यमें अपने भाइयोंसे ऐसा युद्ध नहीं करेंगे। वृद्ध, बालक व स्त्रियों पर हाथ नहीं छोड़ेंगे। मन्दिर अथवा मसजिद नष्ट करनेसे धर्मकी श्रेष्ठता नहीं बढ़ती। ऐसे दुष्कर्मों से परमेश्वर प्रसन्न नहीं होता। आज आप लोगोंने आपसमें लड़कर जो अत्याचार किए हैं उसका जवाब आपको ईश्वरके सामने देना होगा। हिन्दू और मुसलमान इन दोनोंमें जबतक प्रेमभाव नहीं उत्पन्न होगा तबतक किसीका भी कल्याण नहीं होगा। एक दूसरेके अपराध भूल जाइए और एक दूसरेको क्षमा कीजिए। एक दूसरेके प्रति सद्भाव और विश्वास बढ़ाइए। गरीबोंकी सेवा कीजिए, उनका प्रेमसे आलिङ्गन कीजिए और अपने कृत्यों का पश्चात्ताप कीजिए।"

शुद्धि

शुद्धिपर मालवीयजीने कहा है:—

"इस देशमें आज सात करोड़ मुसलमान दिखाई दे रहे हैं। उनमेंसे बहुत थोड़ेसे विदेशसे आए हुए हैं। अरब और अफ़गानिस्थानसे अधिकसे अधिक पचास लाख मुसलमान यहाँ आए होंगे। बाकी सब यहींके बनाए हुए मुसलमान हैं। कोई मुसलमान यदि ईसाई हो जाय तो फिर कलमा पढ़कर वह मुसलमान हो जा सकता है। परन्तु हिन्दू ऐसा नहीं कर सकते। यह बड़े दुःख की बात है।

इस प्रकार क्रमशः घटते-घटते आज हमलोगों मेंसे साढ़े छः करोड़ हिन्दू परधर्ममें चले गए। हिन्दुओंको मुसलमान बनानेके लिए नाना प्रकार के उपायोंसे काम लिया जाता है। मलकाना
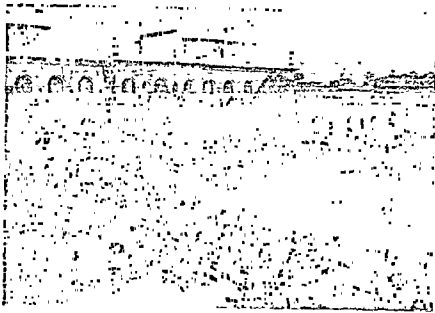
सन् १९२३ ई० को काशीमें सेण्ट्रल हिन्दू स्कूलके काशीनरेश हालमें हिन्दू महासभा का अधिवेशन।

में कौन्सिलोंकी लड़ाई न लड़नी पड़ती। सहनशीलताकी भी एक सीमा होती है।

मालवीयजीसे भी कुछ लोग इसीलिये रुष्ट थे कि वे हृदयसे हिन्दू थे। और यदि मालवीयजी हृदयसे देश और जाति दोनोंके परम सेवक न होते तो संभवतः वर्त्तमान नेता उन्हें भी दूधकी मक्खी बना देते, किन्तु उनका अग्नि विस्फोट मालवीयजीके स्वभाव-रूपी शीतल विस्तृत अथाह महासागरमें उठकर स्वयं विलीन हो जाता था। हिन्दू जाति मालवीयजीकी कितनी ऋणी है और रहेगी, इसका उत्तर भविष्य देगा। पर संक्षेपमें हम पूछते हैं कि हिन्दुओंको किस विपत्तिमें मालवीयजीका सहारा नहीं मिला, उनकी किस संस्थाको मालवीयजीका पुनीत आशीर्वाद नहीं मिला और उनके किस आन्दोलनको मालवीयजीका नेतृत्व नहीं मिला? बस इसका उत्तर ही हमारा वक्तव्य है।

इधर संवत् १९०३ में आश्विन कार्तिकमें मुसलिम लीगके नेताओंकी गुंडईके फलस्वरूप नोआखालीमें जो हिन्दुओंकी हत्या हुई, स्त्रियोंके साथ पैशाचिक दुर्व्यवहार हुआ घर जलाए गए और लोमहर्षण अत्याचार हुए उन्हें वृद्ध मालवीयजी सहन न कर सके और उसीकी करुण व्यथा लेकर ही वे समाप्त हो गए। इस घटनापर उन्होंने जो अमर वक्तव्य दिया है वह हिन्दुओं के लिये निर्भय आदेश, अमर सन्देश और दिव्य प्रेरणा है। सन्देश इस प्रकार है—

उसमें परस्पर भाई-भाईकी तरह प्रेम करना चाहिए और प्रत्येक हिंदूके प्रति सहनशील बनना चाहिए, परन्तु उन मुसलमानोंके प्रति सहनशील बिलकुल नहीं होना चाहिए, जो उन्हें शान्तिके साथ रहने देना नहीं चाहते।

मैं इस प्रकारकी प्रेरणा करना अपना कर्तव्य समझता हूँ, क्योंकि इस समय मानवता दाँवपर लगी है। हिंदू-संस्कृति और हिंदू-धर्म खतरेमें है। परिस्थिति संकटापन्न है और ऐसा समय आ गया है कि हिंदू एक होकर सेवा तथा सहायताके साधनोंको परिपुष्ट करें और अपनी रक्षा तथा अपने स्वत्वको प्रभावशाली बनावें।

समूचे भारतवर्षमें अनेकों मुसलमान-नेताओंने अपने लेखों और आडम्बरपूर्ण व्याख्यानोंमें जहर उगला है। मुस्लिम-लीगके नेताओं, मि० गजनफर अली खाँ तथा दूसरोंने अपने लेखों तथा व्याख्यानोंमें जंगली और दायित्वशून्य भाषामें हिंदुओंको चुनौती दी है। बङ्गालकी घटनाओं पर एक भी मुस्लिम-लीगी नेताने घृणा प्रगट नहीं की है। बल्कि इन बर्बर तथा पाशविक घटनाओंपर वे एक आँतरिक आनन्दका अनुभव करते हैं। मैं उनकी-सी विषघुली स्याहीमें अपनी लेखनी डुबोकर कुछ नहीं लिखना चाहता। मैं अपने हिंदू भाइयोंसे यह नहीं कहता कि जहाँ मुसल्मान कमजोर या कम हों, वहाँ वे आक्रमण करें। पर हिंदुओंसे मैं अवश्य कह रहा हूँ कि जहाँ वे दुर्बल हैं, वहाँ सबल बनें, और जहाँ उनकी संख्या कम हो वहाँ सफलतापूर्वक अपनी रक्षा करें। हिंदू बहुसंख्यक प्रान्तोंमें हिंदुओंने अल्पसंख्यकोंके अधिकारोंका कभी विरोध नहीं किया, बल्कि उनके अधिकारोंकी गारंटी दी है; हालाँकि वे देखते आ रहे हैं कि मुस्लिम-बहुसंख्यक प्रान्तोंमें न केवल हिंदुओंके अधिकारोंकी भीषण एवं क्रूर अवहेलना की जाती है बल्कि उनके जीवन, धन और धर्मपर भी आघात होता है। सामाजिक संघटनके आधारपर निर्मित अराजनीतिक संस्थाओंके अभावने राष्ट्रीयताके मोर्चेको बहुत दुर्बल बना दिया है और खुश करनेकी राजनीतिक नीतिको तथा मुस्लिम-लीगकी असम्भव माँगोंको जन्म दिया है।

केवल धर्म और संस्कृतिके नामपर ही नहीं, अपनी प्यारी जन्मभूमिके नामपर भी मैं समस्त हिंदुओंसे अपील करता हूँ कि यदि वे भारतवर्षमें चिरकालके लिए शान्ति चाहते हैं और ऐसा सन्देश देना चाहते हैं कि जिसको मुसल्मान तथा अन्य जाति एवं धर्मके लोग सुनें तो वे एक हो जायँ और अपनी रक्षा करें। सन्देश यह हो कि—'जैसे वे पहले रह चुके हैं, अब भी वे एक साथ, एक ही भूमिपर, रहना चाहते हैं। और यदि वे हिंदुओंके साथ शान्तिसे रहना चाहते हैं तो उन्हें निश्चय ही हिंदुओंके धर्मका आदर करना पड़ेगा, वे हिंदुओंके पूजागृहों-मन्दिरोंको भ्रष्ट नहीं कर सकेंगे और 'धार्मिक स्वतन्त्रता, जीवनकी पवित्रता एवं स्त्रियोंके सतीत्वका उन्हें अवश्य सम्मान करना पड़ेगा।'

सपना

इतिहासके जन्मसे बहुत पहलेकी बात है जब सारे संसार के मनुष्य पेड़ोंके खोखलों और मांदों में रात काटते थे, जङ्गली फल और जानवरों का भोजन करते थे और इशारों में बातें किया करते थे, उस समय हिमालयके पवित्र जलसे सिंचे हुए आर्य्यावर्तमें पञ्चनद और गङ्गा-यमुनाके दोआवेमें सामवेदका गान होता था, गौओं का पालन होता था, खेती होती थी, अनेक धान्य पैदा किए जाते थे और इतना ही नहीं, यहाँ के लोग सृष्टि रचने वाले परमेश्वरकी भी खोजमें लगे हुए थे और उसे पा भी चुके थे। हमने संसारकी सभी जातियोंकी सभ्यताका प्रभात देखा पर हमारी सभ्यताका प्रभात किसने देखा? ऋग्वेद हमारी सभ्यताका सबसे पुराना साक्षी है पर जिस सभ्यताका उसमें वर्णन किया गया है वह एक-दो सदीकी उपज नहीं है, निरन्तर कई सदियों के निरन्तर प्रकाशने उसे पक्का बनाया था। पके हुए आमको हाटमें देखकर हमें समझ लेना चाहिए कि यह कई महीने पहले रसालकी डाल में भौंरोंसे घिरा हुआ एक फूल रहा होगा। इसी प्रकार वैदिक सभ्यता भी—जिसमें अध्यात्मका पूरा विकास हो चुका था—कई सहस्र वर्षोंकी कमाई रही होगी।

इस सभ्यताके प्रकाशकी ओर वे सभी देश खिंचे चले आए, जिन्हें हमने ही धोती पहनना, बात करना और हिलमिल कर रहना सिखाया। भारत, कला और विद्याओंकी खान था। कुछ नहीं तो चौंसठ कलाओं, सहस्रों उपकलाओं और चौदह विद्याओंका तो पूरा पता मिलता ही है। भारत संसारका गुरु बन गया। वह विद्या का ऐसा फुहारा बन गया जहाँ सारे संसारके प्यासे लोग आ-आकर अपनी प्यास बुझाने लगे। पर भारतके सभी शिष्योंने अपने ही गुरुकी खबर लेनी शुरू कर दी। जिस हँड़ियामें पानी पिया उसीमें छेद कर दिया। भलमनसाहत क्या इसीका नाम था? जो इसकी महिमा समझते थे उन्होंने इसका भण्डार समेटा और अपने घर उठा ले गए, जिन्होंने इसके विद्याधनकी कद्र नहीं की वे इसके पुस्तकालयोंमें आग लगा गए। पर धन्य है भारतवासियोंकी वर्णाश्रमधर्म-प्रणाली को। समाजके एक ब्राह्मण वर्गने यह काम अपने ऊपर ले लिया और धनकी लिप्साको लात मार कर, सन्तोषका बाना पहनकर सारा ज्ञान पीढ़ी-दर-पीढ़ी आजतक बचाए रक्खा। इन्हें लोगोंने 'पाखण्डी' कहा, 'पोप' कहा, 'उन्नति के विरोधी' कहा और क्या क्या नहीं कहा पर ये लोग गालियाँ सहकर भी चुपचाप अपना काम करते आए, और आज जो हमें इतने ग्रन्थ मिल सके हैं उनका एकमात्र श्रेय इन्हीं ब्राह्मणोंको है जिनकी सम्पत्ति केवल एक जनेउ और एक धोती है।

इनके जनेऊ और इनकी चोटीकी रक्षा करने वाले क्षत्रिय अपनी तलवारें तोड़ चुके थे। जिनकी मूँछ सिंहकी भाँति ऊँची रहती थी उन्होंने अपनी बेटीयाँ अनार्योंको सौंप दी। जिनके सहारे पर ब्राह्मण, भारतकी सभ्यता इकट्ठी करते आए

उस कल्पनामें बनी हुई मूर्त्तिमें जान पड़ने लगी। फिर उसका स्वरूप बनना प्रारंभ हुआ और देखते-देखते काशीमें गङ्गाजीके किनारे खेतों और अमराइयोंके बीचसे गेरुआ वस्त्र पहन-पहनकर वह कल्पना विशाल रूप धारण करके निकल आई। नालन्दा, तक्षशिला और विक्रमशिलाकी स्मृति लेकर। सभीने आँखें मलकर देखा। क्या सपना है? नहीं सपना कैसे हो सकता है। यही काशी हिन्दू विश्वविद्यालय है। कलतो नहीं था—सचमुच नहीं था—रात-रातमें बन गया है? हाँ, रात-रातमें बन गया। जब सारा संसार अँधेरी रातमें चादर तानकर सो रहा था उस समय रातको अपनी नींद हराम कर अपने पसीनेके गारेसे एक आदमीने अपने कुछ मित्रोंसे ईंट-चूना माँगकर इसको बनाया है। संसारमें बहुतसी आश्चर्य-जनक वस्तुएँ हैं पर यह सबसे बड़ा आश्चर्य है। बहुतसे वनस्पति-विशारदोंका दावा है कि वे एक दिनमें एक पौदेको एक हाथ बड़ा कर सकते हैं—यन्त्रसे या बिजलीसे। पर जिसके पास यन्त्र भी नहीं हो और पैसा भी पास न हो वह यदि गेहूँ और चनेके खेतोंमेंसे या हरी भरी अमराइयोंमेंसे इतने थोड़े समय में एक इतना बड़ा विश्वविद्यालय पैदा कर दे—भला कौन वैज्ञानिक है जो उससे होड़ करेगा।
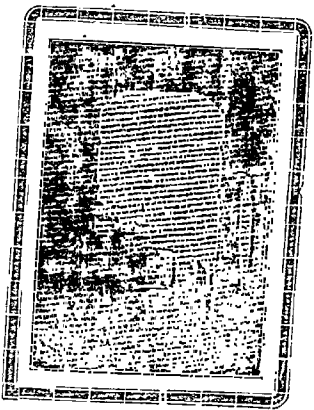
फ़कीर क़ौमके आए हैं झोलियाँ भर दो

ईस्ट इण्डिया कम्पनीका राज हिन्दुस्थानमें पैसा पैदा करनेके लिये स्थापित हुआ था, कुछ राज करने या यहाँका प्रबन्ध करनेके लिये नहीं। भारतका भाग्य उस समय भँवरमें पड़ चुका था। उसने विदेशियोंसे गाँठ जोड़नेमें ही सम्भवतः भलाई समझी। धीरे-धीरे ईस्ट इण्डिया कम्पनीका जब सिक्का चलने लगा तब उसने समझा कि यहाँके लोगोंको प्रसन्न किये बिना अधिक दिन न जी सकेंगे। सन् १७८२ ई० कलकत्तेमें मुसलमानोंका कलकत्ता मदरसा खुला और अरबी पढ़ाई जाने लगी। उसीके पीछे सन् १७९१ ई० में काशीमें संस्कृत कौलेजकी नींव पड़ी। पर इससे उनका उद्देश्य सफल होता दिखाई न दिया। उन्हें ने अंग्रेज़ी पढ़ानेपर बल दिया। सन् १८३५ ई० में मेकौले महोदयने अंग्रेज़ी शिक्षाके पक्षमें निर्णय दे दिया। चारों ओर स्कूल और कौलेज खुलने लगे। सन् १८५४ ई० में सर चोर्लस वुडने योजना निकाली, जिसके अनुसार कलकत्ता विश्वविद्यालय स्थापित हुआ। सन् १८५८ ई० में बम्बई और मद्रासमें विश्वविद्यालय स्थापित कर दिए गए। सन् १८८८ ई० में शिक्षा कमीशन बैठा और लौर्ड लिए। पर सन् १९१७ ई० में कलकत्ता युनिवर्सिटी कमीशनका शुभागमन हुआ और ढाकामें शिक्षा विश्वविद्यालय स्थापित हो गया। शेष विश्वविद्यालय परीक्षा ही लेते रहे।

हाँ, तो मालवीयजीके मनमें प्रयागसे काशी-तक गङ्गाजीके किनारे-किनारे एक ऐसा आश्रम बननेकी धुन थी जहाँ भारतीय युवक अपने चरित्रका सुधार करें और विद्या सीखें। इनके मित्र बाबू गङ्गाप्रसाद वर्मा और पंडित सुन्दरलाल इनके परामर्शदाता थे। पण्डित सुन्दरलाल के कहनेसे यह विचार बदल गया। प्रयागके पुराने निवासियोंमेंसे बहुतों को वे दिन स्मरण होंगे जब मालवीयजी और स्वर्गीय पण्डित सुन्दरलाल घोड़े-गाड़ीपर सन्ध्याको घूमने निकलते थे और कभी-कभी बड़ी देर तक घूमते रहते थे। भावी विश्वविद्यालयका बहुतसा मानचित्र इसी सैर सपाटेमें बना था और देश तथा नगरकी न जाने कितनी समस्याएँ उसी समय सुलझाई गई थीं।

कौलेज़की भी उन्नति हुई। महाराजा बलरामपुरने एक गुरुकुलके समान नये शिक्षालयके स्थानके लिये तीन लाख रुपया दिए। ताता वैज्ञानिक अन्वेषण संस्था भी धीरे-धीरे अस्तित्वमें आ रही थी। केवल लौर्ड कर्जनके विधानके अनुसार सरकारी सहयोगसे विश्वविद्यालयों अथवा कौलेजोंमें उच्च शिक्षाके कार्यको प्रोत्साहन करना और लाभ पहुँचाना कदापि सम्भव न था।

सन् १९०४ ई० में, पहले-पहल काशी नरेश हिज़ हाइनेस महाराजा सर प्रभुनारायण सिंहके सभापतित्वमें मिण्ट हाउस काशीमें एक सभा हुई और पहले उसमें मालवीयजीने हिन्दू विश्वविद्यालयका ब्यौरेवार प्रस्ताव रक्खा। उस सभामें बहुतसे ऐसे लोग थे जो उस प्रस्तावके सफल होनेमें सन्देह करते थे, इनमें उस सभाके सभापति काशी नरेश स्वयं थे। इस बातको एक बार स्वयं उन्होंने सेण्ट्रल हिन्दू कौलेज़में भाषण देते हुए कहा भी था—"जब हमारे माननीय मित्र पण्डित मदनमोहन मालवीयजीने—जिन्होंने इस पवित्र कार्यका सूत्रपात किया है, मुझसे पहले-पहल हिन्दू विश्वविद्यालयके स्थापित करनेके विचारको कहा, मुझे इस कार्यकी सफलतामें सन्देह था।" मनमें सन्देह करते हुए भी सभोंने उस प्रस्तावको स्वीकार कर लिया। अब तो मालवीयजीको बड़ा उत्साह मिला। नवम्बर, सन् १९०५ ई० के नवम्बरमें मालवीयजीने हिन्दू विश्वविद्यालयके लिये संन्यास ले लिया। संसार के कल्याणके लिये बुद्ध अपना राज्य और घर छोड़कर निकल पड़े। उसी वर्ष श्रीमान् गोपालकृष्ण गोखलेकी अध्यक्षतामें दिसम्बरमें, राष्ट्रीय महासभा होनेवाली थी। उससे पहले ही अक्तूबरमें 'प्रस्तावित विश्वविद्यालय' का विवरण छपवाकर भारतवर्षके राजा, महाराजा पण्डित, विद्वान् और नेताओंको भेजा गया। दिसम्बरमें काशीमें राष्ट्रीय महासभा हुई और उसी अवसर पर ३१ दिसम्बर सन् १९०५ ई० को बरारके श्री वी० एन्० महाजनी एम्० ए० के सभापतित्वमें काशीके टाउनहौलमें एक बड़ी भारी सभा हुई। सब धर्मोंके प्रतिनिधि, देश भरके प्रसिद्ध शिक्षा-प्रेमियोंके सामने यह योजना रक्खी गई। यहाँ भी हिन्दू विश्वविद्यालयकी योजनाका सबने स्वागत किया। पहली जनवरी सन् १९०६ ई० को वहीं कांग्रेसके पण्डालमें हिन्दू विश्वविद्यालय स्थापित करनेकी घोषणा हुई।

उसी समय सन् १९०६ ई० में २० से २९ जनवरी तक प्रयागमें परमहंस परिव्राजकाचार्य जगद्गुरु श्री स्वामी शङ्कराचार्यजीके सभापतित्व में सुप्रसिद्ध साधुओं तथा विद्वानोंकी सनातन धर्म महासभामें यह प्रस्ताव स्वीकार हो गया कि-

"१—भारतीय विश्वविद्यालयके नामसे काशी में एक हिन्दू विश्वविद्यालयकी स्थापनाकी जाय, जिसके निम्नाङ्कित उद्देश हों—

(अ) श्रुतियों तथा स्मृतियों-द्वारा प्रतिपादित वर्णाश्रम धर्मके पोषक सनातनधर्मके सिद्धान्तोंका प्रचार करनेके लिये धर्मके शिक्षक तैयार करना।

(आ) संस्कृत भाषा और साहित्यके अध्ययन की अभिवृद्धि।

(इ) भारतीय भाषाओं तथा संस्कृतके द्वारा वैज्ञानिक तथा शिल्पकला-सम्बन्धी शिक्षाके प्रचारमें योग देना।

२—विश्वविद्यालयमें निम्नांकित संस्थाएँ होंगी—

(अ) वैदिक विद्यालय—जहाँ वेद, वेदाङ्ग, स्मृति, दर्शन इतिहास तथा पुराणोंकी शिक्षा दी जायगी। ज्यौतिष-विभागमें एक ज्यौतिष-सम्बन्धी तथा अन्तरिक्ष विद्या-सम्बन्धी वेधशाला भी निर्मित की जाय।

(आ) आयुर्वैदिक विद्यालय—जिसमें एक प्रयोगशाला हो तथा वनस्पति-शास्त्रके अध्ययनके लिये एक उद्यान भी हो। एक सर्वोत्कृष्ट चिकित्सालय तथा पशु-चिकित्सालयकी स्थापना की जाय।

(इ) स्थापत्यवेद व अर्थशास्त्र—जिसमें तीन विभाग होंगे (१) भौतिक शास्त्र विभाग (२) प्रयोगों

फकीर कौमके आए हैं झोलियाँ भर दो

ईस्ट इण्डिया कम्पनीका राज हिन्दुस्थानमें पैसा पैदा करनेके लिये स्थापित हुआ था, कुछ राज करने या यहाँका प्रवन्ध करनेके लिये नहीं। भारतका भाग्य उस समय भँवरमें पड़ चुका था। उसने विदेशियोंसे गाँठ जोड़नेमें ही सम्भवतः भलाई समझी। धीरे-धीरे ईस्ट इण्डिया कम्पनीका जब सिक्का चलने लगा तब उसने समझा कि यहाँके लोगोंको प्रसन्न किये बिना अधिक दिन न जी सकेंगे। सन् १७८२ ई० कलकत्तेमें मुसलमानोंका कलकत्ता मदरसा खुला और अरबी पढ़ाई जाने लगी। उसीके पीछे सन् १७९१ ई० में काशीमें संस्कृत कौलेज्की नींव पड़ी। पर इससे उनका उद्देश्य सफल होता दिखाई न दिया। उन्होंने अंग्रेजी पढ़नेपर बल दिया। सन् १८३५ ई० में मेकौले महोदयने अंग्रेज़ी शिक्षाके पक्षमें निर्णय दे दिया। चारों ओर स्कूल और कौलेज् खुलने लगे। सन् १८५४ ई० में सर चार्लस वुडने योजना निकाली, जिसके अनुसार कलकत्ता विश्वविद्यालय स्थापित हुआ। सन् १८५८ ई० में बम्बई और मद्रासमें विश्वविद्यालय स्थापित कर दिए गए। सन् १८८८ ई० में शिक्षा कमीशन बैठा और लौर्ड रिपनने देखा कि विश्वविद्यालयोंकी संख्या कम है, उन्होंने लाहौरमें एक विश्वविद्यालय स्वयं सन् १८८२ ई० में स्थापित किया और सन् १८८७ ई० में उनके उत्तराधिकारी लौर्ड डिटनने प्रयागमें विश्वविद्यालय स्थापित कर दिया।

इन विद्यालयोंमें, जहाँ एक ओर सिरसे पैर-तक अंग्रेजी रङ्गमें रँगे लोग निकलते थे, वहाँ ऐसे भी लोग निकले, जो राजनीतिक दाव-पेंच समझने लगे और शासनमें स्थान पानेका जतन करने लगे। सरकारका माथा ठनका। चिरञ्जीवी लौर्ड कर्ज़नने अपने शासनमें इण्डियन युनिवर्सिटीज़ कमीशन (भारतीय विश्वविद्यालय जाँच समिति) बैठाया और सब विश्वविद्यालय सरकारने हथिया लिए। पर सन् १९१७ ई० में कलकत्ता युनिवर्सिटी कमीशनका शुभागमन हुआ और ढाकामें शिक्षा विश्वविद्यालय स्थापित हो गया। शेष विश्वविद्यालय परीक्षा ही लेते रहे।

हाँ, तो मालवीयजीके मनमें प्रयागसे काशी-तक गङ्गाजीके किनारे-किनारे एक ऐसा आश्रम बनानेकी धुन थी जहाँ भारतीय युवक अपने चरित्रका सुधार करें और विद्या सीखें। इनके मित्र बाबू गङ्गाप्रसाद वर्मा और पंडित सुन्दरलाल इनके परामर्शदाता थे। पण्डित सुन्दरलाल के कहनेसे वह विचार बदल गया। प्रयागके पुराने निवासियोंमें से बहुतों को वे दिन स्मरण होंगे जब मालवीयजी और स्वर्गीय पण्डित सुन्दरलाल घोड़े-गाड़ीपर सन्ध्याको घूमने निकलते थे और कभी-कभी बड़ी देर तक घूमते रहते थे। भावी विश्वविद्यालयका बहुतसा मानचित्र इसी सैर सपाटेमें बना था और देश तथा नगरकी न जाने कितनी समस्याएँ उसी समय सुलझाई गई थीं।

वह राष्ट्रीय शिक्षाका युग था। एक राष्ट्रीय शिक्षालयके लिये बनारसके रईस मुन्शी माधोलाल-ने तीन लाख रुपया दान दिया था। दक्षिणमें सर्व श्री तिलक, देशमुख, वैद्य तथा बीजापुरकरने 'समर्थ विद्यालय' स्थापित किया था। बहुतसे लोग राष्ट्रीय शिक्षाके लिये अपनी सेवाएँ अर्पित कर रहे थे। बनारसमें स्थापित होनेवाले राष्ट्रीय शिक्षा-लयमें सेवा करनेके लिये बहुतसे लोग तैयार हो चुके थे पर कौन जानता था कि उस छोटेसे बीजमें इतनी बड़ी सृष्टि छिपी है। नाभाके राजाने सिक्ख जातिको अमृतसर खालसा कौलेज्का सुधार करनेके लिये आमन्त्रित किया। बङ्गालमें राँचीके नए कौलेज्के लिये अच्छी निधियाँ दान की गईं। अलीगढ़ कौलेज के संरक्षक अपने कौलेज्को आवासात्मक विश्वविद्यालयमें परिणत करनेकी सोचने लगे। नवाब रामपुरकी सहायतासे बरेली

कौलेजकी भी उन्नति हुई। महाराजा बलरामपुरने एक गुरुकुलके समान नये शिक्षालयके स्थानके लिये तीन लाख रुपया दिए। ताता वैज्ञानिक अन्वेषण संस्था भी धीरे-धीरे अस्तित्वमें आ रही थी। केवल लौर्ड कर्जनके विधानके अनुसार सरकारी सहयोगसे विश्वविद्यालयों अथवा कौलेजोंमें उच्च शिक्षाके कार्य्यको प्रोत्साहन करना और लाभ पहुँचाना कदापि सम्भव न था।

सन् १९०४ ई० में पहले-पहल काशी नरेश हिज़ हाइनेस महाराजा सर प्रभुनारायण सिंहके सभापतित्वमें मिण्ट हाउस काशीमें एक सभा हुई और पहले उसमें मालवीयजीने हिन्दू विश्वविद्यालयका ब्यौरेवार प्रस्ताव रक्खा। उस सभामें बहुतसे ऐसे लोग थे जो उस प्रस्तावके सफल होनेमें सन्देह करते थे, इनमें उस सभाके सभापति काशी नरेश स्वयं थे। इस बातको एक बार स्वयं उन्होंने सेण्ट्रल हिन्दू कौलेजमें भाषण देते हुए कहा भी था—"जब हमारे माननीय मित्र पण्डित मदनमोहन मालवीयजीने—जिन्होंने इस पवित्र कार्यका सूत्रपात किया है, मुझसे पहले-पहल हिन्दू विश्वविद्यालयके स्थापित करनेके विचारको कहा, मुझे इस कार्यकी सफलतामें सन्देह था।" मनमें सन्देह करते हुए भी सभीने उस प्रस्तावको स्वीकार कर लिया। अब तो मालवीयजीको बड़ा उत्साह मिला। नवम्बर, सन् १९०५ ई० के नवम्बरमें मालवीयजीने हिन्दू विश्वविद्यालयके लिये संन्यास ले लिया। संसार के कल्याणके लिये बुद्ध अपना राज्य और घर छोड़कर निकल पड़े। उसी वर्ष श्रीमान् गोपाल-कृष्ण गोखलेकी अध्यक्षतामें दिसम्बरमें राष्ट्रीय महासभा होनेवाली थी। उससे पहले ही अक्तूबरमें 'प्रस्तावित विश्वविद्यालय' का विवरण छपवाकर भारतवर्षके राजा, महाराजा पण्डित, विद्वान् और नेताओंको भेजा गया। दिसम्बरमें काशीमें राष्ट्रीय महासभा हुई और उसी अवसर पर ३१ दिसम्बर सन् १९०५ ई० को बरारके श्री वी० एन० महाजनी एम्० ए० के सभापतित्वमें काशीके टाउनहौलमें एक बड़ी भारी सभा हुई। सब धर्मोंके प्रतिनिधि, देश भरके प्रसिद्ध शिक्षा-प्रेमियोंके सामने यह योजना रक्खी गई। यहाँ भी हिन्दू विश्वविद्यालयकी योजनाका सबने स्वागत किया। पहली जनवरी सन् १९०६ ई० को वहीं कांग्रेसके पण्डालमें हिन्दू विश्वविद्यालय स्थापित करनेकी घोषणा हुई।

उसी समय सन् १९०६ ई० में २० से २९ जनवरी तक प्रयागमें परमहंस परिव्राजकाचार्य जगद्गुरु श्री स्वामी शङ्कराचार्यजीके सभापतित्व में सुप्रसिद्ध साधुओं तथा विद्वानोंकी सनातन धर्म महासभामें यह प्रस्ताव स्वीकार हो गया कि-

"१—भारतीय विश्वविद्यालयके नामसे काशी में एक हिन्दू विश्वविद्यालयकी स्थापनाकी जाय, जिसके निम्नाङ्कित उद्देश हों—

(अ) श्रुतियों तथा स्मृतियों-द्वारा प्रतिपादित वर्णाश्रम धर्मके पोषक सनातनधर्मके सिद्धान्तोंका प्रचार करनेके लिये धर्मके शिक्षक तैयार करना।

(आ) संस्कृत भाषा और साहित्यके अध्ययन की अभिवृद्धि।

(इ) भारतीय भाषाओं तथा संस्कृतके द्वारा वैज्ञानिक तथा शिल्पकला-सम्बन्धी शिक्षाके प्रचारमें योग देना।

२—विश्वविद्यालयमें निम्नांकित संस्थाएँ होंगी—

(अ) वैदिक विद्यालय—जहाँ वेद, वेदाङ्ग, स्मृति, दर्शन इतिहास तथा पुराणोंकी शिक्षा दी जायगी। ज्योतिष-विभागमें एक ज्योतिष-सम्बन्धी तथा अन्तरिक्ष विद्या-सम्बन्धी वेधशाला भी निर्मित की जाय।

(आ) आयुर्वैदिक विद्यालय—जिसमें एक प्रयोगशाला हो तथा वनस्पति-शास्त्रके अध्ययनके लिये एक उद्यान भी हो। एक सर्वोत्कृष्ट चिकित्सालय तथा पशु-चिकित्सालयकी स्थापना की जाय।

(इ) स्थापत्यवेद व अर्थशास्त्र—जिसमें तीन विभाग होंगे (१) भौतिक शास्त्र विभाग (२) प्रयोगों

तथा अन्वेषणके लिये एक प्रयोगशाला और (३) मशीन तथा बिजलीका काम सीखनेवाले इञ्जीनियरोंकी शिक्षाके लिये यन्त्रालयकी स्थापना की जाय।

(ई) रसायन विभाग—जिसमें प्रयोगों और अन्वेषणोंके लिये प्रयोगशालाएँ तथा रासायनिक द्रव्योंके बनवानेकी शिक्षाके लिये यन्त्रालय स्थापित किया जाय।

(उ) शिल्पकला विभाग—जिसमें मशीनद्वारा व्यवहारमें आनेवाली नित्यप्रतिकी वस्तुएँ तैयार की जाँय। इस विभागमें भूगर्भशास्त्र खनिज तथा धातुशास्त्रकी शिक्षा भी सम्मिलित रहेगी।

(ऊ) कृषि विद्यालय—जहाँ प्रयोगात्मक तथा सैद्धान्तिक दोनों प्रकारकी शिक्षाएँ कृषिशास्त्रके नवीन अनुभवोंके अनुसार दी जाय।

(ए) गन्धर्ववेद तथा अन्य ललित कलाओंका विद्यालय।

(ऐ) भाषा विद्यालय—जहाँ अंग्रेजी, जर्मन तथा अन्य विदेशी भाषाएँ इस उद्देश्यसे पढ़ाई जाँय कि उनकी सहायतासे भारतीय भाषाओंका साहित्य-भण्डार नये रत्नोंसे परिपूर्ण हो तथा विज्ञानकलाके नवीन शोधों द्वारा उनके विकासमें अभिवृद्धि हो।

३. (अ) इस विश्वविद्यालयका धर्म-सम्बन्धी कार्य तथा वैदिक कौलेजका कार्य्य उन हिन्दुओंके अधिकारमें होगा जो श्रुति, स्मृति तथा पुराणोंद्वारा प्रतिपादित सनातनधर्मके सिद्धान्तोंके मानने वाले होंगे।

(आ) इस विश्वविद्यालयमें वर्णाश्रम धर्मके नियमानुसार ही प्रवेश होगा।

इ) इस विश्वविद्यालयके अतिरिक्त अन्य सब विद्यालयोंमें सब धर्मावलम्बियों तथा सब जातियोंका प्रवेश हो सकेगा तथा संस्कृत भाषाके अन्य शास्त्रार्थोंकी शिक्षा बिना जाति-पाँतिका भेद भाव किये सबको दी जायगी।

४—(अ) निम्नाङ्कित सज्जनोंकी एक समिति बनाई जाय जिन्हें अपने सदस्योंकी संख्या बढ़ानेका अधिकार हो, जो इस विश्वविद्यालयकी आयोजनाको कार्य्यरूपमें परिणत करनेके लिये आवश्यक उपाय काममें लावें, जिसके मन्त्री माननीय पण्डित मदनमोहन मालवीय हों।

(आ) बनारस टाउन हॉलकी सभामें जो समिति नियुक्त हुई थी उसके सदस्योंसे प्रार्थना की जाय कि वे समितिके भी सदस्य हो जाँय।

५—(अ) विश्वविद्यालयके लिये एकत्र किया हुआ समस्त धन काशीके माननीय मुन्शी माधोलालके पास भेजा जाय जो उसे 'बैङ्क आफ़ बङ्गाल, बनारस' में जमा कर दें, जब तक कि उपर्युक्त समिति इस संबन्धमें कोई और आज्ञा न दे।

(आ) इस विश्वविद्यालयके लिये आए हुए रुपयोंमेंसे तबतक कुछ भी धन व्यय न किया जाय जबतक कि विश्वविद्यालय समिति एक सङ्गठित संस्थाकी तरह रजिस्टर्ड न हो जाय और जबतक इसके नियम निश्चित न हो जाँय तबतक इसका व्यय सनातनधर्म महासभाके लिए आए यह धनमेंसे होना चाहिए।

यह भी सोचा गया विश्वविद्यालयका शिलारोपण तीस लाख रुपया एकत्र हो जानेपर अथवा एक लाख रुपया वार्षिक सहायताका वचन मिल जानेपर हो जायगा।

इन प्रस्तावोंको पढ़कर यह तो पता चल ही सकता है कि केवल बी० ए०, एम्० ए० की पढ़ाईके लिये ही विश्वविद्यालयकी योजना नहीं हुई थी, वरन् उसका उद्देश्य यह था—जहाँ एक विद्यार्थी शिल्पकला और यन्त्रकला सीखता हो वहाँ वह मशीनको ही सर्वशक्तिमान न समझ बैठे वरन् मनुष्योंके भाग्यका शासन करनेवाले उस परमात्माका भी स्मरण करे और मन, वचन तथा कर्मसे आदर्श हिन्दू बन जाय। पर उन्होंने व्यावहारिक और विशेषतया औद्योगिक तथा वैज्ञानिक शिक्षाको भी महत्वपूर्ण स्थान दिया था। पण्डितजीके शब्दोंमें यह बात और स्पष्ट हो जाती है—"रसायन तथा भौतिक शास्त्रमें योरोप तथा अमेरिकाने पिछले पचत्तर वर्षोंसे जो उन्नति की है तथा उनकी

(विज्ञानकी) सहायतासे धनोपार्जन करनेके साधनों में जो उन्नति हुई है, विशेषतया जो भाप तथा विद्युत्की सहायतासे औद्योगिक वस्तु तैयार करने तथा एञ्जिन चलानेके कारण हुई है उसे देखते हुए भारतवर्ष उन देशोंसे बहुत पीछे रह गया है, जहाँ प्रयोगों द्वारा विज्ञानका अध्ययन सामाजिक हित और सेवाके लिये होता है।"

यह प्रस्ताव पास हो गया पर अचानक सन् १९०५ ई० में ही भारतमें एक भूकम्प आया—उसने काँगड़ाको ही नहीं हिलाया वरन् देशकी आन्तरिक शान्ति भङ्ग कर दी, भारतमाताके बाएँ हाथके दो टुकड़े कर दिए। बेचारी भूखी, दुर्बल, अनाथ और पराधीन माता एक बार तड़फ उठी। दीनकी आहसे भगवान्की योगनिद्रा भी खुल जाती है। बस यही हुआ। एक बार देशमें ऐसी लहर उठी जैसे साँपके काटने पर उठा करती है। सन् १९०७ ई० का अभागावर्ष आया और अपने साथ बहुतसा बवंडर लेता आया। हिन्दू विश्वविद्यालयके कई पक्षपाती हिन्दुस्तानसे बाहर कर दिए गए या जेलमें ठूँस दिये गये। राजनीतिक बवंडरमें हिन्दू विश्वविद्यालयका नाम भुला दिया गया।

इधर श्रीमती एनी बेसेण्टके सेण्ट्रल हिन्दू कौलेज्का बड़ा नाम हो रहा था। बड़े बड़े त्यागी विद्वान् सेवा-भावसे वहाँ आकर पढ़ा रहे थे। श्रीमती एनी बेसेण्ट हिन्दूधर्म और संस्कृतिकी बड़ी पक्षपातिनी थीं और उन्होंने धर्मपर बहुतसी पुस्तकें भी लिखीं। धीरे-धीरे उन्होंने उस हिन्दू कौलेज्को 'युनिवर्सिटी' बनानेका विचार किया, जिसके अन्तर्गत देशके बहुतसे कौलेज् रहें और सब जगह यहाँकी परीक्षाका केन्द्र रहे। सन् १९०७ ई० में उन्होंने कई प्रभावशाली भारतवासियोंके हस्ताक्षर कराकर 'युनिवर्सिटी औफ़ इण्डिया' स्थापित करनेके लिये एक प्रार्थनापत्र भारत सरकारके पास 'रौयल चार्टर' के लिये भेज दिया। इधर सनातनधर्म महामण्डलने भी दरभङ्गा-नरेश स्वर्गीय माननीय महाराजा सर रामेश्वरसिंह बहादुर के० सी० आई० ई० के नेतृत्वमें एक विश्वविद्यालय स्थापित करनेका प्रस्ताव किया। ये तीनों धाराएँ अलग-अलग बहती रहीं पर तीनों भगवान् विश्वनाथजीकी जटाओंमें ही रहना चाहती थीं।

सन् १९११ ई० के अक्तूबर महीनेमें माननीय महाराजा रामेश्वरसिंह बहादुर दरभङ्गानरेशने अपने विश्वविद्यालयकी योजनाको भी हिन्दू विश्वविद्यालयसे मिला दिया और ये दोनों महानुभाव इस सम्बन्धमें लोर्ड हार्डिङ्गसे मिले। उन्होंने उसे बहुत पसंद किया और भारत-सरकारसे पूरी सहायताका वचन दिलाया।

बहुत दिनोंतक मालवीयजी और एनी बेसेण्ट के पत्र व्यवहार होते रहे, पर अप्रैल सन् १९११ ई० में श्रीमती एनी बेसेण्ट प्रयागमें मालवीयजीसे मिलीं और ये तीनों धाराएँ एक हो गईं। प्रयागके बहुतसे लोगोंने मालवीयजीसे बहुत आग्रह किया कि आप प्रयागके रहने वाले हैं, प्रयागमें ही विश्वविद्यालय बनाइए। किन्तु उन्होंने कहा कि काशी सिद्धपीठ है, विद्याका केन्द्र है. विश्वविद्यालय वहीं बनना चाहिए और वहीं बनेगा।

हिन्दू कौलेज्के ट्रस्टियोंमें इन्हीं दिनों 'कृष्णमूर्त्तिको लेकर एक बखेड़ा खड़ा हो गया था। हिन्दू विश्वविद्यालयकी चर्चा उठकर फिर बैठ चुकी थी इसी बीच सन् १९०९ ई० में अलीगढ़ मुस्लिम युनिवर्सिटी बननेकी बात पक्कीसी हो गई।

'हम इधर बैठे रहे अग्यार बाजी ले गए'।

हिन्दू विश्वविद्यालयकी भनक फिर कानोंमें पड़ने लगी। मालवीयजी उसका नया स्वरूप लेकर फिर प्रकट हुए। उन्होंने पण्डित सुन्दरलालजीको मन्त्री बनानेका बड़ा जतन किया पर सब बेकार हुआ क्योंकि पण्डित सुन्दरलाल नक्षत्रकी गति देखकर चलना चाहते थे। सौर मण्डलसे अलग होकर धूम्रकेतु बनकर चलनेका साहस होते हुए भी वे अपनी कक्षा नहीं छोड़ना चाहते थे। तब मालवीयजीने अपने पैरोंका सहारा लिया और लक्ष्मीपतियोंके विशाल नगर कलकत्तेमें जा पहुँचे।

प्रयागके इस धवल ब्राह्मणकी एक हाँकपर कलकत्तेकी लक्ष्मी दोनों हाथोंमें सोनेका कलश लेकर आई और जिस झोलेमें यह ब्राह्मण अपने देशकी करुण कथा सुनाकर आँसू बरसा रहा था उसमें उसने सोना उड़ेलना शुरू किया। इन्हीं दिनों उस समयके बड़े लाटके शिक्षामन्त्री सी हारकोर्ट बटलर मालवीयजीसे मिले और बात-चीतके सिलसिलेमें स्पष्ट कह दिया कि "यदि इस संस्थामें मातृ-भाषा द्वारा पढ़ानेकी व्यवस्था रही तो उसमें सरकारसे आप कोई आशा न रखियेगा। उन्होंने यह भी जतला दिया कि "जिस समय-तक आप अंग्रेज़ीमें लिखते, बोलते, पढ़ते, पढ़ाते हैं तबतक तो हमें शान्ति रहती है, क्योंकि उस समयतक हम आपकी सब बातों और चालोंको भली भाँति समझ सकते हैं और उसे सँभाल सकते हैं, पर जिस समय आप अपनी भाषामें काम करना आरम्भ कर देते हैं तब उसका समझना हमारे लिये कठिन हो जाता है। इसलिये मातृ-भाषाके द्वारा शिक्षा देनेकी अनुमति सरकारसे किसी दशामें नहीं मिल सकती।" मालवीयजी बटलर साहबका संकेत ताड़ गए और मातृभाषाके द्वारा शिक्षा देनेकी बात उस समय पी गए,

इन्हीं दिनों श्रीमती एनी बेसेण्टके भी तीन व्याख्यान भारतीय विश्वविद्यालयके सम्बन्धमें कलकत्तेमें हुए। इसके बाद एक सार्वजनिक सभामें हिन्दू विश्वविद्यालयकी घोषणा की गई। कलकत्तेमें जो आर्थिक सहायताका वचन मिला था वह प्रकट किया गया और प्रायः पाँच लाखका वचन मिला और बहुतसा रुपया नकद भी मिला। मालवीयजीके साथ उनके लँगोटिया यार बाबू गङ्गाप्रसाद वर्मा, पण्डित गोकर्णनाथ मिश्र, मुन्शी ईश्वरशरण और बाबू शिवप्रसाद गुप्त भी हो लिए। हिन्दू विश्वविद्यालयकी मथानी लेकर इन लोगोंने देशको मथना शुरू कर दिया। इस यात्रामें बड़ी बड़ी घटनाएँ हुईं।

मुजफ्फरपुरमें एक भिक्षा माँगनेवाली भङ्गिनने अपने दिन भरकी कमाई, इस यज्ञ-वेदीपर समर्पण कर दी। इसी तरह एक व्यक्तिने बदनपरकी एक फटी कमीज, उतारकर प्रदान कर दी। इन चीज़ोंको नीलाम करनेपर सैकड़ों रुपये मिले थे और ये वस्तुएँ भी विश्वविद्यालयको वापस कर दी गई थीं कि ये उसके संग्रहालयमें, विवरणके साथ सुरक्षित रक्खी जावें। यहीं मुजफ्फरपुरमें एक बङ्गाली महोदयने पाँच हजार रुपया दान किया था और फिर उनके घरपर जानेपर उनकी पत्नीने अपना बहुमूल्य सोनेका कङ्गन मालवीयजीको भेंट दिया जिसे उनके पतिने उसके दूनेसे अधिक मूल्य देकर ले लिया और पत्नीको फिर वापस दे दिया और जिसे उनकी पत्नीने संग्रहालयमें रखनेके लिये पुनः मालवीयजीको दे दिया। यहीं मुजफ्फर-पुरकी एक घटना और उल्लेखनीय है। रात्रि हो चली थी, सभामें धन एकत्र हो चला था, एक ओर उनकी गिनती हो रही थी, दूसरी ओर छोटी-छोटी चीजें नीलाम हो रही थीं, रोशनी ज़रा धीमी थी कि एक उचक्का हज़ार हज़ारकी दो थैलियाँ उठाकर चल दिया। पीछे दौड़ हुई पर वह जा, वह जा, नाले और झाड़ियोंमें होकर वह लुप्त ही हो गया।

ऊपर लिखा जा चुका है कि विश्वविद्यालयकी दुन्दुभी बजाते हुए मालवीयजी और उनके साथी कलकत्तेसे लाहौर पहुँच गए थे। बीस,—पचीस लाखका वचन मिल चुका था। हिन्दूविश्वविद्या-लयका आन्दोलन ब्रह्मपुत्रकी बाढ़के समान समुद्रकी ओर वेगसे बह रहा था। उसके आगेका पथ रोकना असम्भव हो चुका था। शिमलेसे मालवीयजीके लिये बुलावा आया, मालवीयजी शिमला पहुँचे। परलोकवासी राजा हरनाम सिंहजीकी कोठीमें वे ठहराए गए। मालवीयजी उस समयके वाइसराय लौर्ड हार्डिञ्जसे मिलने

हिन्दू युनिवर्सिटी' (यह तो हिन्दू विश्वविद्यालय की मृत्यु-घोषणा है।) ये लोग ऊपरसे उतरकर फिर लाहौर वापस आए। लाहौरकी विशाल सभामें पञ्जावकेशरी परलोकवासी लाला लाजपतरायने कहा कि, "चार्टर और नो चार्टर, हिन्दू युनिवर्सिटी मस्ट एग्जिस्ट" (चार्टर मिले या न मिले हिन्दू युनिवर्सिटी अवश्य रहेगी।) जिसके उत्तरमें मालवीयजीने कहा कि "चार्टर एण्ड चार्टर, हिन्दू युनिवर्सिटी मस्ट एग्जिस्ट (चार्टर मिलेगा, फिर मिलेगा और हिन्दू-युनिवर्सिटी बनेगी।") लाहौरसे यह दल मेरठ पहुँचा वहाँ बड़े समारोहसे सभा हुई। बारह घण्टे तकका लम्बा जलूस निकला, महाराजा दरभङ्गा भी उसीमें शामिल हुए, सभापति बनना स्वीकार किया और पाँच लाखका दान भी दिया। इसीके पहले पण्डित सुन्दरलालजीने भी श्री द्वारकोर्ट बटलरके कहने पर मन्त्रित्व स्वीकार कर लिया था।

मालवीयजी त्रिवेणी बन गए, हिन्दू विश्वविद्यालय पर्व बन गया और सारे देशने जी खोलकर इस पर्वपर सोना लुटाया। जहाँ-जहाँ डेपुटेशन जाता था वहाँ-वहाँ कई स्टेशन पहलेसे ही स्वागत प्रारम्भ हो जाता था, रेलवे पटरियोंपर पटाखे रख दिए जाते। गाड़ी पहुँचते-पहुँचते आवाज़ें दगने लगतीं। लोग चिल्ला उठते—हिन्दू धर्मकी जय, मालवीयजीकी जय। हाथियों पर, सवारियाँ निकलती, बड़े-बड़े विशाल जलूस निकलते—वही-वही मालवीयजी हैं, सफ़ेद साफ़ेवाले, वही जो मुस्कुराकर हाथ जोड़े खड़े हैं। वह देखो महाराज दरभङ्गा हैं। पीछे वह देखो व्याख्यान वाचस्पति जी पगड़ी बाँधे खड़े हैं, आगेवाले पण्डित गोकर्णनाथ मिश्र हैं। ये देशी साड़ी पहने अंग्रेज़ औरत-अरे यही एनी बेसेण्ट हैं। लोग इन महापुरुषोंको कितनी उत्सुकतासे देखते थे। पेड़ों और छतोंपर चढ़कर खिड़कियोंके सींखचोंसे लटककर केवल इनके दर्शनके लिये लोग अपने प्राण संकटमें डाल कर भीड़के धक्के खाते हुए भी उमड़े पड़ते थे।

फ़ैज़ाबाद, जौनपुर, बाँकीपुर, गोरखपुर, कानपुर, छपरा, लखनऊ, कलकत्ता, फ़रीदपुर, मालदा, रावलपिण्डी, लाहौर, अमृतसर, मुजफ़्फ़रनगर, मेरठ, बरेली, सहारनपुर, मुरादाबाद, उन्नाव, सीतापुर, इटावा, बहराइच, बनारस, आगरा, अजमेर, उदयपुर, नैनीताल, अलमोड़ा, काश्मीर, अम्बाला, शिमला, रायबरेली, इन्दौर, कोटा, अलवर, बीकानेर, गया, बम्बई—भारत भरमें यह दल घूमा। महाराज बीकानेर सर गङ्गासिंहजी बहादुर जी० सी० एस० आई० भी बहुत जगह साथ रहे। उस समय देशभरमें एक ही आन्दोलन था, एक ही शोर था—बस हिन्दू विश्वविद्यालय। ३ सितम्बर सन् १९११ ई० की बात है, यह दल लखनऊ पहुँचा। बड़ा भारी उत्सव हुआ। मालवीयजीका व्याख्यान होनेसे पहले प्रसिद्धकवि चकबस्त ने एक क़ौमी मुसद्दस सुनाया। लोग फड़क उठे। सिली हुई थैलियाँ भी अपने आप खुल गई और बरस पड़ीं। क्या जादू था उस कवितामें। हिन्दू विश्वविद्यालयका इतिहास इसके बिना अधूरा ही समझिए।

मालवीयजीकी जीभ सरस्वती बनी हुई थी। उनकी वाणीपर कितनी स्त्रियोंने अपने आभूषण न्यौछावर किए, कितने लोगोंने अपनी दिन भर की कमाई लुटा दी। हिन्दू और मुसलमान सभी इस यज्ञमें भाग ले रहे थे। मुरादाबादमें मालवीयजीके व्याख्यानके बाद एक मुसलमान सज्जन आँखोंमें आँसू और हाथमें पाँच रुपये लिए हुए खड़े हुए, और ले जाकर मालवीयजीके चरणोंपर रख दिए और कहा, "मैं बहुत ग़रीब आदमी हूँ; तब भी इस नेक काममें मैं पाँच रुपये देता हूँ।" इस सच्चे मुसलमानके इस दानसे सबकी आँखें डबडबा आईं। मालवीयजीने किस धुनसे रुपया इकट्ठा किया वह भी एक कहानी है। एक बार मालवीयजी देहरादून गए हुए थे और लाला उग्रसेनके घर ठहरे। वहाँके मुसलमान तहसीलदार मालवीयजीसे मिलने आए। मालवीयजीने उनसे भी हिन्दू विश्वविद्यालयके लिये प्रश्न किया और उनसे चन्दा लेकर ही उनको छुट्टी दी।

मालवीयजी और पण्डित सुन्दरलाल दोनों एक दूसरेकी कमी पूरी करते थे। मालवीयजी ब्राह्मणकी भाँति झोली पसारते थे पर सुन्दरलाल जी जमीन्दारकी भाँति वसूल करते थे। वचन दिए हुए रुपएको इकट्ठा करनेमें उन्होंने कमालका काम किया। सर सुन्दरलालने एक लाख रुपया स्वयं विश्वविद्यालयको दिया और पहले वाइस चान्सलर भी बने। उनके भाई पण्डित बलदेवराम दवे भी मालवीयजीके साथ-साथ काम करते रहे।

इस भिखारीकी झोलीमें सारे भारतने एक करोड़ रुपयेकी भीख डाल दी और इसे 'भिखारी-सम्राट' की उपाधि भी दे दी। यह कला इनसे गान्धीजीने भी सीखी। उन्होंने कहा भी था कि भीख माँगना मैंने अपने बड़े भाई मालवीयजीसे सीखा है। मालवीयजीके इस आत्मत्याग और परिश्रमको देखकर ही श्रीमती एनी बेसेण्टने ३१ जनवरी सन् १९१२ ई० को काशीमें व्याख्यान देते समय कहा था कि "आपने अपना सांसारिक जीवन, अपनी सब शक्ति, अपनी विलक्षण वाणी, क्या कहा जाय—अपना समस्त जीवन और स्वास्थ्यतक इस महत् कार्य्य (काशी हिन्दू विश्वविद्यालय) में लगा दिया है।

महाराजा मैसूर, महाराजा कश्मीर, महाराजा ग्वालियर, महाराजा इन्दौर, हिन्दूपति महाराणा उदयपुर, हिज हाइनेस महाराजा सर गङ्गासिंहजी बहादुर, जी० सी० एस० आई० बीकानेर नरेश, महाराजा कोटा, महाराजा सर प्रतापसिंह बहादुर, जोधपुर दरबार, महाराजा अलवर, महाराजा नाभा, महाराजा क़ासिम बाजार, महाराजा बनारस, महाराजा बलरामपुर इत्यादि हिन्दू राजाओंने हिन्दू विश्वविद्यालयके कार्य्यसे सहानुभूति प्रकट की और उसके लिये अपना समय और धन दिया। बङ्गालके नेताओंमें बा० बू सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी, बाबू अम्बिकाचरण मजुमदार, बाबू भूपेन्द्रनाथ वसु, डाक्टर सर रासबिहारी घोष, स्वर्गीय सर गुरुदास बैनर्जी, डाक्टर सर्वाधिकारी, पञ्जाबमें लाला लाजपतराय, लाला हंसराज, पण्डित दीनदयालु, लाला हरिकिशनलाल, राय रामशरणदास, राम गोपालदास भण्डारी बहादुर, बम्बईमें सर मालचन्द्र कृष्ण, सर नारायन चन्दावरकर, हिज हाइनेस आगाखाँ, सर विट्ठलदास थैकरसी, नरोत्तमदास मूरजी गोकुलदास, विहारमें माननीय कृष्णासहाय, माननीय सच्चिदानन्द सिंह, माननीय हसनइमाम, मध्यप्रदेशमें राजा बल्लभदास और संयुक्तप्रान्तमें डाक्टर सर सुन्दरलाल, डाक्टर तेजबहादुर सप्रू, पण्डित मोतीलाल, राजा मोतीचन्द, राना शिवराजसिंह खजूरगाँव, राजा सूर्य्यबख्शसिंहजी कसमण्डा नरेश, राजा रामपालसिंहजी, राजा प्रतापबहादुरसिंहजी, राजा माँडा, इत्यादि सब हिन्दू जातिके हितैषियोंने हिन्दू विश्वविद्यालयको अपना समय और धन देकर हिन्दू जातिके प्रति अपना कर्त्तव्य पूरा किया।

एक करोड़ रुपया एकत्र हो गया। सन् १९११ ई० में हिन्दू यूनिवर्सिटी सोसाइटीकी रजिस्ट्री हो ही चुकी थी, इसके एक वर्ष बाद ही भारत-मन्त्रीने लौर्ड हार्डिञ्जकी सलाहसे 'आवासात्मक विश्वविद्यालय' स्थापित करनेकी स्वीकृति दे दी। पहली अक्टूबर सन् १९१५ ई० को 'हिन्दू विश्व-विद्यालय बिल' रक्खा गया और स्वीकृत होगया। श्रीमती एनी बेसेण्टने और सेण्ट्रल हिन्दू कौलेजके ट्रस्टियोंने बड़ी उदारताके साथ सेण्ट्रल हिन्दू कौलेजको हिन्दू विश्वविद्यालयके हाथों सौंप दिया। यह हिन्दू विश्वविद्यालयका बीज समझिए।

'हिन्दू विश्वविद्यालयका शिलारोपण महोत्सव"

निदान ४ फरवरी सन् १९१६ ई० को १२ बजे बसन्त पञ्चमीके दिन काशीमें, विशेष समारोह हुआ। सम्राट्के प्रतिनिधि श्रीमान् लौर्ड हार्डिञ्ज बङ्गालके गवर्नर, तथा बिहार-उड़ीसा, युक्तप्रान्त और पञ्जाबके लेफ्टिनेण्ट-गवर्नर पधारे। कश्मीर, जम्बू, जोधपुर, बीकानेर, अलवर, झालावाड़, डूँगरपुर, ईदर, कोटा, किशनगढ़, काशी और सुहावल इत्यादिके महाराजागण तथा बलरामपुर, डुमराँव, बस्ती इत्यादिके राजाओंने भी पधारकर

पण्डालकी शोभा बढ़ाई थी। सर गुरुदास बैनर्जी, डक्टर रासविहारी घोष, सर प्रभाशङ्कर पट्टनी, बाबु सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी, दीवानबहादुर गोविन्द-राघव ऐयर, सरदार दलजीत सिंह इत्यादि प्रभावशाली महानुभाव तथा कितने ही अन्य भारत-रत्न, महामहोपाध्याय, धर्म-धुरीण आचार्य्य—हिन्दू, मुसलमान, ईसाई,—देश-सेवक स्कूलों और कौलेजोंके चुने हुए छात्रगण भी इस महोत्सवमें सम्मिलित हुए थे। रङ्गबिरङ्गे वस्त्रभूषणोंसे सज कर ये सब लोग वहाँ एक ही उद्देश्य लेकर जमा हुए थे। शायद सन् १९११ ई० के दरबारको छोड़ कर बृटिश भारतमें ऐसा दृश्य कभी न दिखाई दिया होगा।

मि० लैम्बर्ट कलेक्टर तथा राय छोटेलाल साहब इञ्जिनियरने मालवीयजीकी इच्छाकेअनुसार मण्डप बनाया था। जिन आँखोंने देखा उन्होंने वाणीको गूँगा बना दिया, वर्णन क्या खाक करें। पतितपावनी गङ्गाजीके बाएँ किनारे, श्रीमान् काशी-नरेशके रामनगरके क़िलेके ठीक सामने गोल मण्डप बनाया गया था। चबूतरे धनुषाकार थे। चारों ओर रङ्ग-बिरङ्गी मालाओं, फूलपत्तियों, झण्डियों और पर्दों इत्यादिसे वह सजाया गया था। श्रीमान् वाइसरायके आसनके नीचे खण्डोंमें बहुमूल्य क़ालीन और गद्दे बिछे हुए थे। उनके ऊपर सोने-चाँदीकी कुर्सियाँ रक्खी थीं। मण्डपकी शोभा स्थानकी सुरम्यतासे और भी बढ़ गई थी। मण्डप के भीतर दक्षिणी भागके बीचमें, श्रीमान् वाइसरायका आसन उत्तर मुँह बैठनेके लिये बनाया गया था। आसनके दाहिने ओर तीन खण्ड थे। उसमें तीन सौ मनुष्योंके बैठनेका स्थान था। बाईं ओरके चार खण्डोंमें चार सौ आदमियोंके बैठनेका स्थान था। श्रीमान् वाइसरायके आसनके ठीक सामने मण्डपके बीचों-बीच एक ऊँची वेदीपर नींव रखनेका पत्थर एक दृढ़ जंज़ीरसे लटक रहा था।

इसके आगे, उत्तर ओर, तीन खण्डोंमें बैठनेके सात सौ चौवालीस स्थान थे। उनके ऊपर पाँच और खण्ड थे। उनमें बैठनेके चार हजार एक सौ छिहत्तर स्थान थे। प्रथमके ग्यारह खण्डोंतक तो कुर्सियोंका प्रबन्ध था और शेष पाँच खण्डोंमें चापाकार बेञ्च बनाए गए थे। मण्डपके बाहर चारों ओर, स्थान-स्थानपर, विशाल तम्बू खड़े थे। उनमें, भिन्न-भिन्न खण्डोंमें बैठनेवाले महानुभावोंके सुभीते और आरामकी ओर ध्यान रखकर, सब प्रकारके ज़रूरी सामान रक्खे हुए थे। पानी पिलानेका भी उत्तम प्रबन्ध था, पास ही एक अस्पताल भी था। महोत्सव मण्डपके पूर्व, गङ्गाजीकी ओर, महारुद्र-यज्ञके लिए एक विशाल यज्ञशाला बनाई गई थी। उसके पास ही एक सुन्दर मण्डप था। उसमें सिक्ख भाइयोंके ग्रन्थ साहबके पढ़नेका विधान था। दूसरे मण्डपमें जैन भाइयोंकी ओरसे पूजाकी व्यवस्था की गई थी। पूजाके सभी स्थान महोत्सव-मण्डपकी तरह भले प्रकार सजाए गए थे। एक जगहसे दूसरी जगह जानेके लिये सुन्दर मार्ग बनाए गए थे। घोड़ा-गाड़ियों और मोटरोंके लिये अलग-अलग स्थान नियत थे।

टिकट

महोत्सव-मण्डपमें जानेके लिये पाँच प्रकारके टिकट थे—सुफ़ेद, नीले, पीले, लाल और हरे। किस टिकटवाले कहाँ बैठें, यह निश्चित कर दिया था। परदानशीन महिलाओंके लिये लाल टिकटोंकी योजना थी।

मार्ग

महोत्सव-मण्डपमें जानेके लिये श्री दुर्गाजीके मन्दिरको दक्षिण-पूर्ववाली पक्की सड़कमेंसे तीन नए सुन्दर मार्ग बनाए गए थे। किस मार्गसे कौन प्रवेश करे, इसका प्रबन्ध कर दिया गया था।

मार्ग-सूचक पट्टियाँ स्थान-स्थानपर बड़े-बड़े खम्भोंमें लगी हुई थीं। तो भी पुलिसका प्रबन्ध था ही। मार्ग भूलनेवालोंको लाल पगड़ीवाले टिकट देखकर मार्ग बतला देते थे। पुलिसका पहरा केवल राजमार्गों पर ही नहीं था बल्कि प्रत्येक गली और सड़क तथा उनके पासके घरोंकी छतों और बागके वृक्षोंपर भी था।

महोत्सव-मण्डपमें पहुँचनेका समय

महिलाओंको साढ़े दसतक, हरे टिकटवाले निमन्त्रित सज्जनों और छात्रोंको ग्यारह बजे तक और अन्य महानुभावोंको साढ़े ग्यारह बजेतक मण्डपमें अपनी-अपनी जगहपर बैठनेकी सूचना दे दी गई थी। सोनारपुर, भदैनी, अस्सीके राजमार्गों से बिना टिकट कोई मनुष्य रामनगर अथवा नगवाकी तरफ आठ बजेके बाद नहीं जाने पाया। टिकट वाले लोगोंके लिये भी कोई-कोई मार्ग साढ़े नौ और दस बजे बन्द कर दिए गए थे।

साढ़े ग्यारह बजेके पश्चात् पाँचवीं हैम्पशायर और सातवीं राजपूत पल्टनके सिपाही क्रमशः आकर मध्यवेदीके दाहिने-बायें खड़े हो गए। उनके यथास्थान खड़े हो जानेपर हिन्दू कौलेजकी केडेट कोर, मध्यवेदीके तीन ओर घेरकर खड़ी हो गई। यदि उस समय महोत्सव-मण्डपको एक विचित्र रङ्ग-बिरङ्गा पौदा कहें तो हिन्दू कौलेजके केडेट् कोरको उस पौधेका मनोमोहक फूल कहे बिना नहीं रह सकते। उनके सामने सचमुच हीरे-जवाहिरों, मोतियों तथा बहुमूल्य सुन्दर-सुन्दर वस्त्रोंकी चमक-दमक और जगमगाहट छिप गई। वे तेजस्वी बालक सूर्य्य भगवान्की तरफ मुँह करके जो खड़े हो गए तो अन्ततक अपनी जगहसे नहीं हिले। सूर्य्य भगवान् भी मण्डपके ऊपर रथ रोककर मानो विचित्र शोभा देखनेके लिए आ जमे थे।

श्रीमान् वाइसराय ठीक बारह बजे सभा-मण्डपमें पधारे। गार्ड औफ औनरने सलामी उतारी। बैण्डवालोंने समयोचित बाद्य बजाया। सर्वसाधारणने खड़े होकर करतल ध्वनिसे श्रीमान् का स्वागत किया। श्रीमान्के आसनपर विराजते ही दाहिनी ओर रक्षित देशोंके नरेश और बाईं ओर बङ्गाल, बिहार युक्तप्रान्त, पञ्जाबके लाट, बलरामपुर, डुमराँव इत्यादिके महाराज तथा मिस्टर नायर, महाराज दरभङ्गा, श्रीमान् मालवीयजी, पण्डित सुन्दरलाल, डाक्टर सर्वाधिकारी, सर गुरुदास बैनर्जी, सर बट्लर, सरदार दलजीतसिंह इत्यादि सज्जन अपने अपने आसनपर बैठ गए।

निश्चित समयसे बहुत पहले ही सभा भवन दर्शकोंसे भरने लगा और साढ़े ग्यारह बजते-बजते सब अपने स्थानपर बैठ गए। पाँचवीं हैम्पशायर तथा सातवीं राजपूत पल्टनसे आए सिपाही वायसराय महोदयके स्थानके चारों ओर सम्मान प्रदर्शनके लिये खड़े थे। हिन्दू कौलेजके स्वयंसेवक उस शिला मंचको चारों ओरसे घेरे खड़े थे। हिन्दू कौलेजके छात्रोंने इस अवसरपर जो अदम्य उत्साह दो घण्टे निरन्तर खड़े रहकर (जब कि पाँचवीं हैम्पशायर पल्टनके आठ व्यक्ति तथा सातवीं राजपूत पल्टनके चार व्यक्ति मूर्छित होकर गिर पड़े थे) दिखलाया था उनकी शिक्षाका भली भाँति परिचय दे रहा था।

ठीक बारह बजे वायसराय महोदय पधारे तथा राष्ट्रीय गानके साथ उन्होंने अपना स्थान ग्रहण किया।

राष्ट्रीय गानके समाप्त होने पर सेण्ट्रल हिन्दू कन्या पाठशालाकी बारह बालिकाओंने जो वायसराय महोदयके स्थानसे दर्शकोंके स्थानतक खड़ी हुई थीं पहले गणपतिकी तथा फिर सरस्वती देवीकी स्तुति की। संस्कृत श्लोकोंमें जो इस अवसरके लिए सर्वथा उपयुक्त थे। महामहोपाध्याय पण्डित शिवकुमारजी शास्त्रीने तब इस कार्य्यकी सफलताके लिये स्वस्तिवाचन श्लोक कहे। उसके बाद हिन्दू विश्वविद्यालय सोसाइटीके प्रधान महाराजा दरभङ्गाने अपना भाषण पढ़ा और फिर लौर्ड हार्डिंजसे शिलान्यास करनेकी प्रार्थना की।

सर गुरुदास बैनर्जीने वायसराय महोदयको शिवालयके आकारके सुन्दर रजत डिब्बेमें बन्द मान पत्र भेंट किया। इसके बाद वायसराय महोदयने भाषण दिया।

तत्पश्चात् श्रीमान् वायसराय मध्यस्थ मञ्चकी ओर गए। नन्हीं नन्हीं बालिकाओंकी पुष्प-वर्षाके मध्यमें उन्होंने शिलान्यास संस्कार किया जिसपर खुदा हुआ था—

ॐ

काशीविश्वविद्यालय।

माघे शुक्ले प्रतिपदि तिथौ शुक्रवारे शिलाया
न्यासं काश्या द्वयगजनव महीसम्मिते विक्रमाब्दे।
प्राच्यं धर्मं परिफलयितुं विश्वविद्यालयस्या-
कार्षीत् सम्राट् प्रतिनिधिवरो लॉर्डहार्डिञ्ज् सुकीर्त्तिः॥

काशी विश्वविद्यालय

यह शिलान्यास श्रीमान् हिज़ एक्सलैन्सी पेन्शर्स्टके माननीय चार्ल्स बैरन हार्डिंञ्ज, पी. सी., जी. सी. बी, जी. एम् एस्. आई., जी. सी. एम्. जी., जी. एम्. आई. ई., जी. सी. वी. ओ., आई. एस्. ओ. भारतवर्षके गवर्नर-जनरल तथा वायसराय-द्वारा ४ फ़रवरी सन् १९१६ ई० को किया गया।

उस सङ्गमरमरके नीचे रिक्त स्थानमें एक ताँबेका डब्बा है जिसमें भारत-सरकार तथा बहुतसी देशी रियासतोंके प्रचलित सिक्के, हिन्दू विश्वविद्यालय सोसाइटीकी रिपोर्ट, उस दिनके लीडर तथा पायोनियरकी एक-एक प्रतियाँ तथा एक ताम्रपत्र रक्खे हैं। ताम्रपत्रपर यह अङ्कित है:—

धर्मं सनातनं वीक्ष्य कालवेगेन पीडितम्।
भूतले दुर्व्यवस्थं च व्याकुलं मानवं कुलम्॥
कलेः पञ्चसहस्राब्दे गते भारतभूमिपु।
आरोपयितु मुदारबीजस्य तु पुनर्नवम्॥
काशीक्षेत्रे पवित्रेऽत्र गङ्गातीरे महोदयाः।
शुभेच्छा पुण्यसम्पन्ना सञ्जाता जगदात्मनः॥
सङ्गमय्याथ पाश्चात्याः प्राच्याश्चापि प्रजा निजाः।
तच्छेष्टाना विधायैकमत्यं सुमति लक्षणम्॥
विश्वनाथपुरे विश्व जनीनो विश्वभावनः।
विश्वात्माऽऽकारयद्विध विद्यापीठ व्यवस्थितिम्॥
निमित्तमात्रमभूत् समीहायाः परेशितुः।
मालवीयो देशभक्तो विप्रो मदनमोहनः॥
निधाय धाद्मयं तेजस्तस्मिन्नुद्बोध्य भारतम्।
प्रहीकृत्यापि तच्छास्तृनस्मिन्नर्थे व्यधात्प्रभुः॥
अन्ये चापि निमित्तानि प्राभवन्नत्रात्मन।
बीकानेर नृपो वीरो गङ्गासिंहो महामनाः॥
श्रीरमेश्वरसिंहश्च दरभङ्गा-महीपतिः।
प्रधानं कार्यकारिण्याः सभाया मानवर्द्धनः॥
सुधीः सुन्दरलालश्च मन्त्री कोषाभिरक्षकः।
गुरुदासादित्यरामौ वाग्मन्ती वाग्मिनौ तथा॥
तथा रासबिहारी च वृन्दा ये देशवत्सलाः॥
दासाश्चान्ये भगवतो यथाशक्यं सिषेविरे।
विक्टोरियामहाराज्ञाः पौत्र एड्वर्डदेहजे।
सम्राजि पञ्चमे जार्जे भारतं परिशासति॥
मेवारकाशिकाश्मीर मयसूरालवराधिपान्।
कोटा जयपुरेन्दौर जोधपुरादिभूमिपान्॥
तथा कर्पूर्थलानाभाग्वालेरादि नरेश्वरान्।
ईरयित्वा सहायार्थे सज्जनानपरांस्तथा॥
गर्भस्थ सर्वधर्माणां रक्षायै प्रचयाय च।
प्रासाराय स्वलीलाना स एवैकः परः प्रभु॥
लार्डहार्डिञ्ज् सुविख्यात सम्राट्प्रतिनिधिं वरं।
धीरं वीरं प्रजाबन्धुं जनाना हृदयङ्गमम्॥
विश्वविद्यालयस्यास्य शिलान्यासे न्ययोजयत्।
संप्राप्ते नेत्रभूभृद् गजधरणिमिते वैक्रमेऽब्दे च मासे।
माघे पक्षे च शुक्ले प्रतिपदि च तिथौ वह्नि शुक्रे क्षणेऽच्छे॥
श्रीकाश्या श्रीलसम्राट्प्रतिनिधिकरतो यच्छिलान्यास आसीद्।
यावच्चन्द्रार्कतारं विलसतु स महा विश्वविद्यालयोऽयम्॥

सरस्वती श्रुतिमहती महीयताम्।
ततः स्तुता ज्ञानसुधा निपीयताम्॥
सदा मतिः शुभचरिते विधीयताम्।
रतिः परा परमगुरौ प्रचीयताम्॥

(सनातन-धर्मको कालके वेगसे पीड़ित तथा सम्पूर्ण भूमण्डलके प्राणियोंको दुरवस्थ और व्याकुल देखकर कलियुगके पाँच हज़ार वर्ष बीतनेपर भारत-भूमिमें काशी-क्षेत्रमें जाह्नवीके पवित्र तटपर इस सनातन-धर्मके बीजका पुनः नवीन रूपसे आरोपण करनेके लिये जगदीश्वरकी शुभ पुण्य इच्छा उत्पन्न हुई। अपनी प्राच्य और पाश्चात्य पूजाको एक सूत्र-बद्ध करके और विशिष्ट विद्वानोंका ऐक्यमत कर विश्व-भावन, विश्वरूप, विश्व-ग्राणने विश्वनाथकी नगरीमें विश्वविद्यालयके संस्थापनकी व्यवस्थाकी। देशभक्त विप्र मदनमोहन मालवीय परमेश्वरकी इस इच्छाके पूर्ण करनेके

निमित्त मात्र बने। भारतको जगाकर और उसमें वाङ्मय तेजका विधान कर भारतके शासकोंको नम्र बनाकर इस कार्यको सफल करनेमें उन्हें प्रवृत्त किया। भगवान्की इस इच्छाकी पूर्तिमें और भी कई महापुरुष निमित्त बने। बीकानेर नरेशवीर महामना महाराज श्री गङ्गासिंह बहादुर, कार्य्यकारिणी सभाके सम्मानवर्द्धक सभापति दरभङ्गा नरेश श्री रामेश्वरसिंहजी, मन्त्री एवं कोषाध्यक्ष डाक्टर श्री सुन्दरलालजी, सर गुरुदास बैनर्जी, श्री आदित्यराम भट्टाचार्यजी, विदुषी एनी बेसेण्ट, डाक्टर रासबिहारी घोष तथा अन्य विद्यावयोवृद्ध देशप्रेमी भगवन्-दासोंने यथाशक्ति इसकी सेवा की। महारानी विक्टोरियाके पौत्र महाराज एडवर्डके पुत्र सम्राट् पञ्चमजार्जके शासन कालमें मेवाड़, काशी, काश्मीर, मैसूर, अलवर, कोटा, जयपुर, इन्दौर, जोधपुर, कपूर्थला नाभा, ग्वालियर आदि राज्योंके नृपतियोंको तथा अन्य धनी-मानी सज्जनोंको इसकी सहायताके लिये प्रेरणा कर सब धर्मोंके जन्मदाता सनातन धर्मकी रक्षा एवं उन्नतिके लिये तथा अपनी लीलाके विस्तारके निमित्त उन्हीं परात्पर प्रभुने सम्राट्के प्रतिनिधि (वायसराय) धीर-वीर प्रजाबन्धु श्री लौर्ड हार्डिङ्गके द्वारा इस विश्वविद्यालयका शिला-न्यास कराया।

श्री विक्रम सम्वत् १९७२ में माघ शुक्ल प्रतिपदा शुक्रवारके दिन शुभ मुहुर्त्तमें श्री काशी नगरीमें सम्राट्के प्रतिनिधि (वायसराय) के द्वारा जिस विश्वविद्यालयका शिलान्यास किया गया वह सूर्य्य-चन्द्रस्थिति तक सुशोभित रहे)।

इसे संक्षेपमें काशी हिन्दू विश्वविद्यालयका इतिहास कहना चाहिए। अब भी वसन्त पञ्चमीके दिन वसन्ती रङ्गमें रङ्गकर इसका जन्मदिन बड़े धूमधामसे मनाया जाता है। अध्यापक, विद्यार्थी, स्त्रियाँ और बच्चे सब जुलूस निकालते हैं, भजन गाते हैं और अपनी मातृ-संस्थाका जन्मोत्सव मनाते हैं।—

हिन्दू विश्वविद्यालयकी स्थापना हो गई और सन् १९१८ ई० में हिन्दू विश्वविद्यालयकी पहली परीक्षा हुई।

इसीके बादकी घटना है। देशमें असहयोग आन्दोलनकी धूम थी। चारों तरफ़ धर-पकड़ जारी थी। इन्हीं दिनों प्रिन्स औफ वेल्स (पूर्व सम्राट् एडवर्ड अष्टम और अब ड्यूक औफ़ विण्डसर) उस समय भारतवर्षमें सैर कर रहे थे। काशी हिन्दू विश्वविद्यालयके अधिकारियोंने उन्हें 'आचार्य' (डाक्टर) बनानेकी ठानी। अखिर मालवीयजीकी बात तो ठहरी। चारों ओर लोगोंने मालवीयजीकी निन्दा की, बुरा-भला कहा, व्यङ्ग चित्र बनाए, पर मालवीयजी अटल रहे। १३ दिसम्बर सन् १९२१ ई० को दिनको ठीक ग्यारह बजे राजकुमार पधारे। बड़ी सजधज थी, बहुतसे लोग आए हुए थे। महाराजा मैसूर चान्सलरने उनका स्वागत किया, जिसका राजकुमारने बड़े सुन्दर शब्दोंमें उत्तर दिया। राजकुमारने जब सुनहरी धारीका लाल चोगा पहना और रेशमी पगड़ी बाँधी तो बड़ी देरतक करतल-ध्वनि हुई। मालवीयजीके हाथों राजकुमार भी स्नातक बन गए।

इसी अवसर पर हिन्दू युनिवर्सीटी अपने मूल स्थान कमच्छासे उठकर नगवाके नये भवनोंमें चली आई। यह स्थान पहले महाराजा बनारसका था जिन्होंने अपने ज़मीन्दारीका हक़ युनिवर्सीटी-को सौंप दिया और जिसका काश्तकारीका हक़ छः लाख रुपयेमें खरीदा गया। अर्द्ध गोलेमें युनिव-र्सिटीका निर्माण हुआ और धनुषाकार समानान्तर सड़कोंके किनारे बड़े क्रमसे विद्यालय, छात्रावास, और अध्यापक वास स्थानोंके भवन बने हैं। आज यह विश्वविद्यालय तीस बरसका हो गया है। इसका परिवार बढ़ता चला जा रहा है। यहाँ क़रीब साढ़े चार हज़ार विद्यार्थी शिक्षा पा रहे हैं और अढ़ाई सौ अध्यापक पढ़ा रहे हैं। एक नया ही मालवीय नगर है। अपनी बिजली, अपना पानी, अपना नगर-प्रबन्ध—जिन्हें रोम, पेरिस, लन्दन और बर्लिनका वैभव चकित न कर सका

होगा उन्हें यह नया नगर अवश्य अच्छा लगेगा।

अनेकों कर्मचारियोंके हृदयकी भावनाका फल।

हमारे मालवीयका प्राण हिन्दू विश्वविद्यालय॥

हिन्दू विश्वविद्यालयकी कथा कहनेके लिये एक युग चाहिए और पढ़नेके लिये अमित सन्तोष। न हमारे पास इतना समय और शक्ति है और न आपको इतना धैर्य्य। पर यही समझ लीजिए कि यह एक दीन ब्राह्मणकी निरन्तर कल्पनाकी सजीव सृष्टि है। कल जो स्वप्न था, वह आज आँखोंके आगे है।

हिन्दू विश्वविद्यालयके भीतर

आप कहेंगे कि इतना गुन बखान गए, ज़मीन आसमानके कुलावे मिला दिए, पर यह न बतलाया कि आखिर काशी विश्वविद्यालय है क्या चीज़। आप समझते होंगे कि एक भवन बना होगा। दस बजे घण्टी बजती होगी, लड़के और प्रोफ़ेसर आते होंगे, पढ़ते होंगे, यही न ? मैं कहने लगूँगा तो आप मानेंगे नहीं। आइए मेरे साथ चले चलिए, पर साथ ही-साथ जेबमें रुपयोंकी थैली भी लेते चलिएगा, नहीं तो आपको वहाँ जाकर पछताना पड़ेगा कि अपनी थैली क्यों भूल आए। उस तीर्थका माहात्म्य ही यह है कि न पण्डा है न पुजारी, पर जो दर्शनके लिये आता है वह अपने आप अपनी जेब खाली कर जाता है। डरिए मत, यहाँ जेबकतरे नहीं रहते।

हाँ, तो आप काशीमें गङ्गास्नान करके भगवान् विश्वनाथजीके दर्शन कर चुके न ? अब मेरे साथ गोदौलियासे इसी इक्केपर बैठ लीजिए और नगवा चले चलिए। हिन्दू विश्वविद्यालय जिस भूमि पर है उसमें पहले नगवा गाँव था। इक्केवाले अब भी उसे नगवा ही कहते हैं। अब काशी बहुत बदल गई है, पर ये इक्के अभी नहीं बदले। जो तपस्या न भी करना चाहता हो उसे भी तपस्या करा देते हैं। अब सड़क भी अच्छी होगई है। चले चलिए, अभी तो हरिश्चन्द्र घाट पीछे छूटा है। यह देखिए! अस्सी घाट, यहाँपर तुलसीघाट है और उनका मन्दिर है। लौटती बार अवश्य देखिएगा। जिस हिन्दूने काशीमें आकर गोस्वामी तुलसीदासजीका यह स्थान नहीं देखा, उनकी चरणपादुकाके दर्शन न किए, उसका चोटी रखना व्यर्थ है। हाँ! आप चौंक क्यों पड़े ? हाँ, ठीक है, यह पुल अभी बना है। आप जब पहले आए थे तब नहीं था। इसके खम्भोंपर देख रहे हैं। अँग्रेजीमें लिखा है—'बी० एच० यू०, जिसका अर्थ है बनारस हिन्दू यूनि-

हिन्दू विश्वविद्यालयका पुराना द्वार।

वर्सिटी। यहाँके भूतपूर्व प्रोवाइसचान्सलर राजा ज्वालाप्रसादके उत्साह और प्रेरणासे ही बना है। इस पुलके बनने से बड़ा चक्कर बच गया है। यह लीजिए, आप आगए लंका, यह सब बस्ती और बाज़ार विश्वविद्यालयके कारण ही बस गया है। सामने यह देखते हैं फाटक। यहाँ से काशी हिन्दू विश्वविद्यालय प्रारम्भ होता है। यह फाटक पहले छोटा था अब राजा बलरामपुरकी उदारतासे गोपुरके रूपमें बन गया है।

इक्केपरसे मत उतरिए। तेरह सौ एकड़ जमीन और बीस मीलकी सड़कोंपर कहाँतक पैदल चलिएगा? यह देखिए बाईं ओर दीवार दिखाई दे रही है। इसके पीछे जो भवन हैं इन्हींमें महिला विद्यालय और महिला छात्रावास हैं। इस बीसवीं सदीमें महिला विद्यालयके चारों ओर दीवार देखकर आपको कम अचरज तो न होता होगा पर क्या किया जाय, अभीतक हम लोगोंने अपनी बहनोंके शील और उनकी मर्य्यादा का आदर करना नहीं सीखा है। जबतक हमारे नौजवान लक्ष्मण नहीं बन जाते तबतक ईंटोंकी दीवार ही उनके शीलकी रक्षा करेगी। आजकल की शिक्षा ही ऐसी है, वातावरण ही ऐसा है। फ़िल्म कम्पनीके राम और सीताके सामने वाल्मीकि और तुलसीके राम और सीताको पूछता ही कौन है? बाहरसे देख रहे हैं, सामने फव्वारा है, दोनों ओर बग़ीचा है, ठण्डी अमराई है, पीछे खेलनेके मैदान हैं। आप बाहर ही रहिए, भीतर जाना ठीक नहीं है, लड़कियाँ इधर-उधर बैठी पढ़ रही होंगी। अपनी धर्मपत्नीजीको भेज दीजिए, भीतरसे देख आयेंगी।

क्यों देखा न आपने? महिला छात्रावासके भीतर कितना मनोरम उद्यान है, उसमें सामने छात्रावास है, और उत्तरमें विद्यालय है। आप सितार सुन रहे हैं न? यहाँ लड़कियोंको सङ्गीत भी सिखाया जाता है। भीतर ही एक बड़ा भवन है जिसमें वे अपनी सभाएँ करती हैं, उत्सव करती हैं और नाटक करती हैं। केवल स्त्रियाँ ही उसमें जा सकती हैं। इसमें बी० ए० तक पढ़ाई होती है। एम्० ए० और विज्ञान पढ़ने वाली कन्याओंको अभीतक सेण्ट्रल हिन्दू कौलेज्में जाना पड़ता है। किन्तु अगले वर्षसे यहाँ ही प्रबंध हो जायगा। यह छात्रावास भवन दानवीर श्रीमानजी खटाऊने बनवाया है।

इधर दाईं ओर जँगलेके भीतर आयुर्वेदिक कौलेज् और सर सुन्दरलाल चिकित्सालय है। इसमें आयुर्वेदके साथ-साथ पाश्चात्य शल्य शास्त्र भी पढ़ाया जाता है। इसमें छः वर्षका पाठ्यक्रम है। आयुर्वेद और अंग्रेज़ी दोनों प्रकारकी चिकित्सा का प्रबन्ध है। पीछेकी ओर चलिए। यहाँ आतुरालय है। देखिए कितनी स्वच्छतासे रोगियोंकी सेवा की जा रही है। इसमें सो रोगियोंके रखने की व्यवस्था है। इधर आँख, नाक, कान और गलेकी विशेष चिकित्साका भी प्रबन्ध है। ऊपर चलिए, यह देखिए, यहाँ कीटाणुओंकी परीक्षा हो रही है।

उत्तर चलिए। यह देखिए, सामने कैसी सुन्दर आयुर्वेदिक वाटिका है। इसके भीतर चले चलिए। यहाँ अनेक प्रकारकी आयुर्वेदिक जड़ीबूटियाँ, पेड़-पौदे, लताएँ उगाई गई हैं। इसके

आप जो घरड़-घरड़ आवाज सुन रहे हैं यह सामनेके भवनसे आ रही है। यही भारतका अद्वितीय विद्यालय है। यही यहाँका प्रसिद्ध इञ्जिनीयरिङ्ग कौलेज् है।

यहाँ मशीनोंका और बिजलीका काम सिखाया जाता है, साथ ही लकड़ी और लोहेका काम भी सिखाया जाता है। ये सब लड़के जिन्हें आप हथौड़ा चलाते रन्दा करते और मशीन चलाते देखते हैं, सब भारत भरके भले घरोंके लड़के हैं जो यहाँ इञ्जिनीयरिङ्ग कौलेजमें शिक्षा पा रहे हैं।

यह सामने जो ऊँचेपर अञ्जन चल रहा है उसीसे सारे विश्वविद्यालयमें बिजली की रोशनी पहुँचती है। इधर देखिए, सब बिजलीके पङ्खे और कल-पुर्जे यहींके बने हुए हैं और ये लोहेकी जालियाँ भी यहींकी ढली हैं। इसका रामपुर हाल सबसे बड़ा है। यह विद्यालय यहाँकी नाक समझिए।

उधर सामने आप देखते हैं, वह व्यवसाय विद्यालय (कौलेज् ओफ़ टेकनौलोजी) है यहाँ काँचका काम सिखाया जाता है। गिलास, कलमदान, फूलदान, इत्रदान, तश्तरियाँ और चूड़ियाँ आदि सभी वस्तुएँ वहाँ बनती हैं और आगे जो भवन आप देखते हैं वह हिन्दू युनिवर्सिटीका छापाखाना है। इधर पीछे गोशाला और डेरी फ़ार्म है। इसमें बड़े परिमाणमें खेती होती है। यहाँकी गाजरें, टमाटर, सँगरे और गन्ने अपनी मोटाई और लम्बाईमें कई प्रदर्शनियोंमें पुरस्कार पा चुके हैं।

अब वापस चलिए। देर हो चली है, पीछेकी सड़कसे चलिए। यह छात्रावासोंकी सड़क है। ये सफेद-सफेद जो तीन भवन दिखाई पड़ते हैं ये राजपुताना और लिमडी आदि छात्रालय हैं इञ्जिनीयरिङ्ग कौलेज्के छात्र इन्हींमें रहते हैं।

इधर बाईं ओर तो यह पुराने स्नातकोंका छात्रालय देख रहे हैं उधर दाईं ओर प्रसिद्ध विश्वनाथजीका विशाल मन्दिर बन रहा है। इसके चारों ओर बीस फुट चौड़ी नहर है। गर्मीमें जब इसमें जल भर दिया जाता है तब इसकी बहार देखिए। यह सचमुच दुःखकी बात है कि हिन्दुओंने अभी मन्दिरकी उपयोगिता नहीं समझी। जब मन्दिरका प्रस्ताव हुआ तो बहुत लोगोंने फ़बतियाँ कसीं कि 'मालवीयजी ताजमहल बनवा रहे हैं'। बहुतसे लोगोंका कहना है कि इतना रुपया मालवीयजी इसमें क्यों लगा रहे हैं, पर बात यह है कि प्रत्येक वस्तुका एक महत्त्व होता है, वह महत्त्व ही हमारे भावोंको भी ऊपर उठा देता है। लोगोंने बहुतसे गुरुद्वारे देखे होंगे पर जो भाव अमृतसरके 'स्वर्ण मन्दिर' में आता है या उस तालाबके अठसट्ठि घाटपर पैदा होता है, वह और कहीं नहीं होता। यह तो विश्वविद्यालयका हृदय है। शरीरके अनुरूप ही उसका हृदय भी विशाल होना चाहिए। इसी लिये विश्वविद्यालयके बीच ही में इसकी स्थापना भी हो रही है। यह मन्दिर भारतकी हिन्दू जातिका केन्द्रस्थान होगा। उसे उतना ही बड़ा, उतना ही विशाल होना चाहिए जितनी बड़ी हिन्दू जाति है। जब यहाँके विशाल घण्टे प्रातः सायं यहाँकी भूमिमें गूँजेंगे तभी तो विद्यार्थियोंमें धर्मकी भावना जागरित होगी और हिन्दू विश्वविद्यालयकी स्थापनाका उद्देश्य पूर्ण होगा। अभी मन्दिरके लिये पूरा रुपया नहीं मिला है, पर हमारा विश्वास है कि धार्मिक हिन्दू जाति इस धर्मके दानमें कञ्जूसी नहीं करेगी।

चलिए, सन्ध्या हो चली है। ये आगे ब्रोचा और बिड़ला छात्रावास हैं। बिड़ला परिवारने विश्वविद्यालयको अबतक सबसे अधिक तीस लाख रुपया दिया है। इधर बाईं ओर जो एक भवन दिखाई पड़ रहा है, शिवाजी भवन कहलाता है और इसमें व्यायाम विद्यालय है, प्रातः-सायं विद्यार्थी कसरत करते हैं।

इधर आगे क्रिकेट, हाकी और फुटबाल खेलनेके मैदान हैं। उसके आगे जालीसे घिरे हुए टेनिस खेलनेके मैदान बने हैं।

आगे बाईं ओर जो बड़ा छात्रावास है इसमें आयुर्वेदिक और संस्कृत विद्यालयके छात्र रहते

हैं। इसी भवनमें ऊपर सङ्गीत विद्यालय है जहाँ मुफ्तमें सङ्गीत सिखाया जाता है।

छात्रावासोंके पीछे अध्यापकोंके निवासगृह हैं, डाकखाना है क्लब महिलामोदशाला और बच्चोंका स्कूल है वहाँ जाकर क्या कीजिएगा।

यह आगे दाईं ओर लक्ष्मणदास अतिथि भवन और कोचीन अतिथिशाला हैं बाईं ओर इन्दौर अतिथिभवन है, रुकिए। यही मालवीयजीका बङ्गला है। इधर बाएँ हाथकी ओर वाले प्रकोष्ठमें मालवीयजीने अन्तिम श्वास ली थी। देखिये यही चित्र मालवीयजीका हैं। सिरपर सफेद साफा, गलेमें दुपट्टा, चन्दनका टीका माथेपर और यह अमर मुसकान—यही मालवीयजी हैं। चित्रकारने कमाल किया है। यह क्या—ये रुपये कैसे? अच्छा विश्वविद्यालयके लिये दे रहे हैं। तो मुझे क्यों देते हैं, प्रो०वाइस चान्सलरको दे दीजिएगा!

अच्छा तो अब तो प्रदक्षिणा भी हो चुकी और दक्षिणा भी दी जा चुकी, अब मुझे छुट्टी हो, प्रणाम। हाँ, उधर नगरकी ओर जा रहे हैं तो कमच्छामें सेंट्रल हिन्दू बालक विद्यालय, बालिका विद्यालय, रणवीर संस्कृत पाठशाला और टीचर्स ट्रेनिङ्ग कौलेज् अवश्य देख लीजिएगा। ये भी हिन्दू विश्वविद्यालयके ही अङ्ग हैं।

न जाने कितने यात्री काशी आते हैं और काशी हिन्दू विश्वविद्यालयको देखकर उसके निर्माताके जब उसकी तुलना करते हैं तो सहम जाते हैं। इसी शरीरने इतना बड़ा विश्वविद्यालय बनाया होगा? पर क्या आप समझते हो कि विश्वविद्यालय पूरा हो गया, अभी बहुत काम शेष है। शायद आधा ही काम हुआ होगा। अभी रुपएकी बहुत कमी है, स्वतन्त्र भारतके हिन्दू नागरिक शीघ्र ही यह कमी पूरी कर देंगे और पुण्यश्लोक मालवीयजीका संकल्प पूरा करके अपने ऋणसे उऋण होंगे।

स्वदेशकी पुकारपर

भिक्षायुग

बोझीली गाड़ीमें बँधे हुए बैल तीन तरहके होते हैं। एक तो साँटेकी फटकार सहते जाते हैं, देह लहूलुहान हुई रहती है पर उन्हें यही सन्तोष होता है कि शामको सानी भूसा मिल जायगा। ऐसे बैलसे मालिक खुश रहता है—बड़ा सीधा बैल है। दूसरा बैल गाड़ी खींचता है पर रोता है, ठहर जाता है, उसपर कोड़े पड़ते हैं, पर एक क़दम आगे नहीं बढ़ाता, बैठ जाता है। पैनी मारनेपर, पूँछ मरोड़नेपर भी टस-से-मस नहीं होता। मालिक मारते मारते थक जाता है पर वह बैल अपनी टेकपर डटा रहता है। ऐसे बैलसे मालिक ज्यादा परेशान रहता है। तीसरा बैल जब देखता है कि बोझ बढ़रहा है और निर्दयी मालिक साँटे-पर-साँटा बरसा रहा है तो वह तैशमें आकर कूद-फाँद करता है, रस्सी तुड़ाता है' जुआ गिराकर एक ओर फुफकार कर खड़ा हो जाता है और अवसर पाकर मालिकको सिँगियानेमें भी नहीं चूकता चाहे वह मार ही क्यों न डाला जाय। क्रमसे एक वेदान्ती है, दूसरा बौद्ध है, तीसरा कर्मयोगी है। एकका सिद्धान्त है कि संसारमें भोजन करना और लात खाना—ये ही दो काम हैं। दूसरा कहता है कि अगर कोई एक चपत लगावे तो दूसरा गाल भी उसकी ओर फेर देना कि कृपा करके इधर भी एक लगा दीजिए। तीसरा कहता है कि अगर कोई एक चाँटा लगावे तो तड़ातड़ उसको चार चाँटे लगा दो, तब उससे पूछो कि उसने क्यों मारा। पराधीन देशके राजनीतिक वायुमण्डलमें भी सदा इन्हीं तीन प्रकारके जीव रहा करते हैं। इनमेंसे कौन अच्छा और कौन बुरा है-यह हम क्या बतावें। यह तो आगेकी पीढ़ी ही बता सकेगी। इतिहासकारको पक्षपातसे दूर ही रहना चाहिए और फिर एक अरबी भाषामें कहावत भी है कि अपनी जबानको लगाम दो कहीं यह तुम्हारा सिर न उतरवा ले। हमारी भूमिकाका अर्थ स्पष्ट ही है।

अब हमारी कथा आरम्भ होती है। किस प्रकार आर्य्योंके सुखी देशके द्वार उत्तर-पश्चिमकी आँधियोंने खोल दिए और किस प्रकार हमारे देशके सुनहले खेतोंने एकके बाद दूसरे लुटेरोंको लालच देकर बुलाया और किस प्रकार सुन्द-उपसुन्दकी तरह हम लोगोंने इस देशकी लक्ष्मीके लिये एक दूसरेकी हत्या की, यह कथा उन पन्नोंमें लिखी हुई है जो सड़ गए हैं, पुराने पड़ गए हैं, बस,होलीकी देर है। मैजिक लालटेनकी तस्वीरोंकी तरह प्राचीन इतिहासने मनु और याज्ञवल्क्यके दृश्य दिखाए, बुद्ध और महावीरके संघारामोंका प्रदर्शन किया चाणक्यके गुप्तचरोंके कारनामे पेश किए, अशोकके स्तूप और स्तम्भ सामने खड़े किए गुप्त साम्राज्यका स्वर्ण सिंहासन और उनके नवरत्नोंका परिचय कराया, हर्षके बल और विक्रमको प्रकट किया, महमूद ग़ज़नी और मुहम्मद ग़ोरीको हिन्दू मन्दिरों और राज्योंकी नींव खोदते दिखलाया, फिर पद्मिनीकी भयङ्कर चिता, लँगड़े तैमूरकी

लूटमार, पानीपतके मैदानमें बाबर का युद्ध, अकबरका विशाल साम्राज्य, महाराणा प्रतापका प्रताप, जहाँगीरकी ऐयाशी, शाहजहाँका ताजमहल, औरङ्गज़ेबकी खूनी तलवार, छत्रपति शिवाजीकी वीरता, मुग़ल साम्राज्यका पतन, एक-एक करके सब हृदय आँखोंके आगे ला रक्खे। फिर देखा कि पछुवाँ हवामें पाल उड़ाते हुए जहाज़ चले आ रहे हैं और मुग़लोंका विशाल वृक्ष जहाँसे उखड़ा था वहाँ एक विलायती पौधा लगा दिया गया जो हिन्दुस्थानी कारीगरोंके खूनसे हम लोगोंकी कायरता और द्वेषके द्वारा सींचा जा रहा है।

पेड़ लहलहाने लगा। पर पेड़को खूराक चाहिए थी। हिन्दुस्थानियोंमें खून रह नहीं गया था। बेचारी अवधकी बेगमोंने अपने सतीत्वसे उसे बेबस होकर सींचा। कहना तो बहुत था पर इतना ही समझ लीजिए कि घड़ा भर चुका था। बस फूटनेकी देर थी। चर्बीसे चढ़नेवाले कारतूसोंने घड़ेमें जो ठेस लगाई तो १० मई सन् १८५७ ई० को उसमेंसे ज्वालामुखी फूट पड़ा। हिन्दुस्थान जबड़े खोले खड़ा था, जो आया वह पिस गया। जैसे जौके साथ घुन भी पिस जाते हैं, वैसे ही पुरुषोंके साथ निरपराध स्त्रियाँ और बच्चे भी तलवार और बन्दूकोंके घाट उतार दिए गए। हिन्दुस्थान उस समय इङ्गलैण्डके लहूके लिये जीभ लपलपा रहा था। सब स्वाहा हो गया, चारों ओर लावा, कालिख और राख फैला कर ज्वालामुखी शान्त हुआ और उसके शिखर पर रक्खा गया महारानी विक्टोरियाका सिंहासन।

क्या वह ग़दर था? तो हिन्दुस्थानी हिन्दुस्थानीको ही क्यों नहीं लूटता-मारता था। तो क्या वह धर्मकी रक्षाके लिए युद्ध था? तब कारतूस ही क्यों न नष्ट कर दिए गए। फिर क्या था? आप चाहें तो इसे स्वतन्त्रताका युद्ध कह सकते हैं या विदेशी जुएको कन्धेपरसे डालनेकी चेष्टा कह सकते हैं। इस ज्वालामुखीकी राख वैसे तो बहा दी गई और चारों ओर फिर शान्ति छा गई, पर अभी गर्मी बाकी थी। लोग स्वतन्त्र भारतका स्वप्न अभी देख रहे थे। बङ्गाल बेचारेपर सबसे अधिक मुसीबत आई और वह इतनी आई कि सीमा पार कर चुकी। शायद इसी लिये बङ्गालवाले पिस्तौलकी शरण लेनेमें नहीं हिचके। वहाँ बङ्किमचन्द्र चटर्जीके 'आनन्दमठ' ने बङ्गालको 'वन्दे मातरम्' सिखाना शुरू कर दिया था। उनकी भारत-माता बिल्कुल उनकी अधिष्ठातृ देवी कालीके जैसी ही थीं—'द्विसप्त कोटि भुजैर्धृत खर करवाले'। लोग सरकारसे चिढ़ चुके थे। कवि और लेखक सबका एक राग था, एक स्वर था। सभी तन्मय होकर स्वर मिला रहे थे 'वन्दे मातरम्'। सभी भारतमाताके शरीरके घावोंमेंसे पुकार-पुकारकर उसके बच्चोंको उसके अपमानोंकी याद दिला रहे थे। हृदय, वाणी और लेखनी तीनों भड़के हुए थे पर हाथ बँधे थे तलवारें छिन चुकी थीं। जब शत्रु बलवान् होता है तो दो ही काम होते हैं—या तो उसे भरपेट गाली दो या उसकी प्रशंसा करके उसके आगे गिड़गिड़ाकर, अपने आत्म-सम्मानका खून करके माफ़ी माँगो और अपना छुटकारा करा लो। पोरस और सिकन्दरका समय गया, जब बहादुर एक दूसरेकी क़द्र करना जानते थे। जवानोंमें जोश स्वाभाविक ही होता है। बङ्गालके विद्यार्थियोंने गुपचुप समितियाँ बनाईं, चोरी छिपे अस्त्र सस्त्र इकट्ठे करने शुरू किए। इनमेंसे कुछमें तो यहाँतक कड़ा नियम था कि वे अपने छातीसे खून निकालकर प्रतिज्ञा करते थे। उनका उद्देश्य था 'स्वराज्य', बस।

इधर जवान लोग अपनी तरहसे युद्धकी तैयारी कर रहे थे, उधर कुछ बड़े लोग सभा-समाज खोलकर उसमें राजनीतिक मामलोंपर वाद-विवाद कर रहे थे। सन् १८७६ ई० में बङ्गालमें 'इण्डियन एसोसियेशन' बना जिसका उद्देश्य था "समान राजनीतिक स्वत्वों और आकाङ्क्षाओंके आधार पर भारतीय जनता को सङ्घटित करना"।

फर भी वे प्रान्त भरमें घूमे। भला कौन इतनी दूर काले कोस जाने लगा। पर मालवीयजी डटे रहे और उन्हींका प्रयत्न था कि उस साल मद्रास जैसी दूर जगह भी पैंतालिस प्रतिनिधि पहुँच ही गए। ह्यूम साहब इनसे इतने प्रसन्न हुए कि इन्हें उत्तर-पश्चिमी प्रान्त (युक्तप्रान्त) एसोसिएशनका तथा स्थायी कांग्रेस कमेटीका मन्त्री बना दिया। इस पदपर ये कई बरसतक बने रहे।

मद्रासके बाद प्रयागकी बारी आई। असलमें ह्यूम साहब ही कांग्रेसको अगले वर्ष प्रयागमें ले जानेको उत्सुक थे और उन्होंने मालवीयजीको सबसे अधिक उपयुक्त व्यक्ति समझा, जो कांग्रेस को प्रयागमें निमन्त्रित करे और अधिवेशन सफल बनावे। स्वागतकारिणी-समिति बनी। कांग्रेस सरकारकी आँखोंमें खटकती थी। कांग्रेसके लिये जगह मिलनेमें भी दिक्कत हुई। स्वागत-समितिके मन्त्री मालवीयजी थे और रायबहादुर लाला रामचरणदास और बाबू चारुचन्द्र मित्र भी

कांग्रेसके जन्मदाताओंके साथ मालवीयजी
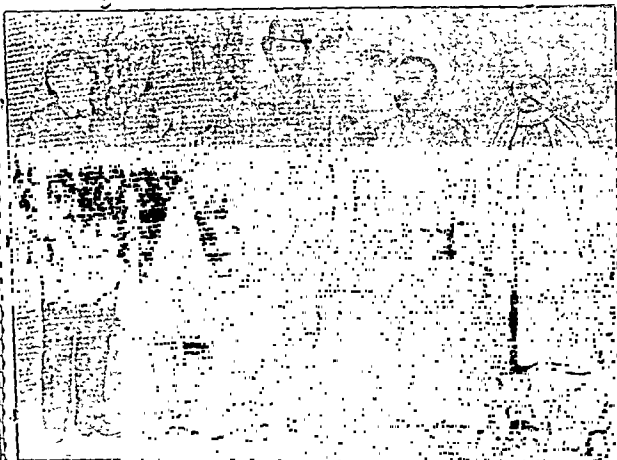
बाईं ओरसे श्री राजा रामपालसिंह, श्री कप्तान येनन, श्री ए० ओ० ह्यूम, श्री चारुचन्द्र मित्र और श्री पण्डित मदनमोहन मालवीयजी। सन् १८८८ ई० में आजसे पचास बरस पहले।

हाथ बँटा रहे थे। पण्डित विश्वम्भरनाथजी और पण्डित अयोध्यानाथजी शामिल हो गए। पण्डित अयोध्यानाथजीका आना था कि सब काम ज़ोरोंसे होने लगा और २६ दिसम्बर सन् १८८८ ई० को श्री जॉर्ज यूलके सभापतित्वमें ऐसा शानदार अधिवेशन हुआ कि सब लोग आजतक याद करते हैं। उसका एक कारण यह है कि मालवीयजी का कोई काम छोटा या भौंड़ा नहीं होता। उनका जो काम होता है वह विशाल और शानदार होता है।

कांग्रेसकी इस सम्मिलित शक्तिको देखकर सरकारके हाथ पाँव फूलने लगे। युक्तप्रान्तके गवर्नर और ह्यूम साहबके बीच बड़ी लिखा-पढ़ी हुई। लॉर्ड डफरिन यद्यपि बाहरसे कांग्रेसकी बुराई करते थे, पर उन्होंने नवम्बर सन् १८८८ ई० में जाते समय एक गुप्त आदेश रख छोड़ा कि कांग्रेसकी माँगोंपर ध्यान देना चाहिए अर्थात् व्यवस्थापिका सभाओंका फिरसे निर्माण हो। लॉर्ड क्रासके इण्डिया कौन्सिलस एक्टने कुछ सुधार दिए। बस नेता लोग राजनैतिक सङ्गठन छोड़कर नई कौन्सिलोंमें स्थान पानेमें जुट गए। बेचारी देशभक्ति वोटरोंके धक्कोंमें पिस गई। फल यह हुआ कि सरकारके मनमें जो हौआ बैठा हुआ था, वह दूर हो गया और कांग्रेसमें हर साल कोरे प्रस्ताव पास होते रहे।

कांग्रेसका कोई भी अधिवेशन ऐसा नहीं हुआ जिसमें मालवीयजीकी मधुर वाणी न सुनाई दी हो। कोई भी ऐसा महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव न हुआ जिसपर मालवीयजीने अपने विचार न प्रकट किए हों और यह खूबी रही है कि जनमतके विरोधमें बोलनेपरभी लोग उन्हें चुप होकर सुनते थे मानो कोई देवदूत कोई दैवी सन्देश लेकर आ पहुँचा हो। यह उनकी अलौकिक वाणी और उनकी आकर्षक मूर्त्तिका ही प्रभाव था, और यह प्रभाव उनका बुढ़ापा भी न छीन सका। प्रयागके सन् १८८८ ई० के अधिवेशनके बाद बम्बई, कलकत्ता और नागपुरमें कांग्रेसके अधिवेशन हुए। फिर सन् १८९२ ई० में प्रयागमें ही कांग्रेस करना तै हुआ। पर उन्हीं दिनों पं० अयोध्यानाथजीकी दुःखद मृत्युने सबको निराश कर दिया, यहाँतक कि कुछ लोगोंने प्रस्ताव किया कि संयुक्त प्रधान मन्त्री श्री उमेशचन्द्र बैनर्जीको सूचना दे दी जाय कि कांग्रेस प्रयागमें न हो सकेगी। किन्तु मालवीयजी प्रयागकी यह बदनामी कैसे सह सकते थे। वे फिर अपनी सारी शक्तियाँ लेकर जुट गए और फिर सन् १८९२ ई० में श्री उमेशचन्द्र बैनर्जीके सभापतित्वमें ही कांग्रेसकी आठवीं बैठक भी सकुशल हो गई।

इसके बाद लाहौर, मदरास, पूना, कलकत्ता, अमरावती, लखनऊ, अहमदाबाद और बम्बईमें कांग्रेसकी बैठकें हुईं। प्रस्ताव पास होते रहे पर उनकी वही गति हुई जो रद्दी कागज़की होती है। सरकार कानमें तेल डाले पड़ी रही। नेताओंके ज़ोरदार गर्जन, मेज़ोंपर पटके हुए हाथोंकी धमक और सुन्दर व्याख्यानोंपर बजी हुई तालियोंकी गड़गड़ाहट कुछ भी सरकारको न सुनाई दी। लोग ऊब उठे। यह सोचा गया कि अपने पैरोंपर खड़ा हुआ जाय। यह तो सभी जानते हैं कि जब अंग्रेज़की जेब कटती है तब उसे होश आता है। यह राय दी गई कि बृटिश मालका बहिष्कार किया जाय। कांग्रेसके पुराने अखाड़िए इस शस्त्रका प्रयोग करनेमें ज़रा सकुचाते थे। लॉर्ड कर्ज़नने भारतमें पधारकर बङ्गालपर तलवार चलाकर दो टुकड़े कर डाले। माननीय गोपाल-कृष्ण गोखलेके सभापतित्वमें काशीमें कांग्रेस बैठी और बङ्गभङ्गके विरोधमें बृटिश मालका बहिष्कार करना स्वीकृत हो गया, यद्यपि कांग्रेसने उसे अपने विस्तृत कार्य्यक्रममें लेना स्वीकार नहीं किया। इसी कांग्रेसकी एक घटना है। उसके साथ ही सोशल कान्फ्रेन्सका भी अधिवेशन हुआ था। कान्फ्रेन्सके लिये सब प्रबन्ध हो गया था। बम्बई हाईकोर्टके जज सर नारायण चन्दावरकर सोशल कान्फ्रेन्सके प्रधान मन्त्री थे। उनके ठहरानेका भार स्वर्गवासी राजा माधव-

लालने अपने ऊपर लिया था। जिस दिन प्रातः-काल सवेरे चार बजे उनको काशी पहुँचना था उसके एक दिन पहले शामको तार द्वारा मालूम हुआ कि श्री चन्दावरकर बड़े सवेरे पहुँचेंगे। कांग्रेस राजघाटके क़िलेपर हुई थी। वहाँ राजा माधवलालका खेमा था। पण्डित रामनारायण मिश्र रातको उनके यहाँ पहुँचे। उनसे भेंट नहीं हुई। उस घबराहटमें वे राजा माधवलालके लोहरा-बीरवाले बगीचेमें गए। वहाँ भी वे नहीं मिले कांग्रेसके मनोनीत सभापति श्री गोखलेजी ठहरे हुए थे। वे उनसे मिले और प्रार्थना की कि वे सर नारायणको अपने यहाँ ठहरा लें। उन्होंने कहा कि सर नारायणके लिये पूरा मकान चाहिए। वे 'रानडे महोदय' की तरह नहीं हैं कि किसीके साथ थोड़ी जगहमें भी निर्वाह करलें। बिना कुछ प्रबन्ध किए ही ईश्वरपर भरोसा कर वे सवेरे तीन बजे काशीस्टेशनपर पहुँचे। वे अत्यन्त व्याकुल थे। रेल आ गई पर संयोगसे सर नारायण न आए क्योंकि वे मोगलसरायमें रह गए थे और उन्होंने अपने नौकरोंसे कहला भेजा था कि वे दूसरी रेलसे, जो तीन-चार घण्टे बाद आनेवाली थी, आवेंगे। मिश्रजी पाँच बजे फिर माधवलालजीके खेमेमें गए। दिसम्बरके जाड़ेका सवेरा था। मालूम हुआ कि वे अभी सो रहे हैं। पीछेकी तरफ एक खेमेमें मालवीयजी दिखलाई दिए। वे शौचादिसे उसी समय निवृत्त हुए थे। उन्हें देखते पूछ बैठे कि "इतने सवेरे कहाँ आप?" उन्होंने सारी कथा कह दी। सुनकर मालवीयजी हँसकर बोले "सर नारायणको इसी खेमेमें ले आओ।" यह कहते ही वह खड़े हो गए और उन्होंने नौकरोंसे कहा कि असबाब सब सामने पेड़के नीचे ले चलो। मिश्रजीने उनसे प्रार्थना की कि वे ऐसा न करें; कहीं-न-कहीं बन्दोबस्त हो ही जायगा। परन्तु उन्होंने न माना। स्वयं भी असबाब बाहर उठाकर रखना शुरू कर दिया और उनसे कहा, जाओ स्टेशनसे ले आओ। रेलका समय निकट था। सर नारायण थोड़ी ही देरमें आ गए। वे उसी खेमेमें ठहर गए। दूरके दो पेड़ोंके नीचे पर्दा लगाकर श्री मालवीयजीने अपना प्रबन्ध कर लिया। दिन चढ़नेपर बहुतसे लोगोंने श्री मालवीयजीको उस पेड़के नीचे देखा। मालवीयजीकी ऐसी ही बातोंने उन्हें राष्ट्रकी पताका लेकर आगे चलनेका यश दिया है।

अगले वर्ष कलकत्तेमें कांग्रेस होनेवाली थी। क्षुब्ध बङ्गालने लोकमान्य तिलकका नाम सभापतिके लिये पेश किया। 'टाइम्स ऑफ़ इण्डिया' पत्रने सबसे पहले वावैला मचाया और हिन्दुस्थानी नेताओंको दो भागोंमें बाँट दिया—'गरम दल और नरम दल'। तिलकजी गरम दलवालोंमें थे। सरकारके पिट्ठू लोगोंके कान खड़े हुए और उन्होंने कुछ गोलमाल करके श्री दादाभाई नौरोजीको राज़ी कर लिया। ज्यों-त्यों करके श्री दादाभाई नौरोजी सभापति तो हुए पर उन्होंने गरम दलवालोंके उठाए हुए राष्ट्रीय झण्डेको झुकाना ठीक नहीं समझा और उन्होंने यह स्वीकार कर लिया कि कांग्रेसका ध्येय ऐसा स्वतन्त्र शासन है जैसा उपनिवेशों तथा ग्रेट बृटेन और आयरलैण्डमें है—अर्थात् एक शब्दमें 'स्वराज।'

अगले वर्ष डा० रासबिहारी घोषके सभापतित्वमें सूरतमें कांग्रेस हुई और गरम तथा नरम दलवालोंका द्वेष, जो धीरे-धीरे सुलग रहा था, भड़क उठा। गाली गलौज, हल्ला-गुल्ला हुआ। किसीने सर फ़िरोजशाह मेहतापर जूता चला दिया जो सुरेन्द्रनाथ बैनर्जीको छूता हुआ निकल गया और जिसे उन्होंने 'मेरी देशसेवाका इनाम' कहकर अपने घर टाँग रक्खा था। कुर्सियाँ उठाकर मारी गईं। पुलिस आई और उसने मण्डप ख़ाली करनेकी घोषणा की। बड़ी भगदड़ मची। पाँच मिनटमें सारा मण्डप ख़ाली हो गया। केवल एक गौर, धवल वस्त्रधारी व्यक्ति एक खम्भेसे लगकर खड़ा हुआ चुपचाप रो रहा था। उसकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह रही थी। वे मालवीयजी ही थे। दो एक युवक हाथ पकड़-

कर किसी तरह उन्हें बाहर लाए। मालवीयजीको इस दुर्घटनासे बड़ी पीड़ा हुई, बड़ा क्लेश हुआ और ये कहा करते थे कि सूरत कांग्रेसने मेरी तन्दुरुस्ती ले ली। मालवीयजीको ऐसा गहरा आन्तरिक दुःख हुआ कि उन्होंने बिस्तर पकड़ लिया। शायद देशभरमें इस घटनाका इतना अधिक दुःख किसीको न हुआ होगा।

कांग्रेसका रूप बदल गया, भिक्षा-युगसे कांग्रेसने विद्रोह-युगमें पदार्पण कर दिया।

विद्रोह युग
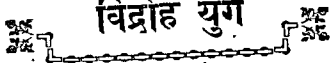
योँ तो लौर्ड कर्जनने जिस दिन बङ्गालके दो टुकड़े किए थे उसी दिनसे हिन्दुस्थानका राजनीतिक आकाश काला पड़ने लगा था। घटायेँ उठने लगी थीँ। बिजली कड़कने लगी थी। लौर्ड कर्ज़नके अपराधके कारण न जाने कितने अंग्रेज़ नर-नारियोंपर अचानक बिजलियाँ गिरीँ। सूरत कांग्रेसमेँ नरम और गरम दलवालोंमेँ जो झगड़ा हुआ उससे कांग्रेसकी हवा बदल गई। सारा देश ही दो दलोंमेँ बँट गया। पर शीघ्र ही कांग्रेसके बड़े बूढ़े लोगोंने मिलकर कांग्रेसकी नियमावलि बनाई और 'डमीनियम स्टेटस' (उपनिवेश, स्वातन्त्र्य) को अपना ध्येय बना लिया और यह भी निश्चय हुआ कि यह ध्येय वैध प्रयत्नोंसे ही प्राप्त किया जायगा। मालवीयजी गरम दलमेँ तो न मिल सके पर नरम दलमेँ भी न रह सके। कूट राजनितिज्ञकी भाँति वे विषकी जगह गुड़ खिलाकर ही अपना काम निकालना चाहते थे। एक बात और भी हुई कि इस बारके प्रस्ताव कोरे प्रस्ताव न रह गए। बङ्गालके प्रसिद्ध नेता विपिनचन्द्रपाल घूम-घूमकर राष्ट्रीयता और राष्ट्रीय शिक्षाका प्रचार कर रहे थे। सब जगह राष्ट्रीय विद्यालय जन्म ले रहे थे। साथ ही स्वदेशी और बहिष्कारका आन्दोलन भी ज़ोरोंपर था। जान पड़ता था कि देशमेँ जोश है, जान है। पचास बरसके बाद देश फिर आँखेँ मलकर, अँगड़ाई लेकर उठ बैठा। हाथके कपड़ेका उद्योग फिर शुरु हुआ। जुलाहोंके करघे फिर चेतने लगे। इधर मालवीयजी स्वदेशी प्रचारकी पताका लिये पुरानी दस्तकारीको जगाते हुए, उसकी पीठ ठोंकते घूम रहे थे। उस समय मालवीयजी एक अद्भुत शक्ति लिये हुए थे। सरकारी भवनोंमेँ से एक ओर उनकी गूँज सरकारको चेतावनी दे रही थी, दूसरी ओर कांग्रेसके मञ्चसे सारे देशको कर्त्तव्य-मार्ग सुझा रही थी। दोनों हाथ अपना काम कर रहे थे पूरी शक्तिके साथ।

पर इधर जैसे-जैसे लोग उभड़ रहे थे सिर उठा रहे थे, त्योँ-त्योँ सरकार उनको दबानेका प्रयत्न कर रही थी। ये सब आन्दोलन सरकारकी आँखोंमेँ खटकते थे। स्वदेशी आन्दोलनने बृटिश व्यापारको भी तो ठोकर लगाई थी। इन्हीं दिनोँ बङ्गालमेँ नौ नेताओंको देश निकाला हो गया। इधर पञ्जाबमेँ 'चिनाब नहरमेँ कर वृद्धि' किए जानेपर झगड़ा उठा। अप्रैलमेँ लाला लाजपतराय और सरदार अजीत सिंहको देश निकाला हो गया। सरकारने खुद ही पलीतेमेँ आग लगाई। ३० अप्रैल सन् १९०८ ई० को मुज़फ्फरपुरमेँ दो अंग्रेज स्त्रियाँ बमसे मारी गईं। अठारह बरसका युवक खुदीराम बोस बम फेँकनेके अपराधमेँ पकड़ा गया। उसे फाँसी हुई। स्वामी विवेकानन्दके भाई श्री भूपेन्द्र नाथ दत्त 'युगान्तर' मेँ खुल्लमखुल्ला हिंसावादका प्रचार कर रहे थे। १३ जुलाई सन् १९०८ ई० को लोकमान्य तिलक भी पकड़ लिए गए और पाँच दिनोंकी सुनवाईमेँ उन्हेँ छः सालके देश निकालेकी सज़ा हो गई। आन्ध्रके श्री हरि सर्वोत्तमराव भी नौ महीनेके लिये लद गए।

भारतमेँ इक्के दुक्के खून हो ही रहे थे उधर सन् १९०७ मेँ लन्दनकी एक सभामेँ मदनलाल

धिंगड़ाने सर कर्जन घाइलीको गोली मार दी। एक ओर हिन्दुस्तान हथेलीपर जान रखकर 'कण्ठ-कैनैव कण्ठकम्' का पाठ पढ़ रहा था, दूसरी ओर देशके पुराने अनुभवी नेता वैध विधिसे डमीनियन स्टेटके लिये कमर कसे तैयार खड़े थे। दोनोंका लक्ष्य एक ही था। पर एक तो जङ्गलके बीचसे होकर शेर, भेड़िये और बाघको मारकर अपनी जान जोखिममें डालकर छोटे रास्तेमें जङ्गल पार करना चाहते थे, दूसरे लोग साफ़ रास्तेसे चक्कर लगा रहे थे। पर चक्रव्यूहमें सहसा घुसकर चाहे अभिमन्यु मारा भले ही गया हो पर इससे धर्मराजकी आँखें खुल गईं। इन नौजवानोंके रक्तसे भारतका राष्ट्रीय आन्दोलन चमक उठा। सन् १६०८ ई० में लखनऊके प्रान्तीय राजनीतिक सम्मेलनके मालवीयजी अध्यक्ष बनाए गए। २८ दिसम्बर सन् १६०८ ई० को मद्रासमें कांग्रेसकी एक बैठक होनेके बाद २७ दिसम्बर सन् १६०६ ई० को लाहौरमें कांग्रेसका चौबीसवाँ अधिवेशन हुआ। चुने गए थे सर फिरोजशाह मेहता पर कांग्रेस होनेके छः दिन पहले ही उन्होंने इनकार कर दिया। अचानक सबकी दृष्टि प्रयागपर पड़ी और मालवीयजी ही राष्ट्रपति बनाए गए। मालवीयजीने अध्यक्षपदसे जो भाषण दिया वह लिखा हुआ नहीं था बिलकुल जबानी था। बड़ा जोशीला व्याख्यान हुआ। मालवीयजी परम वैष्णव ब्राह्मणका संस्कार लेकर हत्याका समर्थन नहीं कर सकते थे। उनके हृदयमें हिंसाका अभाव था। वे योद्धा तो थे पर ऐसे योद्धा थे जो तलवार न चलावें बल्कि उलटे हैमलिनके बाँसुरी बजानेवालेके समान सब लोग—उसके शत्रु भी—उसके पीछे पीछे चलने लगें। इसी लिये तिलकजीके इतने मित्र होते हुए भी वे पूरी तरहसे तिलकजीका साथ न दे सके। उन्होंने शुरुसे ही भारतकी ठीक नब्ज पहचानी थी। वे समझ गए थे कि ऐसे दुर्बल रोगीको तेज दवा अवश्य हानि पहुँचावेगी। हम समझते हैं कि जब जब भारतको तेज दवा दिए जानेका प्रस्ताव हुआ तब-तब मालवीयजीने वैद्योंको रोका, जल्दीसे अच्छा होनेकी इच्छा करनेवाला रोगी भी मालवीयजीपर बड़ा झुँझलाया पर उसमें तेज गोली पचानेकी शक्ति नहीं थी। सबको आखिर मालवीयजीके नुस्खेकी शरण लेनी पड़ी:—

'धीरे धीरे रे मना धीरे सब कुछ होय।
माली सींचे सौ घड़ा ऋतु आए फल होय॥

उन्होंने अपने भाषणमें महारानी विक्टोरियाकी घोषणाकी दुहाई भी दी पर साथ ही सरकारकी नीतिका भी जोरदार खण्डन किया। यह व्याख्यान मालवीयजीके स्वभावका प्रतिबिम्ब ही समझना चाहिए। वह शत्रुसे लोहा लेते समय, नाभिसे नीचे चोट लगानेकी नीयत तो रखते ही नहीं, साथ ही बन्दूककी नलीमें गोलीकी जगह फूल रखकर मारते हैं जिससे शरीरमें तो घाव नहीं होता पर हृदयमें हो जाता है। अगर भारतका शासन एक ही व्यक्तिके हाथमें होता तो शायद मालवीयजी कभीका उसे जीत चुकते। पर जहाँ हृदय ही न हो वहाँ निशाना लगाया ही कहाँ जाय। अपने अंग्रेजीके भाषणको उन्होंने गीता, भागवत, महाभारत और मनुस्मृति आदिके श्लोकोंसे अलंकृत किया था, जिनको अखबारोंमें पढ़कर उनके परम गुरु महामहोपाध्याय पण्डित आदित्यराम भट्टाचार्य बहुत प्रसन्न होते थे और कहते थे—'क्यों न हो— क्यों न हो, मालवीय व्यासका बेटा है न! वह शास्त्रीय अलंकार कहाँ जा सकता है।' सरकार अपनी बङ्गभङ्गकी नीतिकी निःसारता समझ चुकी थी पर वह एकदम उसे रद्द करके अपनी नाक नहीं कटाना चाहती थी लौर्ड मिण्टोके जाने पर लौर्ड हार्डिंज आए और लौर्ड मिडिल्टनकी जगह लौर्ड क्र भारतमन्त्री बने। सम्राट पञ्चम जार्जके राज्याभिषेकके अवसरपर बङ्गाल फिर जोड़ दिया गया और फिर हिन्दुस्थान राजभक्त बन गया जैसी इसकी सदियों पुरानी आदत है। पर इसी बीच एक दुर्घटना हो गई। सन् १९१२ में लौर्ड हार्डिंज जब जुलूसके साथ हाथीपर जा रहे थे, उनपर किसीने बम फेंक दिया। बाँकीपुर कांग्रेसमें इसपर बड़ा रोष

प्रकट किया गया पर इसीके बाद सरकारने हिन्दुस्थानको नागपाशमें बाँधना शुरु कर दिया। सन् १९१० ई० में ही प्रेस ऐक्ट क़ानून बन गया। सन् १९१३ ई० में उसके खिलाफ़ बड़े जोरोंसे कोलाहल मचा और कांग्रेसके मञ्चसे न जाने कितनी बार उसका विरोध किया गया।

सन् १९१४ ई० में गद्दे पर आरामसे लेटे हुए योरोपको जर्मनीकी सङ्गीनोंने चौंकाकर उठा दिया। जर्मनीके गर्जनसे एक बार सारा संसार दहल उठा। हिन्दुस्थानवाले अपना रोना-धोना भूलकर वृटिश साम्राज्यके क़िलेकी रक्षामें जी-जानसे जुट गए। भारतके असंख्य अनमोल लालोंने अपनी स्त्रियोंका सिन्दूर उतारकर अंग्रेज और फ्रान्सीसी स्त्रियोंका सुहाग सँवारा। अंग्रेज भले ही हमें कायर कहें, असभ्य कहें और अयोग्य कहें पर योरोपके समरक्षेत्रमें जब विजयश्री दौड़ी हुई कैसर विलियमकी ओर चली जा रही थी उस समय भारतीयोंनेही अपने वीर शरीरोंकी पालकी पर उसे सम्मानके साथ लन्दन पहुँचाया था। वीर हिन्दुस्थानियोंकी उस अमर सहायताका बदला कोई क्या देगा।

इन्हीं दिनों सन् १९१४ ई० में ही मद्रास कांग्रेस हुई और उसमें यह प्रस्ताव हुआ कि जिन देशोंसे हिन्दुस्थानी लोग निकाले जाते हों उनका माल यहाँ न मँगाया जाय। श्रीमती एनी बेसेन्टने इन्हीं दिनों लौर्ड पेण्टलैण्टके साथ होमरूल आन्दोलन शुरु किया। उन्होंने मदनपल्लीकी सारी थियोसोफिकल शिक्षण संस्थाओंका सम्बन्ध सरकारसे तोड़ दिया। श्री बी पी वाडिया और श्री सी पी रामस्वामी ऐयरने होमरूल लीगका जोरोंसे संगठन किया। "न्यू इण्डिया" पत्र इस होमरूल आन्दोलनका 'लाउड स्पीकर' बना। सरकारने फिर अपना डण्डा उठाया और १६ जून सन् १९१७ ई० को श्रीमती एनी बेसेण्ट, अरुण्डेल और वाडिया महोदय उटकमण्डमें नजरबन्द कर लिए गए। मालवीयजीने भी होमरूल आन्दोलनको लेकर दौरे किए और व्याख्यान दिए। उस समय मालवीयजीके होमरूलके व्याख्यानोंको सुनकर एक शायर साहबने फरमाया था—

कहते हैं मालवीजी हम होमरूल लेंगे।
दीवाने हो गए हैं गूलरसे फूल लेंगे॥

उसीका मुँहतोड़ जबाब कविवर मैथिलीशरण गुप्तजीने दिया—

जब होमरूल होगा वरवैह्न जन्म लेंगे।
हाँ हाँ जनाब तब तो गूलर भी फूल देंगे॥

श्रीमती एनी बेसेण्टके कैद हो जानेपर भी मालवीयजीके होमरूल आन्दोलनपर सरकारकी नजर न गई। मालवीयजीको देश अपना समझता था और सरकार अपना हितैषी समझती थी।

श्रीमती बेसेण्ट जब नजरबन्द हुई तो उनके आन्दोलनने और जोर पकड़ा। श्री मुहम्मद अली जिन्ना भी उसमें शामिल हो गए। सरकारी हुक्म और खुफिया पुलिसकी आँखोंमें धूल झोंककर भी वे अपने 'न्यू इण्डिया' और 'कौमन वील' नामक पत्रोंमें बराबर लेख लिखती रहीं। जितने दिन वे नज़रबन्द रहीं उतने दिन आन्दोलन और भी जोरोंसे चला जा रहा था, पर सरकार उनको छोड़नेसे पहले अपनी नाक टटोलती जा रही थी। श्री मौन्टेग्यूने अपनी डायरीमें एक कहानी लिखकर उसका एक परिणाम निकाला था। उन्होंने लिखा था :—"शिवने पार्वतीजीके बावन टुकड़े किए, किन्तु फिर देखा तो मालूम हुआ कि एक नहीं बावन पार्वतियाँ मौजूद हो गई हैं। ठीक यही दशा भारत-सरकारकी हुई, जब उसने श्रीमती बेसेण्टको नज़रबन्द किया।"

इधर भारतमें होमरूलका तूफान मचा हुआ था, उधर लन्दनमें एक शाही युद्धपरिषदकी बैठक हुई जिसमें भारतकी ओरसे महाराज बीकानेर और सर सत्येन्द्रप्रसाद सिंह शामिल हुए और इनकी बड़ी प्रशंसा हुई। इधर अप्रैल सन् १९१७ई० को कांग्रेसकी महासमितिकी बैठक हुई कि एक शिष्ट समिति विलायत भेजी जाय और वहीं कांग्रेसका अधिवेशन हो। इस शिष्ट मण्डलमें मालवीयजीका नाम भी पेश हुआ।

इसीके पहले माननीय अम्बिकाचरण मजूमदारकी अध्यक्षतामें लखनऊमें कांग्रेस हुई। यह कांग्रेस भारतमें राजनीतिक दृष्टिसे बड़े महत्त्वकी समझी जाती है। २२, २३, २४ अप्रैल १९१६ ई० को प्रयागमें पण्डित मोतीलाल नेहरूके निवास-स्थानपर कांग्रेस और मुस्लिम लीगके सदस्योंकी सम्मिलित बैठक की गई। बड़ी गर्मा-गर्मी बहसें हुईं पर हिन्दू-मुस्लिम एकता-सम्बन्धी फैसला हो गया। लखनऊकी कांग्रेसको देखकर यह जान पड़ने लगा था कि भारतके दिन फिर गए। देखा गया कि सन् १९०७ ई० के बाद कांग्रेस के मञ्चपर लोकमान्य तिलक और श्री खापर्डे, रासबिहारी घोष और सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी एकही साथ बैठे हुए हैं। फिर मेल हो गया। इस कांग्रेसमें सर जेम्स मेस्टन् भी अधिकारी वर्ग और अपनी धर्मपत्नीके साथ शामिल हुए थे।

इधर कुछ प्रान्त सत्याग्रहपर तुले हुए थे पर डा० एनी बेसेण्ट उसके लिये तैयार नहीं थीं, क्योंकि मौण्टेग्यू साहबके भारत-मन्त्री बननेकी आशा हो रही थी और वे भारत-मन्त्री बन भी गए। अब तो बड़ी आशा हुई और उन्होंने २० अगस्त सन् १९१७ ई० को उत्तरदायित्वपूर्ण शासन भार देनेकी घोषणा कर दी। १६ सितम्बरको डा० एनी बेसेण्ट भी रिहा हो गई थीं और २६ सितम्बर सन् १९१७ ई० को उन्हींकी अध्यक्षतामें कलकत्तेमें कांग्रेसकी बैठक हुई। इसके बाद बम्बईमें विशेष अधिवेशन हुआ और उसके बाद फिर दिल्लीमें मालवीयजीकी अध्यक्षतामें कांग्रेस हुई। उनकी वक्तृता बड़ी जोरदार हुई। उसका विषय वही था— 'मौण्टेग्यू चेम्सफ़ोर्ड योजना।' मालवीयजीने मौण्टेग्यू चेम्सफ़ोर्ड सुधारोंपर एक सुघड़, गम्भीर और विद्वत्ता पूर्ण लेख भी लिखा था और उनके गुणों तथा अवगुणोंपर भी काफ़ी प्रकाश डाला था।

यद्यपि बहुत दिनोंसे लोग 'किसान-किसान चिल्ला रहे थे और उन्हींका भला करनेका दावा भी करते थे पर कांग्रेसके पण्डालमें उनके लिये कोई जगह न थी। कांग्रेसमें रङ्ग-बिरङ्गे कपड़े नज़र आते थे, बड़े बड़े लोगोंकी मजलिस थी, फटे-पुराने कपड़ेवाले बेचारे ग़रीब गँवार कहलानेवाले किसानका वहाँ प्रवेश नहीं था। कांग्रेसमें टिकट भी बड़ा महंगा लगता था जिसे दोनों जून भरपेट भोजन न मिलता हो वह टिकटके लिये पैसे कहाँसे लावे। मालवीयजीने पहली बार कांग्रेसका द्वार इन बेचारे दरिद्र किसानोंके लिये खोल दिया और दो सौ किसान बिना टिकट कांग्रेसके पण्डाल में प्रवेश किए गए। पहली ही बार मालूम हुआ कि कांग्रेसमें किसानोंका भी स्थान है।

दिल्ली कांग्रेससे भारतको कुछ शान्ति नहीं मिली थी क्योंकि उसके बाद ही ६ फरवरी सन् १९१९ को विलियम विन्सेण्टने रौलट बिलका दर्शन कराया। मालवीयजीने इस अवसरपर जो बड़ी व्यवस्थापिका सभामें इस बिलपर भाषण दिया था वह उनके व्याख्यानोंमें प्रमुख समझा जाता है। निरन्तर साढ़े चार घण्टे तक उन्होंने व्याख्यान दिया, बहुत कहा सुना, सब पहलू समझाए पर पहला बिल मार्चके पहले सप्ताहमें पास हो गया और दूसरा वापस ले लिया गया। उधर गाँधीजीने घोषणा की कि यदि रौलट कमीशनकी बातें मानी गई तो सत्याग्रह शुरु हो जायगा। गाँधीजीका दौरा हुआ। लोगोंने जी खोलकर उनका स्वागत किया। गाँधीजी मैदानमें उतर पड़े। ३० मार्च सन् १९१९ का दिन हड़तालके लिये रक्खा गया पर बदलकर ६ अप्रेल कर दिया पर दिल्लीमें ३० मार्चको ही जलूस निकाला और गोली भी चली। ६ अप्रेलको हिन्दुस्तान भरमें प्रदर्शन हुआ। हिन्दू और मुसलमान दोनों मिलकर इस आन्दोलनमें लगे हुए थे।

इसी बार पञ्जाबमें जो दुर्घटना हुई उन्होंने मानो फूसमें आग लगा दी। लोर्ड कर्जन भी जो काम नहीं कर सके थे वह पञ्जाबके निरङ्कुश शासक माइकेल ओडायरने पूरी कर दी यहींसे कांग्रेसका युद्ध युग प्रारम्भ हो जाता है। यद्यपि कांग्रेसने सरकारका जो सामना किया है उसे

युद्ध नहीं कहना चाहिए किन्तु वह संसारके इतिहासमें एक नये तरहका युद्ध था जिसमें योद्धा लोग बिना हथियार लिये जाते हैं और बन्दूकोंकी गोलियोंकी फाग खेलकर या तो खेत रहते हैं या वीरोंकी तरह घायल होकर आते हैं और मुँहसे एक शब्द भी नहीं निकालते।

युद्ध-युग

कल्पना तो कीजिए कि एक स्थानपर हज़ारों आदमी इकट्ठे हों, जिनमें छः महीने के गोदीके बालकोंसे लेकर अस्सी बरस तकके बुड्ढे हों, फिर उनको एक बाड़ेमें बन्द करके उनपर गोली चलाई जाय और बम बरसाए जायँ, वे लोग जब अपने प्राण बचा-बचाकर इधर-उधर दौड़ रहे हों उस समय उन्हें ताक-ताककर गोली मार दी जाय, और थोड़ी ही देरमें जिस जगह चलते, फिरते, हँसते, बोलते ईश्वरकी सर्वश्रेष्ठ सृष्टि—मनुष्यके समूह— मुर्दोंके ढेर बन जायँ तो भला आप बताइए इसे आप किस नामसे पुकारेंगे। और फिर सोचिए कि नगरके बड़े धनी-मानी पुरुषोंको चींटीकी तरह रेंगकर अपने मकानमें जानेको मिले, खुले आम सड़कोंपर नङ्गा करके उन्हें बेंत लगाए जायँ, छोटे छोटे बच्चोंको धूपमें मीलों दौड़ाया जाय तो बताइए आप इसे क्या समझेंगे? आपने रावण और कंसकी कथाएँ पुराणोंमें पढ़ी होंगी। व्यासोंके मुखसे ऐसी-ऐसी बातें सुनकर आपके हृदय न जाने कितनी बार काँप उठे होंगे। सचमुच मनुष्यका हृदय तो ऐसी बातोंकी कल्पना भी नहीं कर सकता। पर बात सच है। जिनपर वे मुसीबतें आ चुकी हैं, जिन्होंने आँखोंसे इन घटनाओंको देखा है वे सभी जीवित हैं। कभी आप अमृतसर चले जायँ तो कितने ही बूढ़े आँखोंमें आँसू भरकर उन दिनोंकी कहानी सुनावेंगे। यह भी नहीं तो आप चुपचाप जलियानवाले बागमें पहुँच जाइए। दीवारोंपर जो गोलियोंके छेद बने हुए वे दिन-रात मुँह खोले हुए अपना इतिहास सुनाया करते हैं।

११ नवम्बर सन् १९१८ ई० को जर्मनीने सफ़ेद झण्डा फहराया। महायुद्ध रुक गया। सन्धि हो गई। उसीके बाद ही मालवीयजीकी अध्यक्षतामें दिल्ली कांग्रेस हुई थी। दमनकारी क़ानूनोंको उठाने और राजनीतिक क़ैदियोंको छोड़नेके प्रस्ताव भी पास किए गए थे। हिन्दुस्थान बड़ी आशा लगाए बैठा था। वह क्या जानता था कि अदृष्ट उसकी ओर हँसकर कह रहा था—

> ये न इहाँ नागर बड़ी जिन आदर तव आब।
> फूल्यो अनफूल्यो भयो गँवई गाँव गुलाब॥

पर हिन्दुस्थानका क्या दोष था। उस समयके प्रधान मन्त्री लॉयड जॉर्जने बड़ी तारीफ़ की थी और 'हिन्दुस्थानका खयाल रखने' का वचन दिया था। गुलामका काम है ख़ून देकर अपने मालिककी सेवा करना। मालिकके खुश होनेका अर्थ यह है कि गुलाम गुलामी करनेके लिये अत्यन्त योग्य है। गुलाम अगर मालिकसे अपनी सेवाओंका इनाम चाहे तो उसकी मूर्खता है, सिड़ीपन है। मालिक उसे जिन्दा रहने देता है यही क्या कुछ कम इनाम है? बेचारा भोला-भाला हिन्दुस्थान!

उसे इनाम मिल गया। ६ फ़रवरी सन् १९१९ ई० को विलियम विन्सेण्टने बड़ी कौन्सिलमें रौलेट बिलोंको पेश किया। ये दो बिल थे। एकके अनुसार क्रान्तिकारियोंके मुक़द्दमे तीन जजोंकी अदालतमें पेश होकर जल्दी फ़ैसला हो जाय, जिसकी अपील ही न हो सके। राज्यके विरुद्ध काम करनेका जिनपर सन्देह हो उन्हें पकड़ लिया जाय, रोक रक्खा जाय, ज़मानत ली जाय, इत्यादि। इसके लिये कहा जाता है कि यह ऐसा क़ानून था कि जिसमें "न अपील, न वकील, न दलील।"। दूसरे क़ानूनके द्वारा किसी राजद्रोही सामग्रीका प्रकाशन या वितरण

किया। वास्तवमें राजकुमारसे तो किसीकी शत्रुता न थी पर वे बृटिश सरकारके सम्राटके पुत्र थे। लोगोंको भड़कानेके लिये क्या इतना कम था? पर मालवीयजीने यह समझा कि चाहे शत्रु ही क्यों न हो, यदि वह अतिथि होकर आवे तो उसको आसन-पानी देना ही चाहिए। जिस समय पण्डित मोतीलाल नेहरू, देशबन्धु दास और मौलाना आज़ाद पिंजड़ेमें बन्द थे उस समय मालवीयजी हिन्दू विश्वविद्यालयमें राजकुमारका स्वागत कर रहे-थे और उन्हें उपाधि दे रहे थे। मालवीयजीके इस व्यवहारसे लोग बड़े नाराज़ हुए, बड़ी गालियाँ दीं, पर मालवीयजीके कानोंतक पहुँचकर वे वापस लौट गईं, हृदय तक न पहुँच सकीं। जिस हृदयमें भारतकी गमता चुप मारकर बैठी थी उसी हृदयमें उन्होंने प्रिन्स ऑफ वेल्सके मानको भी ले जाकर बैठा दिया। यही महापुरुषकी महत्ता थी।

दे पाए। दुनिया उसीका आदर करती है जो उसके मनके अनुसार चले। लोग समझने लगे कि 'मालवीयजी सरकारके विरुद्ध हैं, जेलसे डरते हैं, कट्टर ब्राह्मण हैं, जेलमें रहेंगे कैसे?'

लॉर्ड रीडिङ्ग मालवीयजीको बहुत मानते थे। मालवीयजीने उनको सलाह दी कि गान्धीजीसे मिलकर सब मामला ते कर लें नहीं तो व्यर्थमें बखेड़ा मचेगा। देशबन्धु दाससे जेलमें गान्धीजीकी बातचीत हुई। मालवीयजने इधर गान्धीजीको तैयार किया उधर लॉर्ड रीडिङ्गको। दिसम्बर सन् १९२१ ई० में गान्धीजीकी लॉर्ड रीडिङ्गसे बातचीत हुई और बहुतसी बातें ते हो गई थीं। पर सरकारी नीति नहीं बदली। गान्धीजीने वायसरायको लिखा कि यदि सरकारकी नीति एक सप्ताहमें न बदली तो सविनय अवज्ञा आन्दोलन शुरू होगा। इसी बीच ४ फ़रवरी सन् १९२२ ई० को गोरखपुर ज़िलेमें चौरीचौरामें एक भीड़ने पुलीस थानेमें आग लगा दी जिसमें पुलीसके सिपाही जलकर भस्म हो गए। मालवीयजी बम्बई जा रहे थे। ट्रेनमें यह समाचार पढ़ा और काँप गए। जान पड़ा कि जैसे बिजलीका तार छू गया हो। बारदोलीमें कांग्रेसकी कार्य्यसमितिकी बैठक हुई। मालवीयजीने बड़े करुण शब्दोंमें चौरीचौराकी घटनाका जिक्र करके गान्धीजीको समझाया। बारदोलीका युद्ध समाप्त कर दिया और असहयोग आन्दोलन तथा सविनय अवज्ञा आन्दोलन वहीं बारदोलीमें खोदकर गाड़ दिया। लोगोंका यही ख़याल बना रहा कि 'बड़े भाई' के कहनेमें आकर ही गान्धीजीने असहयोगको स्थगित किया सारे देशने गान्धीजीपर कीचड़ उछाली। मालवीयजी भी उससे न बच सके। जब फौज लड़ रही हो और विजय पानेके मौकेपर उन्हें रोक दिया जाय उस समय जो क्रोध और सन्तोप फ़ौजी सिपाहियोंमें होता है वही हुआ। लोगोंने कहा कि महात्माजीने आन्दोलन स्थगित करके बड़ी भारी ग़लती की है पर गान्धीजी यह बात समझ गए थे

हैं, जैसे किसी अनाथका सहारा न रहा हो या किसीके बुढ़ापेकी लकड़ी छिन गई हो। सारे राष्ट्रने अपने आँसुओंसे उस महापुरुषका श्राद्ध किया। यों तो बहुतसे महापुरुष संसारसे विदा हो गए पर लोकमान्य तिलककी मृत्युसे जैसा शोक देशमें फैला वैसा शायद कभी देखनेमें नहीं आया। उनकी चिताकी अग्नि बुझने भी न पाई थी कि महात्मा गान्धीने अगले दिन ही पहली अगस्त सन् १९२७ ई० को सरकारसे सम्बन्ध तोड़नेकी घोषणा कर दी। असहयोग शुरू हो गया। पर गान्धीजीको शायद यह ध्यान न था कि फ्रान्सके युद्धक्षेत्रसे लौटे हुए जर्मनीकी अग्निवर्षामें पराक्रम दिखानेवाले वीर भला डण्डोंसे कैसे पिट सकेंगे। गाँधीजीका शान्तियुद्ध एक नई बात थी। लोगोंने कभी ऐसा युद्ध देखा भी नहीं था जिसमें लोग हाथ जोड़कर शत्रुके सामने खड़े हो जायँ, वे डण्डे बरसावें और ये उसका हाथ मलें कि उन्हें कष्ट तो नहीं होता, वे गोलियाँ चलावें और ये देह लहू-लुहान होनेपर भी उसे फागकी पिचकारियाँ समझें। महायुद्धसे भी बड़ा युद्ध था। सरकारसे सम्बन्ध तोड़नेकी घोषणा हुई और युद्ध आरम्भ हो गया। एक ओर एक लँगोटा पहने, झण्डा लिये हुए एक मुट्ठी भर हड्डियोंवाला महात्मा था, उधर दूसरी ओर बृटिश साम्राज्य अपनी सेना, पुलिस और अस्त्र-शस्त्र लिये खड़ी थी। फिर एक बार वशिष्ठ और विश्वामित्रका युद्ध देखनेमें आया। देखते-देखते सरकार दमन करने लगी। गोलियाँ चलीं, लाठियाँ चलीं डण्डे चले। जेल भरने लगे। लोगोंकी जायदादें जब्त हुई। स्त्रियाँ, पुरुष और बालक 'महात्मा गाँधीकी जय' पर प्राण न्यौछावर करनेको निकल पड़े। गान्धीजी देवता बन गए। लड़कोंने स्कूल छोड़े, वकीलोंने वकालत छोड़ी, कितने लोगोंने सरकारी नौकरीको लात मारी। अजीब दिन थे वे भी। उस समय सभी यह सोच रहे थे कि स्वराज्य बस आ ही रहा है।

असहयोग आन्दोलनको नियमित और उचित समझते हुए भी मालवीयजी उसे समयोचित नहीं मानते थे। वे तब-तक भी यही समझते रहे कि रोगी कमजोर है, इतनी तेज दवा वह हज़म नहीं कर सकेगा। इलाहाबादमें देशकी तत्कालीन दशापर भाषण देते हुए मालवीयजीने कहा था:—

"सरकारी स्कूल और कौलेजोंका बहिष्कार करना ठीक नहीं है, यह बड़ा गलत रास्ता है कि हम स्कूलोंसे अपने बच्चोंको उठा लें। स्कूलमें बच्चोंको भेजनेसे सरकारको कोई मदद नहीं मिलती। उससे तो लोगोंका ही लाभ होता है। बच्चे शिक्षाके लिये तड़फ रहे हैं। जब देशी या राष्ट्रीय संस्थाएँ स्थापित हो जायँ तभी उनको वहाँसे उठाना चाहिए। स्कूलोंके बहिष्कारसे उच्च कर्मचारियोंपर भी कोई असर नहीं पड़ेगा क्योंकि वे बच्चोंकी शिक्षाकी कब कोई परवाह करते हैं।"

इसी समय किसीने उनसे पूछा कि आप क्यों नहीं गान्धीजीका साथ देते ? उसके उत्तरमें उन्होंने जवाब दिया कि गान्धीजी मनुष्य ही तो हैं। वह भी भूल कर ही सकते हैं। मेरी अन्तरात्मा कहती है कि अभी गान्धीजी देशको गलत रास्ता बतला रहे हैं। मैं *गान्धीजीकी आज्ञा माननेकी बजाय* अपनी आत्माके कहनेका पालन करूँगा।

राष्ट्रीय महासभाकी २० जुलाई सन् १९२१ ई० की बैठकमें, जो बम्बईमें हुई थी, उसमें सत्याग्रह और बायकाटपर वाद-विवाद हुआ। इसमें एक प्रस्ताव पास हो गया कि प्रिन्स औफ वेल्सका बायकाट किया जाय। मालवीयजीने उसका विरोध करते समय कहा कि प्रिन्स औफ़ वेल्सका भारत-आगमन केवल एक पुरानी प्रथाका पालन मात्र है। उनका स्वागत करके हम सरकारका साथ नहीं देना चाहते। फिर हम यह सोचते हैं कि प्रिन्सके आगमनसे भारतका बहुत कुछ हित होनेकी आशा है।

एक ओर जब सारा देश क्षुब्ध था तब राजकुमार प्रिन्स औफ वेल्सने भारतमें पैर रक्खे। जनता आपेसे बाहर हो गई थी, जहाँ-जहाँ राजकुमार गए वहाँ-वहाँ काले झण्डोंने उनका स्वागत

किया। वास्तवमें राजकुमारसे तो किसीकी शत्रुता न थी पर वे ब्रिटिश सरकारके सम्राटके पुत्र थे। लोगोंको भड़कानेके लिये क्या इतना कम था? पर मालवीयजीने यह समझा कि चाहे शत्रु ही क्यों न हो, यदि वह अतिथि होकर आवे तो उसको आसन पानी देना ही चाहिए। जिस समय पण्डित मोतीलाल नेहरू, देशबन्धु दास और मौलाना आज़ाद पिंजड़ोंमें बन्द थे उस समय मालवीयजी हिन्दू विश्वविद्यालयमें राजकुमारका स्वागत कर रहे थे और उन्हें उपाधि दे रहे थे। मालवीयजीके इस व्यवहारसे लोग बड़े नाराज़ हुए, बड़ी गालियाँ दीं, पर मालवीयजीके कानोंतक पहुँचकर वे वापस लौट गईं, हृदय तक न पहुँच सकीं। जिस हृदयमें भारतकी ममता चुप मारकर बैठी थी उसी हृदयमें उन्होंने प्रिन्स औफ वेलसके मानको भी ले जाकर बैठा दिया। यही महापुरुषकी महत्ता थी।

इन दिनों हिन्दू विश्वविद्यालय भी डोल उठा। विद्यार्थियोंने युनिवर्सिटी छोड़ दी। गान्धीजी और मालवीयजीका साथ साथ व्याख्यान हुआ। राजा महाराजा लोग गान्धीजीका व्याख्यान सुनकर उठ खड़े हुए। पर मालवीयजी अचल समाधि लगाए बैठे थे। दूसरा होता तो पागल हो उठता। उस समय जान पड़ता था कि हिन्दू युनिवर्सिटी अब गई, अब गई। पर मालवीयजीने अपने अनुपम धीरज और कुशलतासे उसे बचा रक्खा उन दिनों एक तस्वीर बाज़ारमें बिकती थी जिसमें हिन्दू विश्वविद्यायकी एक शिवमूर्ति बनाया था जिसे मालवीयजी मजबूतीसे सँभाले हुए हैं और श्रीमती बेसेण्ट उनके ऊपर फूल छोड़ रही हैं। बस इसीसे समझ लीजिए कि अपने सिद्धान्तकी रक्षा करके लोगोंकी दृष्टिमें मालवीयजी कहाँ पहुँच चुके थे। जब श्रीमती बेसेण्टने रौलट बिलका समर्थन किया था तो लोगोंने उनकी सारी सेवाओं और उनके त्यागके बदलेमें उन्हें "पूतना" की उपाधि दे दी थी, पर मालवीयजीको लोग न जाने क्यों कोई ऐसी उपाधि न दे पाए। दुनिया उसीका आदर करती है जो उसके मनके अनुसार चले। लोग समझने लगे कि 'मालवीयजी सरकारके पिट्ठू हैं, जेलसे डरते हैं, कट्टर ब्राह्मण हैं, जेलमें रहेंगे कैसे!'

लौर्ड रीडिङ्ग मालवीयजीको बहुत मानते थे। मालवीयजीने उनको सलाह दी कि गान्धीजीसे मिलकर सब मामला तै कर लें नहीं तो व्यर्थमें बखेड़ा मचेगा। देशबन्धु दाससे जेलमें गान्धीजीकी बातचीत हुई। मालवीयजने इधर गान्धीजीको तैयार किया उधर लौर्ड रीडिङ्गको। दिसम्बर सन् १९२१ ई० में गान्धीजीकी लौर्ड रीडिङ्गसे बातचीत हुई और बहुतसी बातें तै हो गई थीं। पर सरकारी नीति नहीं बदली। गान्धीजीने वायसरायको लिखा कि यदि सरकारकी नीति एक सप्ताहमें न बदली तो सविनय अवज्ञा आन्दोलन शुरू होगा। इसी बीच ४ फरवरी सन् १९२२ ई० को गोरखपुर ज़िलेमें चौरीचौरामें एक भीड़ने पुलीस थानेमें आग लगा दी जिसमें पुलीसके सिपाही जलकर भस्म हो गए। मालवीयजी बम्बई जा रहे थे। ट्रेनमें यह समाचार पढ़ा और काँप गए। जान पड़ा कि जैसे बिजलीका तार छू गया हो। बारदौलीमें कांग्रेसकी कार्य्यसमितिकी बैठक हुई। मालवीयजीने बड़े करुण शब्दोंमें चौरीचौराकी घटनाका जिक्र करके गान्धीजीको समझाया। बारदौलीका युद्ध समाप्त कर दिया और असहयोग आन्दोलन तथा सविनय अवज्ञा आन्दोलन वहीं बारदौलीमें खोदकर गाड़ दिया। लोगोंका यही खयाल बना रहा कि 'बड़े भाई' के कहनेमें आकर ही गान्धीजीने असहयोगको स्थगित किया सारे देशने गान्धीजीपर कीचड़ उछाली। मालवीयजी भी उससे न बच सके। जब फौज लड़ रही हो और विजय पानेके मौकेपर उन्हें रोक दिया जाय उस समय जो क्रोध और सन्तोप फौजी सिपाहियोंमें होता है वही हुआ। लोगोंने कहा कि महात्माजीने आन्दोलन स्थगित करके बड़ी भारी ग़लती की है पर गान्धीजी यह बात समझ गए थे,

कि अशिक्षित और अनियमित सेना लेकर लड़ना बुद्धिमानी नहीं है। मालवीयजीका अनुमान ठीक था—देश अहिंसाके युद्धके लिए अभी तैयार नहीं था।

इसीके बाद गान्धीजी पकड़े गए और उन्हें पाँच वर्षकी सज़ा मिली। बिना सेनानायकके जो दशा फ़ौजकी होती है वही दशा महात्मा गान्धी और अन्य नेताओंके पकड़े जानेपर देशकी हुई। मालवीयजी यद्यपि असहयोग आन्दोलनको असमयकी बात समझते थे किन्तु वे सरकारकी दमननीतिको सहन कर सके, उस समय देशने फिर मालवीयजीकी ओर देखा। सब काम छोड़कर मालवीयजी व्याकुल फ़ौजको ढाढ़स बँधानेके लिये निकल पड़े। सरकार इस बातपर तुली हुई थी कि हिन्दुस्थानकी इस जीती-जागती संस्थाको ऐसा कुचल दिया जाय कि वह फिर सिर ही न उठा सके। पर मालवीयजी उन लोगोंमें नहीं थे जो अपने मतका विरोध होनेपर राष्ट्रकी हत्या होते देख सकें। रात-दिन एक करके साठ बरसकी अवस्था और दुर्बल शरीर लेकर वे हिम्मत हारी हुई जनताको चुमकारते, पुचकारते, हिम्मत बँधाते, पेशावरसे डिब्रूगढ़ (आसाम) तक घूमे। स्वराज्य और स्वदेशीका उपदेश दिया और हिन्दू-मुसलिम एकताका मर्म समझाया। उनकी इस यात्रामें सरकारने कई बार उनपर दफ़ा एक सौ चौवालीस लगाई लेकिन मालवीयजीने एक बार भी उसका पालन नहीं किया। सरकारने भी न जाने क्यों उन्हें बन्दी न किया। चाहे ऊपरसे सरकार भले ही कहती हो कि उनके व्याख्यानसे उपद्रव होगा, अशान्ति होगी, लेकिन मनमें वह सदा यही समझती रही थी कि मालवीयजीके व्याख्यानसे कभी अशान्ति नहीं हो सकती। न जाने कितनी बार मालवीयजीके उँगली उठाने मात्रपर सभाओंमें सन्नाटा छा गया, उनके खड़े होते ही झगड़ा समाप्त हो गया और उनकी मनोहर वाणीके सुनते ही कितने ही टूटे दिल मिल गए, फिर भला उनसे यह आशङ्का ही क्यों की गई? गोरखपुरमें चौरी-चौरामें जब आप मद्यपान विरोधके विषयमें व्याख्यान दे रहे थे उसी समय उन्हें सरकारी आज्ञा मिली कि वे वहाँ भाषण न दें। पर उन्होंने न माना और वहाँ मद्यपानसे दूर रहने और विदेशी वस्त्र न ख़रीदनेका उपदेश देकर आप भटपुर गए। वहाँ भी आपका व्याख्यान हुआ। आपके गोरखपुर लौटते ही आपको फिर आज्ञाएँ मिलीं, जिनमें आपको पूरे गोरखपुर ज़िलेमें व्याख्यान देनेके लिये मनाही की गई। किन्तु फिर भी आपने बरहज देवरिया, रामपुर, कासिया, पड़रौना, गोरखपुर खलीलाबाद—इतने स्थानोंमें व्याख्यान दिए ही। जिन सज्जनोंको मालवीयजीसे जाति-वैमनस्य फैलानेकी आशङ्का हुई थी वे यदि इनमेंसे एक भी व्याख्यान सुन पाते तो उन्हें अपनी मूर्खताके लिये पछताना ही पड़ता। गोरखपुर पहुँचकर, वहाँ लोगोंको रक्षा-दलोंकी स्थापना करनेका उपदेश देते हुए चौरीचौरा गए। वहाँ आप लोगोंकी करुण कथाएँ सुन ही रहे थे इतनेमें आपको नोटिस दी गई। किन्तु वे फिर भी घटनास्थल मन्देरा बजार पहुँच ही गए। इसी प्रकार गौहाटीमें और पञ्जाबके कई स्थानोंमें आप पर दफ़ा एक सौ चौवालीस लगाई गई, पर आपने निडर होकर उन आज्ञाओंका उल्लंघन किया और अपना काम करते रहे।

सन् १९२२ ई० की फ़रवरीमें जब गान्धीजी पकड़ लिए गए तब स्वराज्य पार्टी बन चुकी थी और सन १९२३ ई० में कांग्रेसने चुनावकी लड़ाई लड़नी शुरू कर दी। अगले वर्ष सन् १९२४ ई० में गान्धीजी छूट गए। कोहाटमें हिन्दू-मुस्लिम दङ्गा हुआ। एक साथ रहनेवाले, एक वायु, एक जल और एक अन्नसे पलनेवाले हिन्दू-मुसलमान किसके इशारेपर एक दूसरेकी जानके गाहक बन गए, इसे कौन समझावे। पर हुआ यही। मालवीयजी अपनी सहायता लेकर वहाँ पहुँचे और मुसलमानोंके बीचमें बैठकर उन्होंने जो निडर होकर उन्हें ऊँच-नीच समझाया उसे वहाँके लोग अब-

तक याद करते हैं। इसीपर गान्धीजीका इक्कीस दिनका उपवास हुआ। बेचारे हिन्दू मुसलमानों-को क्या? कठपुतलियोंकी तरह दूसरेकी डोरीपर वे नाच रहे थे। इसी समय बङ्गालका भयङ्कर काला कानून चल निकला।

अगले वर्ष भारतके दो महापुरुष—बङ्गालके दो प्रतापी सिंह श्री चित्तरञ्जनदास और सर सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी चल बसे। गोखले और लोक-मान्य तिलककी यादगार हरी हो गई। हिन्दु-स्थान बेचारा फिर जी भरकर रोया।

सन् १९२६ ई० में कलकत्तेमें दङ्गा हुआ। मालवीयजीको वहाँ जानेकी आज्ञा न मिली पर मालवीयजीने पहलेकी तरह इसकी परवाह नहीं की। हिन्दू युनिवर्सिटीसे जब आप जा रहे थे तो बहुतसे लोग उनसे मिलने गए और कुछ लोगोंने उनके स्वास्थ्य और उनके बुढ़ापेका ध्यान करके कहा कि महाराज यदि न जाते तो अच्छा था, सरकार आपको बीचमें ही पकड़ लेगी।' उस समय मालवीयजीने सिर उठाकर बड़े तेजके साथ कहा 'देखें सरकार कैसे रोकती है? और फिर पकड़े तो डर क्या है।' यह कहकर उन्होंने एक श्लोक कहा—

यदि समरमपास्य नास्ति मृत्यो
र्भयमिति युक्तमितोऽन्यतः प्रयातुम्
अथ मरणमवश्यमेव जन्तोः
किमिह मुधा मलिनं यशः कुरुध्वम्

अड़सठ वर्षके वृद्धके मुँहपर एक युवक सैनिकका जोश था। वे कलकत्ते गए, वहाँ व्याख्यान दिया और सरकार चुप मारकर बैठ रही। क्या मालवीयजी सरकारसे डरते हैं?

सन् १९२६ ई० में स्वराज्य पार्टीवालोंका मन कौन्सिलोंसे भर गया। सरकारने उनकी एक न सुनी। सरकारकी इस मनमानीको रोकनेका कोई उपाय भी तो न था। ये लोग व्यवस्थापिका सभासे बाहर निकल आए। इसीके बाद साइमन कमीशनका आगमन हुआ जिसमें एक भी भारतीय नहीं रक्खा गया था। इससे बड़ा हिन्दुस्थानका

और क्या अपमान हो सकता था? देश भरने हड़ताल मनाई, जहाँ-जहाँ कमीशन घूमा वहाँ-वहाँ काले झण्डे दिखाए गए। ३१ अक्टूबर सन् १९२८ ई० की बात है यह कमीशन लाहौर पहुँचा। मालवीयजी और लाला लाजपतराय स्टेशनपर बड़ी भीड़के साथ पहुँचे। सात बरस पहले जिसने प्रिन्स ऑफ़ वेल्सका अपनी बदनामी सहकर स्वागत किया था वह साइमन कमीशनके बहिष्कार के लिये जी-जानसे जुट गया। कितना भारी परिवर्त्तन हुआ होगा? वहाँ पुलिस और गोरे सिपाही मौजूद थे। डण्डे चले। लाला लाजपत-रायको भी कई डण्डे लगे और वही चोट १७ नवम्बरको उनके प्राण ले गई। जवानोंका जोश मत पूछिए। लाला लाजपतरायकी मृत्युसे पञ्जाब गरज उठा और उस क्रुद्ध सिंहके पहले शिकार लाहौरके पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट सॉण्डर्स साहब हुए।

इसी साल दिल्लीमें सर्वदल सम्मेलन हुआ। मईमें फिर बम्बईमें सम्मेलनकी बैठक हुई और पण्डित मोतीलाल नेहरूकी अध्यक्षतामें एक कमेटी बैठी। लखनउमें जब सर्वदल सम्मेलनकी बैठक हुई तो कुछ हेरफेरके साथ पण्डित मोती-लालजीकी डमिनियन स्टेटसकी सिफ़ारिश स्वीकार करली गई। कलकत्तेमें सन् १९२८ ई० में जब कांग्रेस हुई तो पूर्ण स्वतन्त्रता और डमिनियन स्टेटसके झगड़ेको लेकर बड़ा वाद-विवाद चला पर नेहरू-रिपोर्ट ही मञ्जूर हो गई और यह घोषणा कर दी कि यदि सरकार इसे नहीं मानेगी तो सत्याग्रह शुरू हो जायगा।

सन् १९२९ ई० की ८ अप्रैलको भरी असे-म्बलीमें बम्ब गिरा। भगतसिंह और बटुकेश्वरदत्त पकड़ लिए गए। एक बार सारे देशने इन दोनों वीरोंके साहसकी प्रशंसाकी, घर-घर उनके चित्र टँग गए और इन दोनोंका नाम अमर हो गया। इधर मालवीयजीने लौर्ड इरविनसे मिलकर एक गोलमेज़ परिषद् करानेकी बातचीत छेड़ी। लौर्ड इरविनकोभी यह बात जँची और लिखा-पढ़ी

शुरू हो गई। ३१ अक्तूबरको लौर्ड इरविनने गोल मेज परिषद्की घोषणा की इस गोलमेज परिषद् करानेका श्रेय एकमात्र मालवीयजीको ही है। सन् १९२९ ई० को पण्डित जवाहरलाल नेहरूके सभापतित्वमें काग्रेस हुई और रही सही कसर भी पूरी हो गई। पूर्ण स्वतन्त्रता ही भारतका ध्येय घोषित किया गया। काग्रेसके सदस्योंने व्यवस्थापिका सभाओंसे इस्तीफा दे दिया और २६ जनवरीको स्वतन्त्रता दिवस मनानेकी घोषणा की गई। १२ मार्चको गान्धीजीका सत्याग्रह प्रारम्भ हो गया। फिर सरकारका दमन, फिर वही चक्र, जेल, जब्ती, डण्डे और गोलियाँ। सरकारकी इम्पीरियल प्रेफरेन्स पोलिसी (शाही पक्षपात नीति) के कारण २ अप्रेलको मालवीयजी और सात अन्य राष्ट्रीय नेता भी व्यवस्थापिका सभाको नमस्कार करके चले आए। पेशावरमें गोलियाँ चलीं, बाइस आदमी मारे गए। मालवीयजी व्याकुल होकर पञ्जावकी तरफ दौड पडे। उनका यह पञ्जावका दौरा अलौकिक ही था। लोग मालवीयजीको देखनेके लिये पागल थे। स्टेशन स्टेशनपर उनकी गाडी रोकी जाती थी। लोग बिना उनके दर्शन किए उनका व्याख्यान सुने, उन्हें आगे नहीं बढने देने चाहते थे। एक स्थानपर तो लोग रेलके अञ्जनके सामने लेट गए, बैठ गए और मालवीयजीको बिना व्याख्यान दिए आगे नहीं बढने दिया। यह भी क्या दृश्य था ?

मालवीयजीके सबसे छोटे पुत्र पण्डित गोविन्द मालवीय एम्० ए०, एल्० एल्० बी० इन दिनों उनके साथ थे। पञ्जावने सचमुच जिस उत्साह भक्ति, श्रद्धा और तन्मयतासे अपने पुराने रक्षक और नेताका स्वागत किया था, वह पञ्जावके ही योग्य था।

मालवीयजीको आज्ञा मिली कि पेशावरमें नहीं प्रवेश कर सकते, किन्तु वे न माने। सरकारने उनको पकडा तो नहीं पर रास्तेमें ही उनको दूसरी गाडीमें बैठाकर वापस कर दिया। २५ अप्रैलको श्री विट्ठलभाई पटेल भी अपनी कुर्सी खाली करके चले आए। काले क़ानून जारी हो गए। गान्धीजी नमक कानून ६ अप्रेलको तोड चुके थे। सारा देश नमक बनानेमें लगा हुआ था। २ मईको गान्धीजी पकडे गए, १५ मईको शोलापुरमें और १६ अगस्तको पेशावरमें मार्शल लौ जारी हुआ। युवकोंका जोश फिर उमडा। पिस्तौलें दगने लगीं। बेचारे कई अग्रेज उनके निशाने बन गए।

* लोग अञ्जनके सामने पटरीपर बैठ गए हैं।

पहली अगस्त सन् १९३० ई० की बात है। लोकमान्य तिलककी पुण्यतिथि मनाई जानेवाली थी। धोबी तालाब, तक जुलुस पहुँचा ही था कि झडी लग गई, पर जलूसका एक आदमी भी इधर उधर
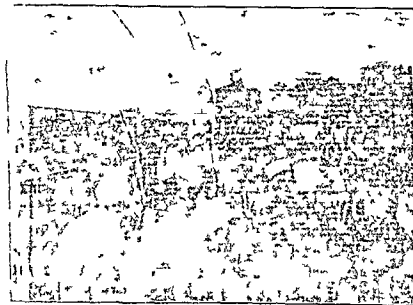
न हुआ। ज्यों ज्यों जलूस आगे बढता था, त्यों-त्यों लोग बढते चले जा रहे थे। लोग छाते रखते हुए भी उन्हें नहीं लगा रहे थे। आगे आगे महिलाएँ थीं और श्रीमती हंसा मेहता जलूसकी नेता थीं। हार्नबी रोडकी चौमुहानीपर फ्लफशेड रोडपर पुलिसके हथियारबन्द दस्तेने जलूस रोक दिया। बहुत देर बैठे हो गई। पुलिसने सरकारकी आज्ञा सुनाई, पर मालवीयजी बोले कि हम ऐसी अन्यायपूर्ण आज्ञा नहीं मानेंगे और उन्होंने लोगोंसे कहा कि बैठ जाओ। लोग बैठ गए। थोड़े इण्डे

सन् १९३० ई० में मालवीयजीकी पञ्जाब यात्राके कुछ दृश्य।
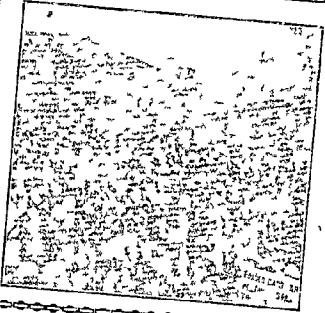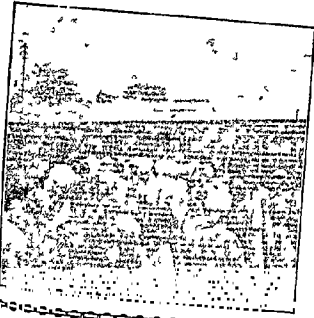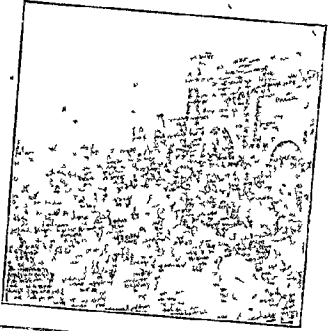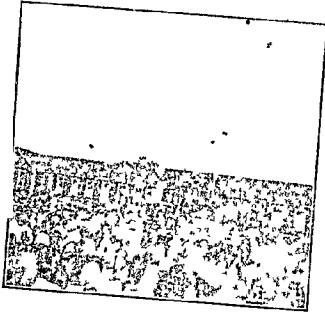
चले, पर लोग टस से-मस न हुए। इसी समय मालवीयजीकी पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्टसे एक झड़प हो पड़ी।

पुलिस सु०—जलूस आगे नहीं आ सकता।

मालवीयजी—अच्छा हम यहीं खड़े रहेंगे।

पुलीस सु०—कबतक?

मालवीयजी—अपने जीवनके अन्तिम दिनतक। तुम्हींको अपने देश वापिस जाना होगा।

पुलीस सु०—जब मैं पचासका होऊँगा तब यहाँसे जाऊँगा।

मालवीयजी—पीछे शत्रु बनकर जानेकी अपेक्षा इस समय मित्र होकर जाना ज्यादा अच्छा है।

पुलीस सु०—आपलोग स्त्रियोंको जुलूसके आगे रखकर कोई बहादुरी नहीं दिखलाते।

मालवीयजी—कायरता तो तुम्हारी है, जो यदि यह गैरकानूनी जुलूस हो तो क्यों नहीं गिरफ्तार करते। और क्या वे दिन भूल गए जब इङ्गलेण्डमें महिला आन्दोलन चला था, और तुम पुरुषोंने स्त्रियोंपर अत्याचार किए और फिर अन्तमें स्त्रियोंने तुमलोगोंकी बुरी गत बनाई थी।

पुलीस सु०—(झेंपकर) मैं तो भारत सरकारकी आज्ञाका पालन कर रहा हूँ।

मालवीयजी, सरदार पटेल श्रीजयरामदास दौलतराम, डा० हर्डीकर, श्री शेरवानी इत्यादि कार्यकारिणीके सदस्य और बम्बई कांग्रेस कमिटीके सदस्य कुल मिलाकर चालीस आदमी पकड़ लिए गए। ये लोग लौरीमें भरकर बाइकला जेल पहुँचाए गए। फिर भीड़पर पुलीसने बेतरह डण्डे चलाए पण्डित गोविन्द मालवीय अब भी कभी कभी उस डण्डेकी चोटको याद करके अपना सिर टटोल लिया करते हैं। शनिवार २ अगस्तको दोपहर साढ़े ग्यारह बजे चीफ प्रेसिडेन्सी

बाईकला जेलके फाटकपर सब नेताओंके साथ मालवीयजी पहुँचाए गए।

मजिस्ट्रेटके यहाँ मुकदमा हुआ। मालवीयजीपर एक सौ रुपया जुर्माना हुआ, जुर्माना न देनेपर पन्द्रह दिनकी सादी कैद।

इधर मालवीयजीकी गिरफ्तारीकी खबर देश भरमें पहुँच चुकी थी। हिन्दू युनिवर्सिटीमें जब यह समाचार आया तो विद्यार्थी एकदम आपेसे बाहर हो गए और एक सौ बीस विद्यार्थियोंका एक दल बम्बईमें सत्याग्रह करनेके लिये निकल पड़ा ये लोग जिस दिन बम्बई पहुँचे उसी दिन शामको मालवीयजी छोड़ दिए गए। मालूम हुआ कि किसीने उनका जुर्माना दे दिया। मालवीयजीकी गिरफ्तारीपर काशीकी सार्वजनिक सभाने मालवीयजीको बड़ी बधाई दी थी और बाबू भगवानदासने कहा भी था कि "मालवीयजीका पकड़ा जाना राष्ट्रीय यज्ञकी पूर्णाहुति समझनी चाहिए।"

मालवीयजीको इस बातका दुःख बना ही रहा कि किसीने उनका जुर्माना दे दिया। इसीके बाद २७ अगस्त सन् १९३० ई० को दिल्लीमें कांग्रेस कार्य्यसमितिकी बैठक डाक्टर अन्सारीके घर हुई। सब कारवाई करके लोग बैठे बातचीत कर रहे थे। अचानक पुलीस आई। कांग्रेस कार्य्य समिति ग़ैर क़ानूनी तो घोषित कर ही दी गई थी। ये लोग पकड़ लिए गए और सबको छः महीनेकी सजा हो गई। ये लोग दिल्ली जेलमें पहुँचाए गए।

मालवीयजीके लिये जेलमें जाना कोई मामूली त्याग नहीं था। जिसका खाना पीना और रहना-सहना उसकी आदत बन गई हो जिनका छोड़ना उनके लिये प्राणत्यागके समान महत्व रखता हो, उसका बन्दी होजाना कोई साधारण त्याग नहीं समझना चाहिए। मालवीयजीने जो आजतक तपस्या की थी वह तपस्या इस महान्क्लेशसे और भी अधिक प्रदीप्त हो उठी। इतने दिन बाद लोगोंने वास्तवमें मालवीयजीको पहचाना। उन्हें ऐसे बन्दी जीवनकी आदत नहीं थी। कोयल जब खुली रहती है और गाती रहती है तो उसे कुछ अनोखा ही सुख मिलता है, पिंजडेमें दाना पानी मिलनेपर भी उसकी वह मस्ती नहीं रहती। मालवीयजीका बोलना बन्द हो गया। यह उनके लिये बड़ा हानिकारक सिद्ध हुआ। लवाका मुँह तो बन्द कीजिए फिर देखिए उसकी क्या हालत होती है। जो मालवीयजी दस बरस पहले वाइसरायकी स्पेशल ट्रेनपर चढ़कर प्रयागसे दिल्ली आए थे वही मालवीयजी सरकारके बन्दी बनकर स्पेशल ट्रेनमें दिल्लीसे नैनी जेल पहुँचाए गए। दिनोंका फेर था। यहां उन्हें बहुतसे साथी भी मिल गए। यहाँ पण्डित जवाहरलाल और आर० एस० पण्डित भी थे। मालवीयजीने श्री पण्डितसे जर्मन भाषा पढ़नी शुरू करदी। यहाँ उनके मनकी एक बात उन्हें मिल गई कि वे शामको सब कैदियोंको भागवत और महाभारतका उपदेश देने लगे। पर थोड़े दिनों बाद ही वे बीमार पड़ गए। वहाँसे
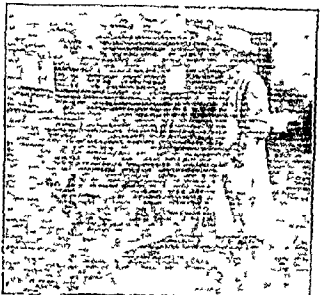
उपचारके प्रात काल मालवीयजी कैम्पियन सिविल अस्पताल इलाहाबादसे टहलकर मोटरमें सवार हो रहे हैं। कितने दुर्बल हो गए हैं।
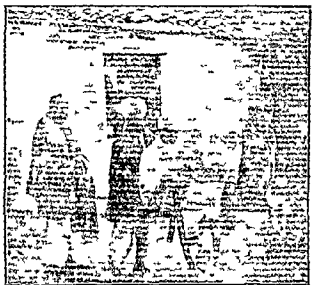
जेलसे छूटनेके बाद इलाहाबादसे बनारस जाते समय इतने दुर्बल थे कि ज़रा भी पैदल नहीं चल सकते थे।

सरकारी अस्पतालमें भेजे गए जहाँसे आप सहसा छोड़ दिए गए।

अगले साल सन् १९३१ ई० की २३ मार्चको भगतसिंह और उसके दो साथियोंको फाँसी हुई। उनको बचानेके लिये सारे देशने हस्ताक्षर करके वायसरायके पास पत्र भेजे, पर वायसरायने एक न सुनी। उन दो-तीन जवानोंसे ही सरकार इतना डरती थी कि उनका जीवन बचाकर अपनी उदारताका परिचय देनेमें भी उसे भय लगता था। २९ मार्चको करॉचीमें कांग्रेस हुई। भगतसिंहके बारेमें मालवीयजीने जो व्याख्यान दिया, वह बस पढ़ने ही लायक है। कोई भी सहृदय बिना रोए नहीं रह सकता।

गोलमेज परिषद्

इसी बीच लन्दनमें पहली गोलमेज़ परिषद् हो चुकी थी। २५ दिसम्बर सन् १९३१ को कांग्रेसके बड़े नेता छूट गए। सप्रू जयकरके उद्योगसे और मालवीयजीके सहयोगसे गान्धी—इर्विन समझौता हुआ। लोग बड़े निराश हुए। पर करॉची कांग्रेसमें उसका समर्थन हो गया और कांग्रेसने गान्धीजीको ही गोलमेज़के लिये अपना प्रतिनिधि चुना। मालवीयजीको भी गोलमेजका *निमन्त्रण मिला था और वे तैयार हो गए। उनका तैयार होना एक ऐतिहासिक घटना ही समझनी चाहिए। एक ओर जन्म-जन्मान्तरके संस्कार उन्हें अपनी ओर खींचते जा रहे थे, दूसरी ओर खड़ी हुई थी पैंतीस करोड़ भारतवासियोंकी माँ, जिसके तनपर वस्त्र नहीं थे शरीरपर मांस नहीं था, और जो चुपचाप आँसू बहा रही थी। इस द्वन्द्वने मालवीयजी को कितना परेशान किया होगा यह वे ही लोग समझ सकते हैं जो मालवीयजीको जानते हैं। पर माँके आँसुओंमें पुरानी रूढ़ियाँ बह गईं। 'राजपूताना' जहाज़की साटी बजी और मालवीयजी अपने उसी ब्राह्मण-वेशमें सवार हो गए। मालवीयजी समझ रहे थे कि शेर घास खाने लगेगा, साँप डसना छोड़ देगा, लोमड़ी अपनी चालाकी छोड़ देगी। सतयुगकी बात भला कलियुगमें कैसे हो सकती थी। जिसने जीवन भर समुद्र-यात्रा को पाप समझा हो और जिसका धार्मिक हृदय समुद्रयात्राकी कल्पना ही न कर सकता हो उसने अपने देशके लिये यह यात्रा स्वीकार करके अपनी सबसे प्यारी वस्तु धर्मको भी देशके लिये अर्पण कर दी। यह उनका सबसे बड़ा त्याग था। मालवीयजीके लिये विलायत जाना दधीचि और शिविके त्यागसे कम महत्त्व न रखता था। ७० वर्षकी अवस्था और दुर्बल देह लेकर बड़ी आशासे मालवीयजी गान्धीजीको साथ लेकर रेतीसे तेल निकालनेके लिये लन्दन जानेको तैयार हो गए।
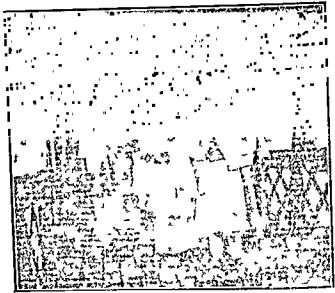
इङ्गलैन्ड जाते समय इलाहाबाद स्टेशनके पुलपर मालवीयजी चलते चलते भी एक लेख ठीक कर रहे हैं।

२९ अगस्त सन् १९३१ ई० को महात्मा गान्धीके साथ मालवीयजी विलायतके लिये रवाना हो गए। मालवीयजी अपने रसोइया, अपनी सामग्री और अपने पुत्र पण्डित गोविन्द मालवीयको साथ लेकर गए थे।
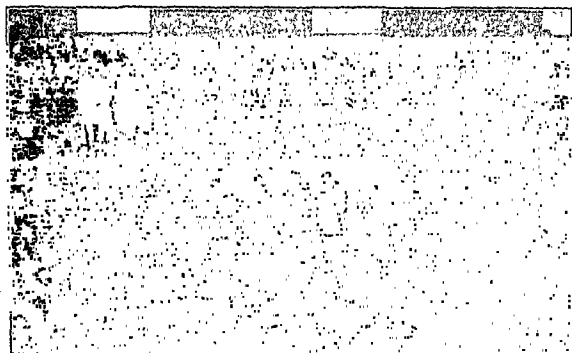
महात्मा जी और मालवीय जी १२ सितम्बर सन् १९३१ ई०को लन्दन पहुँचे। तत्काल ये लोग वहाँ यूस्टन रोडपरके 'फ्रेण्ड्स मीटिङ्ग हाउस' में पहुँचाए गए जहाँ इनका शानदार स्वागत हुआ। वहाँ अंग्रेज और भारतीय सब मौजूद थे।

इङ्गलैण्डमें इण्डियन एसोसिएशनने इन लोगोंका बड़ा स्वागत किया। लन्दन पहुँचकर इन्होंने हर बातमें गान्धीजीका साथ दिया। वहाँ सेनाकी व्यवस्था और संरक्षणके विषयमें जो आपने व्याख्यान दिए थे वे बड़े महत्त्वके हैं पर जो आशा लेकर वे गए थे वह पूरी हुई इसमें सन्देह है।

गोलमेज़ परिषद्के अतिरिक्त उन्होंने लन्दनके वैज्ञानिकोंको बुलाकर एक सभामें हिन्दू धर्मकी महत्ता और ईश्वरके अस्तित्वपर व्याख्यान दिया, जिसपर सभी वैज्ञानिकोंने कहा कि यदि वास्तव में हिन्दू धर्म यही है तो वह वास्तवमें भव्य है। मालवीयजी इस यात्रामें योरोपमें भी घूमे, बहुतसे विश्वविद्यालय देखे और फ्रान्समें पाली और संस्कृतके प्रसिद्ध विद्वान् डाक्टर सिल्वन लेवीसे भी मिले।

१४ जनवरी सन् १९३२ ई० को मालवीयजी लौट आए। उस समय भारतमें पुलीसका राज्य था। सब नेता बन्द किए जा चुके थे। सरकारका दावा था कि काँग्रेस कुचली जा चुकी है।

मालवीयजीने सरकारकी नीतिकी कड़ी आलोचना की और एक तारद्वारा यहाँके अत्याचारोंका विवरण देकर विलायत भी भेजा, पर सरकारकी कृपासे वह तार भारतकी सीमा न पार कर सका। इसीके बाद दिल्लीमें कांग्रेस होनेवाली थी। सरकारने कांग्रेसकी मनाही कर दी थी। मालवीयजी अध्यक्ष चुने गए।
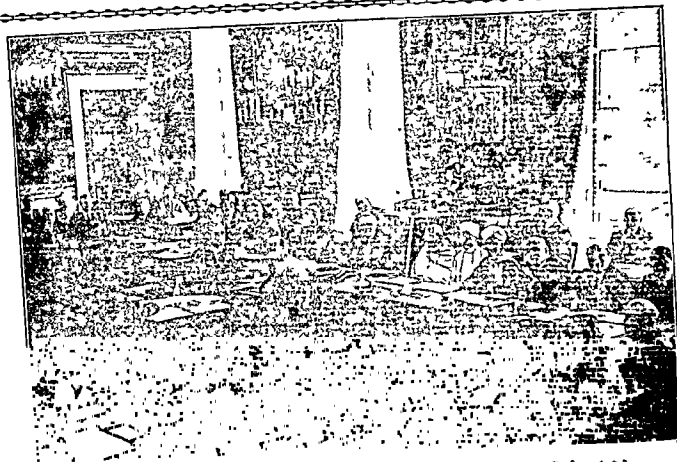
सेण्ट जेम्स पैलेस लन्दनमें १४ सितम्बर सन् १९३१ ई० की भारतीय गोलमेज परिषद्का संघ-निर्माण-समितिमें। बीचमें लॉर्ड सैंकी, उनके बाँई ओर महात्माजी और मालवीयजी बैठे हैं।

काशीमें उन्हें निषेधाज्ञा मिली, पर उन्होंने इन गीदड़ भभकियोंकी चिन्ता न की और निडर होकर चल दिए। दनकौर स्टेशनपर ही उतरकर ये मोटरसे दिल्लीकी ओर चले, पर यमुना पुलपर पकड़ लिए गए। फिर भी सेठ अमृतलाल रणछोड़लालकी अध्यक्षतामें पुलीस थानेके पास घण्टाघरपर दिल्लीमें कांग्रेस हुई। सरकार मुँहकी खाकर रह गई। मालवीयजी तीन चार दिन बाद गाड़ीमें बैठाकर इलाहाबाद पहुँचा दिए गए।

इसीके अगले साल फिर कलकत्तेमें कांग्रेस हुई। फिर मालवीयजी अध्यक्ष चुने गए। इस बार फिर वे आसनसोल स्टेशनपर पकड़े गए और सात आठ दिनतक वहाँ रक्खे जानेके बाद फिर छोड़ दिए गए।

साम्प्रदायिक निर्णयके फैसलेपर गान्धीजीको यह देखकर बड़ा असन्तोष हुआ कि सरकारने दलित वर्गको हिन्दुओंसे अलग कर दिया है। उन्होंने सितम्बर सन् १९३२ ई० में यरवदा जेलमें आमरण अनशन करनेका प्रण किया। मालवीयजीने फिर दौड़धूप शुरू की। पता नहीं कहाँसे वे इतनी शक्ति बटोरकर लाए। पूनामें

३० नवम्बर, सन् १९३१ ई० को सेण्ट जेम्स पैलेस लन्दनमें दूसरी सेशनके आरम्भ होनेके समय मालवीयजी और गान्धीजी।

सभा हुई, सब नेतागण इकट्ठा हुए और फ़ैसला हो गया। इस फैसलेका सारा श्रेय मालवीयजीको ही है।

पूनामें बहुत बहस हुई। गान्धीजीका उपवास चल रहा था। समय खानेके लिये बिलकुल नहीं था। अब एकसे बातचीत, फिर दूसरेसे। मालवीयजी थक गए थे, पर उनकी हिम्मत बनी रही।

इसमें ही वे बहुत दुर्बल हो गए थे किन्तु उधर हिन्दू मुस्लिम एकताका प्रश्न आ पहुँचा। फ़ौरन् पञ्जाब दौड़े गए। वहाँसे बङ्गाल और फिर युक्तप्रान्त। इलाहाबादमें एकता सम्मेलन हुआ। सोलह-सोलह, बीस-बीस घण्टे परिश्रम किया और उससे छुट्टी मिलते ही केरलमें हरिजनोंकी समस्या सुलझाई। जान पड़ा कि जैसे सर्वशक्तिमान् परमेश्वरने अपनी सम्पूर्ण शक्ति ही उन्हें दे दी है।

इसी बीच १५ जनवरी सन् १९३४ ई० को बिहारमें भूकम्प हुआ। सब कुछ भूलकर मालवीयजी बिहारके आँसू पोंछनेमें लग गए। स्वयं भी वहाँ गए और लोगोंसे बहुत रुपया भी एकत्र करके भेजा।

१८, १९ मई सन् १९३४ ई० को पटनामें सभी महा समिति बैठी।

सेण्ट जेम्स पैलेस लन्दनमें १४ सितम्बर सन् १९३१ ई० की भारतीय गोलमेज परिषद्की सद्य-नि
बीचम लॉर्ड सैङ्के, उनके बाँई ओर महात्माजी और मालवीयजी बैठे हैं।

काशीमें उन्हें निषेधाज्ञा मिली, पर उन्होंने इन गीदड़-भभकियोंकी चिन्ता न की और निडर होकर चल दिए। दनकौर स्टेशनपर ही उतरकर ये मोटरसे दिल्लीकी ओर चले, पर यमुना पुलपर पकड़ लिए गए। फिर भी सेठ अमृतलाल रणछोड़लालकी अध्यक्षतामें पुलीस थानेके पास घण्टाघरपर दिल्लीमें कांग्रेस हुई। सरकार मुँहकी खाकर रह गई। मालवीयजी तीन चार दिन बाद गाड़ीमें बैठाकर इलाहाबाद पहुँचा दिए गए।

इसीके अगले साल फिर कलकत्तेमें कांग्रेस हुई। फिर मालवीयजी अध्यक्ष वार फिर वे आसनसोल स्टेशनप सात आठ दिनतक वहाँ रक्खे ज छोड़ दिए गए।

साम्प्रदायिक निर्णयके फैसले यह देखकर बड़ा असन्तोष हुआ दलित वर्गको हिन्दुओंसे अलग उन्होंने सितम्बर सन् १९३२ ई० आमरण अनशन करनेका प्रण। वीयजीने फिर दौड़-धूप शुरू। कहाँसे वे इतनी शक्ति बटोरव

बन्दी तपस्वी मालवीयजी सन्ध्या कर रहे हैं।

होना राष्ट्रको अच्छा न लगा, पर गान्धीजी अलग हो ही गए। किन्तु लोग उनको जितना अलग समझते थे वे उतने अलग न हो सके। कांग्रेसको उनको आशीर्वाद तो मिला ही पर उनका सहयोग भी मिला।

२८ दिसम्बर सन् १६३५ ई० को बम्बईमें कांग्रेसने अपने पचासवें वर्षमें पदार्पण किया। और जिस स्थनपर पचास वर्ष पहले कांग्रेस हुई थी वहीं उसके स्मारकमें उसकी स्मृति शिला रक्खी गई जिसका उद्घाटन राष्ट्रके सबसे प्राचीन सेवक महामना पण्डित मदनमोहन मालवीयजीके हाथों ही हुआ।

इसके बाद फिर देश चुप मारकर बैठ गया। नेता लोग व्यवस्थापिका सभाओंके चक्करमें पड़ गए। २८ दिसम्बर सन् १६३६ ई० को फ़ैज़पुरमें -बिलकुल देहातमें—कांग्रेस हुई और वे मालवीयजी जो पचास बरस पहले कांग्रेसके जन्मदाताओंके साथ दिखाई दिए थे वे फिर कांग्रेसके पुत्रोंके साथ दिखाई दिए। वेष और तेजमें बिलकुल वैसे ही केवल बुढ़ापा उनके सफ़ेद बालोंमेंसे झाँक रहा था। फ़ैज़पुर कांग्रेसमें जो उनका जोशीला व्याख्यान हुआ वह वैसा ही था जैसा पचास बरस पहले, पर उसका भाव बहुत कुछ बदला हुआ था। मालूम पड़ता था कि जो कांग्रेस पचास बरस पहले अपने बचपनमें दूसरोंसे माँगकर पानी पीना चाहती थी वह अपने हाथसे अपने पैरोंपर खड़ी हो कर अपने घड़ेसे उँड़ेल कर पानी पीनेको तैयार है।

जिस वीर योद्धाने अपनी जवानीमें देश की रक्षाके लिये पेटी कसी थी, वह अन्ततक भी उसी तरहसे बल्कि उससे भी दुगुने जोश से खड़ा रहा खम ठोककर खड़ा रहा, मुँहपर तनिकसी भी तो कमज़ोरी नहीं दिखाई पड़ी। न जाने कितने पुराने साथी खेत रहे, कितने मैदान छोड़ कर भाग गए, कितनोंको बुढ़ापेने बेबस कर दिया। अगर कोई एक बहादुर ऐसा था, जो आदिसे अन्त तक पिता, भक्त पुत्रके समान सारे राष्ट्रकी प्रसन्नता और अप्रसन्नतामें अपना सुख और अपना घर त्यागकर निरन्तर मन, वचन और कर्मसे राष्ट्रकी सेवा कर रहा हो, जिसके प्रत्येक कार्यमें भारतका कल्याण छिपा हो, जो, प्रत्येक प्रार्थना भारतकी हितकामनाके लिये कर रहा हो, जिसके उपदेशोंमें देशसेवाका राग भरा हो—यह मालवीयजी थे। लोगोंको महापुरुषोंकी तुलना करनेमें आनन्द आता है। पर वे अतुलनीय होते हैं। ग्रहोंके समान अपनी-अपनी महत्ता लिए हुए ये ज्योतिप्पिण्ड अपनी कक्षामें घूमते रहते हैं। यही उनका महत्त्व होता है। यों अलग-अलग कोई किसीकी भले ही पूजा करे, किन्तु जब अवसर पड़ता है तो नव ग्रहोंकी पूजा एक साथ की जाती है। महात्मा गान्धी और मालवीयजी ये दोनों विभूतियाँ एक साथ भारतके कल्याण करनेके लिये आईं। दोनोंकी शक्तियोंने मिलकर जो काम किया, उसको इतने थोड़े पन्नोंमें कोई कहाँ तक वर्णन
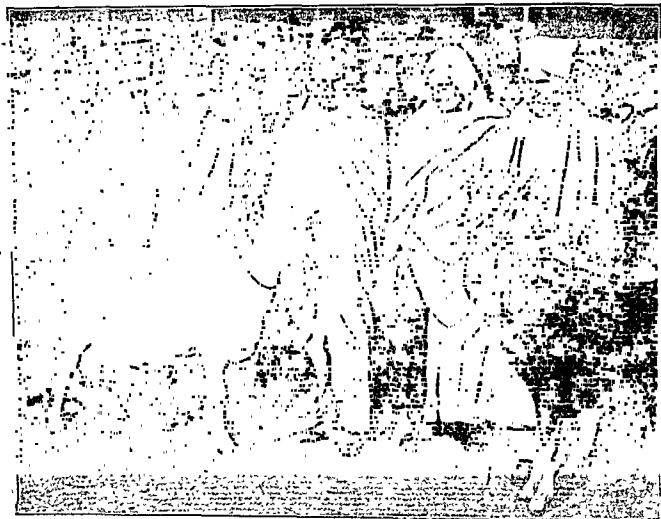
मालवीयजी और गान्धीजीने इस लिङ्कटनकी दुग्धशालाका निरीक्षण किया और संसारकी सर्वश्रेष्ठ बकरियोंको देखा। गान्धीजी और मालवीयजीके बीचमें मिसस्लेड (मीरा बहन) दिखाई दे रही है।

डाक्टर अन्सारीको पार्लमेण्टरी बोर्ड बनानेका भार दिया गया। पर साम्प्रदायिक बँटवारेके विषयमें कांग्रेसकी उदासीन नीतिके कारण मालवीयजी और अणे अलग हो गए और १८ तथा १९ अगस्त सन् १९३४ ई० को कलकत्तेमें मालवीयजीकी अध्यक्षतामें कांग्रेस नेशनलिस्ट पार्टी बनी। कांग्रेसमें रहकर भी मालवीयजी कांग्रेससे सहमत न हो सके और उन्हें लाचार होकर चुनावमें कांग्रेससे लड़ना पड़ा। यद्यपि कांग्रेस नेशनलिस्ट पार्टीको चुनावमें सफलता न मिली पर मालवीयजी अपनी बातपर डटे रहे।

इधर गान्धीजीने कांग्रेससे अलग होनेकी बात चलाई। सब लोगोंने बहुत समझाया पर गान्धीजी अपनी बात पर डटे रहे। गान्धीजीने हरिजन आन्दोलनके लिये अपनेको अलग रक्खा था, पर कुछ भी क्यों न हो गान्धीजीका अलग
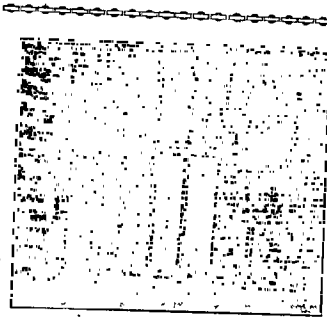
वन्दी तपस्वी मालवीयजी सन्ध्या कर रहे हैं।

झाँक रहा था। फ़ैजपुर कांग्रेसमें जो उनका जोशीला व्याख्यान हुआ वह वैसा ही था जैसा पचास बरस पहले, पर उसका भाव बहुत कुछ बदला हुआ था। मालूम पड़ता था कि जो कांग्रेस पचास बरस पहले अपने बचपनमें दूसरोंसे माँगकर पानी पीना चाहती थी वह अपने हाथसे अपने पैरोंपर खड़ी हो कर अपने घड़ेसे उँड़ेल कर पानी पीनेको तैयार है।

जिस वीर योद्धाने अपनी जवानीमें देश की रक्षाके लिये पेटी कसी थी, वह अन्ततक भी उसी तरहसे बल्कि उससे भी दुगुने जोश से खड़ा रहा ख़म ठोककर खड़ा रहा, मुँहपर तनिकसी भी तो कमज़ोरी नहीं दिखाई पड़ी। न जाने कितने पुराने साथी खेत रहे, कितने मैदान छोड़ कर भाग गए,

होना राष्ट्रको अच्छा न लगा, पर गान्धीजी अलग हो ही गए। किन्तु लोग उनको जितना अलग समझते थे वे उतने अलग न हो सके। कांग्रेसको उनको आशीर्वाद तो मिला ही पर उनका सहयोग भी मिला।

२८ दिसम्बर सन् १९३५ ई० को बम्बईमें कांग्रेसने अपने पचासवें वर्षमें पदार्पण किया। और जिस स्थानपर पचास वर्ष पहले कांग्रेस हुई थी वहीं उसके स्मारकमें उसकी स्मृति शिला रक्खी गई जिसका उद्घाटन राष्ट्रके सबसे प्राचीन सेवक महामना पण्डित मदनमोहन मालवीयजीके हाथों ही हुआ।

इसके बाद फिर देश चुप मारकर बैठ गया। नेता लोग व्यवस्थापिका सभाओंके चक्करमें पड़ गए। २८ दिसम्बर सन् १९३६ ई० को फ़ैज़पुरमें -बिलकुल देहातमें—कांग्रेस हुई और वे मालवीयजी जो पचास बरस पहले कांग्रेसके जन्मदाताओंके साथ दिखाई दिए थे वे फिर कांग्रेसके पुत्रोंके साथ दिखाई दिए। वेष और तेजमें बिलकुल वैसे ही केवल बुढ़ापा उनके सफ़ेद बालोंमेंसे

कितनोंको बुढ़ापेने बेबस कर दिया। अगर कोई एक बहादुर ऐसा था, जो आदिसे अन्त तक पितृभक्त पुत्रके समान सारे राष्ट्रकी प्रसन्नता और अप्रसन्नतामें अपना सुख और अपना दुख त्यागकर निरन्तर मन, वचन और कर्मसे राष्ट्रकी सेवा कर रहा हो, जिसके प्रत्येक कार्य्यमें भारतका कल्याण छिपा हो, जो, प्रत्येक प्रार्थना भारतकी हितकामनाके लिये कर रहा हो, जिसके उपदेशोंमें देशसेवाका राग भरा हो—वह मालवीयजी थे। लोगोंको महापुरुषोंकी तुलना करनेमें आनन्द आता है। पर वे अतुलनीय होते हैं। ग्रहोंके समान अपनी-अपनी महत्ता लिए हुए वे ज्योतिष्पिण्ड अपनी कक्षामें घूमते रहते हैं। वहीं उनका महत्त्व होता है। यों अलग-अलग कोई किसीकी भले ही पूजा करे, किन्तु जब अवसर पड़ता है तो नव ग्रहोंकी पूजा एक साथ की जाती है। महात्मा गान्धी और मालवीयजी ये दोनों विभूतियाँ एक साथ भारतके कल्याण करनेके लिये आईं। दोनोंकी शक्तियोंने मिलकर जो काम किया, उसको इतने थोड़े पन्नोंमें कोई कहाँ तक वर्णन
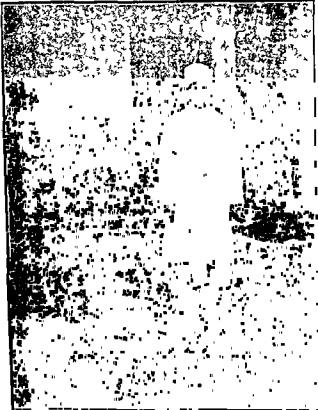
कर सकेगा। भारतके इन पिछले पचहत्तर वर्षोंका इतिहास और फिर मालवीयजीके राजनितिक जीवनका इतिहास यदि लिखा जाय तो कई हजार पन्ने भर जायँगे। हमने तो झाँकी भर दी है। सूर्यकी धूप और गरमीसे ही उसके प्रचण्ड तेजका अनुमान किया जा सकता है। उसको पूरा देखनेका प्रयत्न कीजिएगा तो आँखें चुंधियाँ जायँगी, आप पूरी तरहसे देख न पावेंगे।

जेलमें अपनी बैरकके सामने।

पूनामें पर्णकुटीरपर मौलाना अबुलकलाम आजादके साथ मालवीयजी गहरा परामर्श कर रहे हैं।

जेलमें मालवीयजी अपना स्वाध्याय कर रहे हैं।
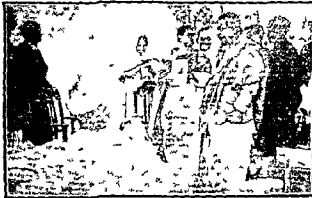
नेशनलिस्ट पार्टीकी सभा काशीमें।

अणेजी और मालवीयजी काशीमें ।
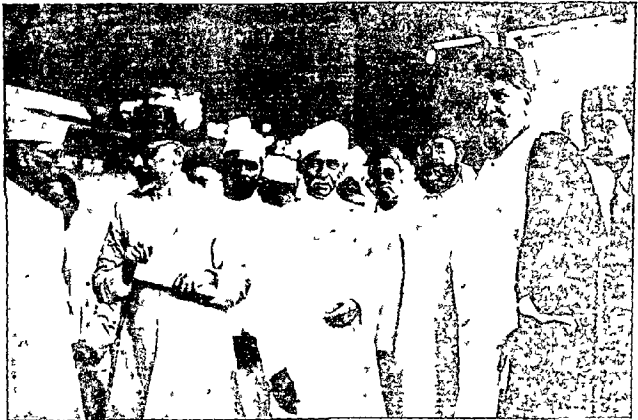
सर्वश्री आसफ अली, अबुल कलाम आजाद, पण्डित मदनमोहन मालवीयजी, मौलाना शौकत अली आदि नेताओंका पूना जाते हुए बम्बई स्टेशनपर स्वागत ।

सरकारी दुर्गमें

जब आमके पेड़में बौर आता है तब उसकी महक बगीचेके सब कोनोंमें तो फैलती है पर उसका परिमल हवाके साथ बगीचेके बाहर भी फैलता है। सारा वायुमण्डल एक अजीब-मतवाली गन्धसे महक उठता है। यही बात मनुष्यके साथ भी होती है। गुणी मनुष्य चाहें अपनेको कितना भी एकान्तमें रक्खे, छिपाकर रहे, पर उसके गुण उसके लिये ग्राहक पैदा करने ही लगते हैं। चित्रको देखकर चित्रकारके दर्शन करने की लालसा होती है, कविता पढ़कर कविसे मिलने और उसके दर्शन करनेको जी छटपटाता है, किसीका मधुर गीत सुनकर उसको एक बार देखनेको मन ललचाता है। संसारमें सभी गुणोंके पारखी नहीं होते,पर जो होते हैं वे गुणीको सात पर्दोंमेंसे खोज निकालते हैं और फिर उसको उसके योग्य सम्मान देनेमें अपना गौरव समझते हैं।

'हिन्दुस्थान' के सम्पादकने बड़ा नाम कमाया था। इससे पहले लोग कांग्रेस मञ्चपर उसके व्याख्यानों पर तालियाँ गड़गड़ा चुके थे। न जाने कितने नौजवान मालवीय बननेकी आकांक्षा कर चुके थे। जब बाहरवाले क़द्र करना शुरू करते हैं तभी घरवाले भी क़द्र करते हैं। मालवीयजीके मित्रोंने और उनके हितचिन्तकोंने उन्हें म्युनिसिपैलिटीके सदस्य बनकर नगरकी सेवा करनेकी सलाह दी। मालवीयजी खड़े तो हो गए, पर चुनावके हथकण्डोंसे वे परिचित न थे। वे समझते थे कि जिसने वचन दिया है वह अवश्य वोट देगा, पर बात ऐसी नहीं थी। चुनावमें लोग कहते कुछ हैं, करते कुछ हैं। चुनावके समय सभी चाणक्य बन जाते हैं। म्युनिसिपैलिटीका चुनाव हुआ पर मालवीयजी न जीत सके। उस समय लोग उनका मूल्य नहीं समझ सके थे, फिर चुनाव में योग्यताका तो प्रश्न होता ही नहीं—यह हिन्दुस्थानमें ही नहीं, दुनिया भरमें यही बात है—वहाँ तो दलका ध्यान रक्खा जाता है, दोस्ती निबाही जाती है, अहसान चुकाया जाता है। जो दलसे दूर हो और जिसके आत्मसम्मानने किसीसे अहसान लेनेकी हिम्मत ही न की हो वह क्या करे? मालवीयजी हार गए। पर उनकी सेवाओंने लोगोंके हृदय बदल दिए, धारणाएँ बदल दीं। फिर दूसरी बार वे प्रयाग म्युनिसिपल बोर्डमें चुने गए। वे लक्कड़ सदस्योंमेंसे नहीं थे जो वोट माँगते समय बड़े लम्बे-चौड़े वादे करते हैं और चुन जानेपर आरामसे लेटते हैं, उधर आँख उठाकर भी नहीं देखते। मालवीयजीने शहरकी सफ़ाई और उसका सौन्दर्य बढ़ानेके लिये जो प्रयत्न किया उससे लोग बड़े प्रसन्न हुए और फिर वे सर्वसम्मतिसे सीनियर वाइस चेयरमैन भी बना दिए गए। उनके ज़मानेमें पुराने प्रयाग की कायापलट होगई। खँडहरों, पुराने गन्दे महल्लों और बीहड़ स्थानोंमेंसे भव्य भवन, चौड़ी खुली सड़कें और दूकानें निकल आईं, सुन्दर मुहल्ले बसने लगे। इलाहाबादका लूकरगञ्ज नामका मुहल्ला मालवीयजीके प्रयत्नका फल है।

इसीके बाद प्रयागमें बड़े ज़ोरोंसे ताऊन फैला। लोग घर छोड़कर अपनी-अपनी जान लेकर भागने लगे। पड़ोसी पड़ोसीको भूल गया। बड़े लोगोंने बँगलोंकी शरण ली। छोटे लोग शहरसे

बाहर चले गए। बूढ़े-बूढ़े लोग, जिन्हें भगवान से मिलनेकी जल्दी थी या जिन्हें घर वालोंने फ़ालतू समझ रक्खा था, वे बेचारे रह गए थे। ऐसे समयमें अपनी प्राणों की ममता छोड़कर मालवीयजी प्रयागकी गलियों में घर-घर घूमकर बीमारोंका पता लगाते, उनकी दवा दारू करते, ढाढ़स बँधाते मकान को दवासे धुलवाते, बीमारको अस्पताल भिजवाते और जो अपने घरको अपनी जानसे बढ़ कर प्यार करते थे उन्हें शहरके बाहर रहने की सलाह देते थे। सरकारी अफ़सर रौबसे काम लेते थे। लोग इस महामारीसे इतने घबरा गए थे कि सरकारी अफ़सर और डाक्टर लोग उन्हें कालके समान जान पड़ते थे। मालवीयजीने शहरके बाहर म्युनिसिपैल्टीकी ओरसे हेल्थ-कैम्प लगवा दिया था कि शहर छोड़कर लोग वहाँ रहें। ऐसा जान पड़ा मानों भगवान स्वयं उसविपत्तिसे उनकी रक्षा करने आ रहे हैं। उनका दिव्य स्वरूप, उनकी दिव्य वाणी और उनका दिव्य त्याग—सबने मिलकर मालवीयजीको देवता बना दिया।

सरकारको भी इस सुमनकी गन्ध पहुँची। उन दिनों संयुक्तप्रान्तीय व्यवस्थापक सभा में बारह सदस्य होते थे जिन्हें सरकार चुनती थी। ये सब सदस्य सरकारकी आँख देखकर चलते थे। 'अत्यन्त आज्ञाकारी सेवक' की भाँति अपने अन्नदाताके इशारेपर दिनको तारे दिखानेमें भी सङ्कोच न करते थे। प्रजा जाय चूल्हेमें, "हजूर खुश रहने चाहिए। उस समयतक राजनीतिक आत्म-सम्मान पूरी तरहसे उदय नहीं हुआ था। जो भिक्षा दे उसीको आशीर्वाद मिलता था। कौन्सिलकी नियुक्तिके दिन थे। काशीके प्रसिद्ध नेता श्री रामकाली चौधरीने मालवीयजीसे कहा —"कौन्सिलमें तुम ही जाओ, तुम ही रास्ता दिखाओ।" पर उस समय पण्डित विश्वम्भरनाथजी युक्तप्रान्तके बहुत बड़े नेताओं में थे। मालवीयजी भी उनको बहुत मानते थे। जबतक वे जीवित रहे तबतक मालवीयजीने व्यवस्थापक सभामें पैर रखने का नाम भी न लिया। सन् १९०३ ई० में पण्डित विश्वम्भरनाथजीकी मृत्युसे कौन्सिलमें जो स्थान खाली हुआ, उसमें मालवीयजीको ही सरकारने नियुक्त किया।

मालवीयजीने सरकारको 'त्वमेव माता च पिता त्वमेव' कहनेवाली प्रथा ही उलट दी। उन्होंने कभी जनताके हितकी हत्या करके सरकारका पक्ष नहीं किया। सरकार जिसे बकरी समझे हुए थी वह बाघ निकला। सरकारको मालवीयजीकी नियुक्ति पर अफ़सोस तो ज़रूर हुआ होगा।

सन् १९०३ ई० में सरकारने 'बुन्देलखण्डमें ज़मीनकी बेदखली' के क़ानूनका मसौदा पेश किया। मालवीयजीने कहा कि यह प्रस्ताव राजनीतिक और सामाजिक सिद्धान्तोंके विरुद्ध है और ११ जनवरी सन् १९०३ ई० को इस क़ानूनका घोर विरोध किया। यह क़ानून पास हो गया। अकेला चना भाड़को भला कैसे फोड़ सकता था। इस क़ानूनसे बुन्देलखण्डको जो हानि हुई है उसे बुन्देलखण्डवाले भली भाँति जानते हैं।

इसके अतिरिक्त सन् १९०४, १९०६ और १९०७ ई० में मालवीयजीने सालाना कच्चे चिट्ठे के अवसरपर बड़े मार्केके व्याख्यान दिए और शिक्षापर अधिक रुपया व्यय करने, पुलिसका सुप्रबंध करने, सरकारी नौकरीमें भारतवासियोंको उच्च स्थान मिलने, कलक्टरीकी परीक्षा भारत में होने, प्रजाके स्वास्थ्य-सम्बन्धी सुधार करने आदि विषयोंपर बड़ा जोर दिया और इनमें से बहुतसी बातें सरकारने मानी भी। उस समयके सदस्योंमें केवल मालवीयजी ही ऐसे थे जो शत्रु के दुर्गमें उससे मोर्चा लेरहे थे, वे ही एक ऐसे महापुरुष थे जो वहाँ प्रजाहितको साधना कर रहे थे।

सन् १९०८ ई० संयुक्तप्रान्तकी सरकारने पुलिसका खर्च बढ़ा दिया। मालवीयजीने बड़े कड़े शब्दोंमें इसका विरोध किया और चेतावनी दी कि ऐसा करनेसे लोग सरकारकी नीयतमें सन्देह करने लगेंगे।

सन् १९०९ ई० में भारतवर्ष की व्यवस्थापक सभामें सुधार हुआ। प्रान्तीय व्यवस्थापक सभासे दो प्रतिनिधि चुनकर भारतीय व्यवस्थापक सभामें भेजनेका नियम बना। पहली ही बार इन दो सदस्योंमेंसे एक मालवीयजी चुने गए, और फिर बराबर वे उक्त सभाके सदस्य रहे। इस सभामें मालवीयजीका सबसे पहला गम्भीर और ज़ोरदार व्याख्यान 'प्रेस ऐक्ट' पर हुआ था। मालवीयजी और माननीय श्री वसु ही ऐसे दो व्यक्ति थे जिन्होंने उसका विरोध किया। मालवीयजीने कहा था कि "यदि प्रान्तीय सरकारकी इच्छापर ही प्रेस छोड़ दिए जाएँगे तो उन्होंने आजतक जिस स्वतन्त्रतासे सरकारकी नीतिकी आलोचना की है वह न हो सकेगी।" पर यह क़ानून भी पास हो गया, और प्रान्तीय सरकारोंने इस विषयमें जिस स्वेच्छाचारितासे काम किया है उससे मालवीयजीकी भविष्यवाणी सत्य ही हो गई।

सन् १९१० ई० में माननीय जेन्किन्स महोदयने जब विद्रोह-सभा क़ानून पेश किया उस समय मालवीयजीने और गोखलेजीने बड़ी स्वतन्त्रता और निर्भयतासे उस क़ानूनका विरोध किया और मालवीयजीने यह भी कहा कि 'इस क़ानूनके प्रयोगमें जो ज्यादतियाँ की जायँगी उनसे सम्भव है कि लोग और भी भड़क उठें और जिस रोगकी यह दवा होने जा रही है वह रोग दुगुना बढ़ जाय।'

इसीके बाद गोखले महोदयने अपना प्रारम्भिक शिक्षा-विधान पेश किया। मालवीयजी तो प्रसिद्ध शिक्षा-प्रेमी थे ही। शिक्षाके प्रसार और प्रचारके लिये तो उन्होंने अबतक काम ही किया था। मालवीयजीने बड़े ज़ोरदार शब्दोंमें इसका समर्थन किया और देशकी अशिक्षाका विस्तारसे वर्णन करके शिक्षा-प्रचारके लाभ बताए।

पर शायद सबसे अधिक महत्वपूर्ण उनका व्याख्यान हुआ था शर्तबन्द कुली-प्रथापर। सन् १९१० ई० में गोखलेजीने इस विषयपर विफल प्रयास किया था। पर लौर्ड हार्डिञ्जके समयमें मालवीयजीने इसपर आवाज़ उठाई। श्री सी० एफ़० एण्ड्रूज़ प्रवासी भारतीयोंकी दुर्दशा देखकर लौटे थे। मालवीयजीने ऐसे करुण शब्दोंमें बेचारे प्रवासियोंकी दुर्दशाका वर्णन किया कि सरकारका कड़ा हृदय भी पिघल उठा और लौर्ड हार्डिञ्जने यह घोषणा की कि उन्होंने और भारत-सचिवने इस प्रथाको सदाके लिये बन्द कर देनेका निश्चय कर लिया है। इसके बाद हिन्दू युनिवर्सिटी-बिल आया और उसके लिये उन्होंने जो अपील की यह द्वितीय थी।

सन् १९१६ ई० में जहाँगीराबाद एमेण्डमेण्ट बिलपर जो उन्होंने व्यवस्थापक सभाके भीतर और बाहर व्याख्यान दिए थे, वे भी बेजोड़ थे।

लड़ाईके बाद सरकारकी नीयत खराब हो गई। सन् १९१८ ई० में विन्सेण्ट महोदयने रौलेट् बिल ला रक्खा। इसपर सारा देश व्याकुल हो उठा। मालवीयजीने इसपर जो व्याख्यान दिया वह व्यवस्थापक सभामें अद्वितीय समझा जाता है। साढ़े चार घण्टेतक पैरोंपर खड़े होकर बिना पानी पिए लगातार अपनी ओजपूर्ण वाणीद्वारा उन्होंने रौलेट् क़ानूनके दोष दिखलाए और उसकी निःसारता प्रकट की। मालवीयजीकी तर्कशक्ति, उनका विस्तृत क़ानूनका ज्ञान, उनकी विशाल बुद्धि और सबसे बढ़कर उनकी नीतिज्ञताका पूर्ण परिचय उस व्याख्यानसे मिलता है। यह विधान भी पास हो गया। मालवीयजी लौर्ड चेम्सफोर्डके प्राइवेट सेक्रेटरीसे मिले और कहा कि छः महीनेतक इसे काममें न लावें। इसपर श्री शङ्करन नायरने कहा कि इसे तो उन्होंने पहले ही मार डाला है। मालवीयजीने इसके विरोधमें इस्तीफ़ा दे दिया पर फिर वे चुने गए। पञ्जाबका हत्याकाण्ड हुआ और सरकारने 'क्षमा विधान' पेश किया कि जिन अफ़सरोंने शान्तिकी रक्षाके लिये पञ्जाबमें कुछ अनुचित काम किए हैं वे क्षमा कर दिए जायँ। इसका भी मालवीयजीने विरोध किया और इस बार पाँच घण्टेतक लगातार

बोलते रहे। ये दोनों व्याख्यान उनके पढ़ने ही योग्य हैं।

उसके बाद लेजिस्लेटिव असेम्बलीमें नमक कर, विनिमय अनुपात, सोनेकी दर, रूई कर, आदिपर आपके व्याख्यान हुए। वे सन् १६३० ई० तक वहाँ रहे और इस बीच सभी विधानोंपर आपने छोटे-बड़े व्याख्यान दिए। सन् १९२६ ई० में जब कांग्रेसने स्वराज्य पार्टी बनाई थी, उस समय मालवीयजी और लाला लाजपतरायने मिलकर नेशनलिस्ट पार्टी बनाई और कांग्रेसके साथ चुनाव-युद्ध लड़ा। एक ओर पण्डित मोतीलालजी का दौरा हो रहा था, दूसरी ओर मालवीयजीका। प्रयागके दोनों नेता अपना अपना मत लेकर दौरा कर रहे थे। मेरठमें जब मालवीयजी पहुँचे तो उन्हें एक अभिनन्दन पत्र दिया गया और एक कविता पढ़ी गई थी, जिसमें मालवीयजीका सम्मान किया गया था और पण्डित मोतीलाल नेहरूको देश-द्रोही कहा गया था। पर मालवीयजीको उनकी यह हरकत अच्छी न लगी और उन्होंने कह दिया कि 'मोतीलालजी मेरे बड़े भाई हैं। मैं उनकी शानके विरुद्ध कोई बात नहीं सुन सकता।' पञ्जाबसे इस दलको सफलता मिली, पर वास्तवमें सभी कामोंमें इनके राष्ट्रीय दलमें कांग्रेसका साथ दिया। अन्तमें सरकारकी शाही पक्षपातपूर्ण नीतिके कारण सन् १६३० ई० में उससे इस्तीफा दे दिया। सरकारने वस्त्र-उद्योग रक्षण क़ानून पास करके इङ्गलैण्डके बने कपड़ेपर पन्द्रह फ़ी सदी और विदेशी कपड़ेपर बीस फ़ी सदी कर लगाया। मालवीयजीने सरकारको खूब आड़े हाथों लिया और उनकी इस पक्षपातपूर्ण नीतिकी आर्थिक परिषद्के निर्णयके खिलाफ़ बताया और सरकारी दुर्गमें उन्हें यह समझाकर कि हम दूध पीते बच्चे नहीं हैं, काँचकी गोलियाँ नहीं खेलते हैं, अपना भला समझते हैं, वे वहाँसे निकल आए। सरकारने मालवीयजीको मित्रता खोकर कम भूल नहीं की। सन् १६३३ ई० के चुनावमें आप फिर खड़े हुए थे पर वोटरोंमें आपका नाम ही न था। न जाने किसकी भूलसे आप असेम्बलीमें न जा सके।

इस बुढ़ापेमें भी आपकी भाषण शक्ति कम नहीं हुई। वे पुराने दाँत नहीं रह गए, फिर भी दहाड़ बनी थी। यह एक आश्चर्यजनक बात है कि सरकारका इतना विरोध करनेपर भी सरकार मालवीयजीका इतना मान करती रही और उनके व्यक्तित्वका और उनके सम्मतिका आदर करती रही। पर इन सबके पीछे उनका आकर्षक स्वरूप उनका मधुर स्वभाव, कोमल व्यवहार और मृदुल वाणी ही थी जो शत्रुको भी मित्र बना देती थी। सरकारी व्यवस्थापक सभाओंमें रहकर उन्होंने जितनी भारतीय जनताकी सेवा की है, उतनी किसी भी भारतीयने नहीं की। आज जो हिन्दुस्तानी कलक्टर, कमिश्नर और सुपरिण्टेण्डेण्ट बने हुए हैं और जो बड़े बड़े सरकारी पदोंपर पहुँचकर कभी-कभी राजभक्तिके जोशमें आकर निहत्थे दीन भारतीयोंपर डण्डा और गोली चलानेमें अपना गौरव समझते हैं, उन्हें याद रखना चाहिए कि उनका पद और उनका मान मालवीयजीकी प्रेरणा, उत्साह और परिश्रमका प्रसाद है।

भारतके मेले और पर्व दूसरे देशोंके मेलोंसे भिन्न होते हैं। यहाँके लोग बढ़िया-बढ़िया वस्त्र पहनकर आनन्द लूटने, तमाशा देखने नहीं जाते वे जाते हैं पुण्य कमाने। हमारे मेले भी धर्मके रसमें पगे होते हैं। एक ओर तो पुण्य लूटनेका लोभ और दूसरी ओर शिक्षाका बिलकुल अभाव। 'आँखके अन्धे और गाँठके पूरे' की जो दुर्गति होती है वही दशा बेचारे भोले-भाले हिन्दुस्थानियोंकी मेलों या पर्वोंपर होती है। स्त्रियोंका रूप और उनके गहने चोरों और लम्पटोंको आकर्षित करनेके लिये काफ़ी होते ही हैं। न जाने कितने बेचारे गृहस्थ अपनी लक्ष्मी और गृहलक्ष्मी तथा अपने सुकुमार बच्चोंको इन मेलोंकी भेंटकर आते हैं और फिर अपनी बदनामी बचानेके लिये वे घर लौटकर यह कह कर चुप हो रहते हैं कि उनकी स्त्री या बच्चेका देहान्त हो गया। यह कोई कानों सुनी बात नहीं है हर साल मेलेमें यही होता है। और बेचारी हिन्दू स्त्री! बेचारी अबला!! उसकी रक्षा करने वाला कोई नहीं है, भक्षक न जाने कितने हैं। चारों ओरसे भयानक जानवरोंसे घिरी रहकर वह अपना सतीत्व किस तरह बचाए रखती है, यह देखकर उसके सामने श्रद्धासे सिर झुक जाता है। इन्हीं देवियोंके बलपर ही भारत जी रहा है नहीं तो अबतक कबका मिट गया होता।

जब मेले-तमाशे होते हैं तो बहुतसे लोग कुछ प्रबन्ध कर लेते हैं। पहले तो लोग अपने पास तलवार रखते थे। वे अपनी और अपने कुटुम्बकी रक्षा करना जानते थे। पर जबसे तलवार छीन ली गई तबसे हिन्दू कायर बन गए, उनकी मूछें उड़ गईं और वे बेचारे दूसरेका मुँह ताकने लगे।

पहले कुछ लोग अपने-अपने नगरोंमें छुटपुट दल बनाकर मुख्य अवसरोंपर सेवा किया करते थे। पर तब कोई सङ्गठन नहीं था, कोई नियम नहीं था। कुम्भ हुआ करते थे, बड़ी भीड़ होती थी। पुलीस कहाँतक प्रबन्ध कर सकती थी! फिर पुलीसको डण्डेका बल था, उसको किसीके साथ सहानुभूति तो थी नहीं। जैसे भेड़ोंको बाड़ोंमें भरते हैं, इसी प्रकार लोग भरे जाते थे और फिर उनकी क्या दशा होती है यह आप कभी प्रयाग या हरिद्वारमें कुम्भपर स्टेशनोंपर जाकर स्वयं देख सकते हैं। सचमुच पराधीन भारतके मनुष्योंकी क्या दुर्दशा होती है, क्या कहें! जिन्हें भोजन नहीं मिलता, वस्त्र नहीं मिलता, जिनके पास कौड़ी भी नहीं हैं, वे गूँगी भेड़ोंकी तरह जिधर हाँक दिया चल दिए। और उनका सन्तोष तो देखिए कि गङ्गाजी या त्रिवेणीजीमें एक डुबकी लगाकर वह तर जाते हैं। समुद्रगुप्तको भी अपनी दिग्विजयपर इतनी प्रसन्नता न हुई होगी जितनी इन्हें उस समय होती है।

सन् १९०८ ई० की बात है। 'अर्द्धोदय' यात्राके अवसरपर बङ्गाली-युवकोंने बड़ी लगन और तत्परताके साथ सेवाकी, लोगोंको मार्ग बताया, ठहरनेका प्रबन्ध किया लुटेरों और जेब-कतरोंसे लोगोंकी रक्षा की और यात्रियोंकी हर तरहसे सहायता की। सन् १९११ ई० में सूर्य्य-ग्रहणपर बनारसमें बहुतसे युवकोंने मिलकर सेवाका काम किया और यात्रियोंको सुविधाएँ दीं।

प्रयागमें भी नागरिकोंके कुछ दल यह सब काम करते थे पर बड़े ही अव्यवस्थित रूपसे। सन् १९१२ ई० में अर्द्धकुम्भी मकर संक्रान्तिका मेला हुआ। लाखों पुरुष, बूढ़े, बच्चे, स्त्रियाँ आईं। प्रयागमें एक स्वयंसेवकोंका दल बना। मालवीयजीके बड़े पुत्र पण्डित रमाकान्त मालवीय उसके मुखिया थे। इन लोगोंने सरकारी पुलिस के साथ सहयोग देकर बड़ा काम किया और सरकारकी ओरसे भी इन्हें सब तरहकी सुविधा मिली।

दो वर्ष बाद माघ मेलेके अवसरपर वह समिति कुछ व्यवस्थित हो गई और उसका नाम दीन-रक्षक समिति पड़ गया। उस समितिने प्रशंसनीय काम किया। इसमें अधिकतर म्योर सेण्ट्रल कौलेजके छात्र ही थे। यही समिति पीछे प्रयाग सेवासमिति बन गई। मालवीयजी इसके सभापति और पण्डित हृदयनाथ कुञ्जरू इसके मन्त्री बने।

सन् १९१३ ई० में शाहजहाँपुर ज़िलेमें कुछ महानुभावोंने मेलों और विशेष अवसरोंपर सेवा करनेके उद्देश्यसे एक समिति स्थापित की, जिसका नाम सेवासमिति रक्खा गया और जिसके कार्य-सञ्चालनका भार पण्डित श्रीराम वाजपेईको दिया गया, जो उस समय रेलवेके दफ़्तरमें काम करते थे। उनके सञ्चालनमें उक्त समितिने ज़िलेके बाहर भी जाकर इस सुन्दरतासे सेवा और प्रबन्ध-कार्य्य किया कि उसका नाम दूर-दूरतक फैल गया।

इधर वाजपेईने एक बाल-व्यायामशाला खोली, जहाँ उनकी देखरेखमें प्रतिदिन सायङ्कालको दो घण्टेके लगभग बालक कसरत किया करते थे। इसी बीच एक ऐसी घटना हुई, जिसने इस बाल-व्यायामशालाको ऐसा रूप दिया, जिसकी उपयोगिता उस समय लोगोंने कम समझी थी। वाजपेईजीने पन्सारीके यहाँसे कुछ सामान लाकर अपनी माँको दिया। अचानक उनकी दृष्टि सामानमें लपेटे हुए एक काग़ज़पर पड़ी, जिसमें स्काउटिङ्गकी कुछ पुस्तकोंका ब्यौरा दिया हुआथा और नीचे 'थैकर स्पिन्क ऐण्ड कम्पनी' का पता दिया हुआ था। उन्होंने बड़ी उत्सुकतासे कुछ किताबें मँगवाईं और उनका अध्ययन कर सेवा-समितिकी 'बालचर-मण्डल' शाखा खोल दी, जिसमें सोलह वर्षसे कम अवस्थाके बालक प्राथमिक चिकित्सा, झण्डीसे बात करना और अन्य उपयोगी बातोंको उनसे सीखने लगे। थोड़े ही दिनोंमें सेवासमिति और उसके बालचर-मण्डलकी ख्याति खूब फैल गई।

इसी बीच इलाहाबादमें सन् १९१८ ई० में कुम्भका मेला हुआ, जिसके प्रबन्धमें प्रयाग-सेवासमितिका (इस समय अखिल भारतीय सेवासमिति) बड़ा भारी हाथ था। मालवीयजी समितिके सभापति थे और पण्डित हृदयनाथ कुँज़रू उसके मन्त्री थे। दोनोंने बड़े परिश्रमसे कुम्भके प्रबन्धका आयोजन किया। उन्होंने सब सेवासमितियोंको स्वयंसेवक भेजनेको लिखा। शाहजहाँपुरसे श्री वाजपेईजीकी अध्यक्षतामें सौ स्वयंसेवक और आठ बालचर प्रयाग पहुँचे और इस दक्षतासे सेवाकार्य किया कि मालवीयजी और पण्डित हृदयनाथ कुँज़रू दोनों, स्वयंसेवकों और विशेष रूपसे बालचरोंकी सेवा-प्रणाली और कार्य-कुशलतासे बहुत ही प्रभावित हुए। दोनों सज्जनोंने वाजपेईजीसे कहा कि इस प्रकारकी बालचर-शिक्षा प्रणालीकी देशमें बड़ी आवश्यकता है और उसको फैलानेमें देर नहीं करनी चाहिए। उन्होंने वाजपेईजीसे आग्रह किया कि वे इलाहाबाद आकर इस कार्यको यथाशक्ति बढ़ावें। इसके फलस्वरूप 'अखिल भारतीय सेवासमिति बॉय स्काउट एसोसिएशन' की सन् १९१८ ई० में स्थापना हुई। वाजपेईजीको कार्य सञ्चालनका भार दिया गया और श्री मालवीयजी 'चीफ़ स्काउट' बने और पण्डित हृदयनाथ कुँज़रूजीने 'प्रधान कमिश्नर' होना स्वीकार किया। अब इस संस्थाका विस्तार दिनों-दिन बढ़ने लगा।

सेवासमिति बौय स्काउट एसोसिएशनके चीफ स्काउट मालवीयजी गलेमें स्काउट स्कार्फ डाले हुए रैली देख रहे हैं। पास ही श्रीमान् वाजपेयी खड़े हैं।

इसके कुछ पूर्व भारतवर्षमें स्काउटिंगके कुछ दल बड़े बड़े शहरोंमें खोले गए थे पर उनमें भारतीय बालकोंको स्थान नहीं प्राप्त था। ये दल केवल अंग्रेजों और ऐंग्लो इण्डियनोंके लिये ही थे। श्रीमती एनी बेसेण्टने सन् १६१७ ई० में भारतीय बालकोंके लिये 'इण्डियन बौय स्काउट एसोसिएशन' खोला पर उसका काम दक्षिणमें ही रहा। उत्तर भारतमें सेवासमिति बालचर मण्डल बड़ी तीव्र गतिसे उन्नति कर रहा था। इसी बीच स्काउटिङ्गके जन्मदाता लोर्ड बेडेन् पौवेलके भारत आनेका समाचार पत्रोंमें प्रकाशित हुआ जिसके कारण भारतीय स्काउटिङ्गके केन्द्रोंमें कुछ खलबली मची, असन्तोष फैला, क्योंकि उन्होंने भारतीयोंको स्काउटिङ्गके अयोग्य समझा था और इस प्रकारके भाव वे प्रकाशित भी कर चुके थे। श्रीमालवीयजीने और श्रीमती एनी बेसेण्टने इस कलङ्ककी असत्यता उन्हींके सम्मुख प्रमाणित करना चाहा और सन् १६२१ ई०में इलाहाबादमें अखिल भारतीय सेवासमिति बौय स्काउट एसोसिएशन और इण्डियन बौय स्काउट एसोसिएशन का संयुक्त बृहत् सम्मेलन हुआ, जिसमें लोर्ड बेडेन् पौवेलने भारतीय स्काउटोंके कार्य्यकी बहुत प्रशंसा की और अपने पहलेके विचारोंपर खेद प्रकाशित किया। उन्होंने यह भी कहा कि भारतीय बालकोंको उनकी राष्ट्रीय संस्थामें समानताका पद प्राप्त रहेगा। मालवीयजीने बेडेन् पौवेल् महोदयसे मिलकर तीन बातोंपर बातचीत की कि गवर्नर या वाइसराय चीफ स्काउट न हों, बल्कि जनतामेंसे कोई चुना जाय। दूसरी बात यह थी कि स्काउटकी प्रतिज्ञामें देशके प्रति भक्ति की भी प्रतिज्ञा होनी चाहिए। तीसरी बात यह है कि स्काउटोंके गीतोंमें 'वन्दे मातरम्' का भी समावेश होना चाहिए। ये बातें बेडेन् पौवेल् महोदयने मान भी लीं। तदुपरान्त जो मेलके लिये सभाएँ हुईं उनमें यद्यपि यह कहा गया कि स्काउट संस्थाको गैर-सरकारी और देशके अनुकूल बनाना चाहिए किन्तु कार्य्यरूपमें ऐसा न होते देखकर श्रीमालवीयजीने इस सेवासमिति बौय स्काउट एसोसिएशनको अलग ही रखना ठीक समझा और यह उनकी संरक्षतामें भारतमें जो कार्य्य करती थी वह किसीसे छिपा नहीं है।

इस सेवासमितिने हरिद्वार और प्रयागके कुम्भ मेलोंके अतिरिक्त जब-जब और जहाँ कहीं कोई विपत्ति आई है—बाढ़में, भूकम्पों अकाल में—जाकर सहायता की है। जब जनरल डायरने पञ्जाबका खून किया था तब उसकी मरहम पट्टी करने और उसकी सेवा करनेके लिये यही सेवा समिति अपने चीफ़ स्काउटके पीछे पीछे अमृतसर,

लाहौर आदि सब जगह दौड़ी गई थी।

इस सेवासमितिके कई विभाग हैं:—शिक्षा, स्वास्थ्य, रेलवे सेवा, नायक-सुधार आदि। सारे देश भरमें इसकी शाखाएँ खुल गई हैं और हर एक मेले और उत्सवमें सेवासमितिके बालचरोंने प्रशंसनीय काम किया है। इसके सराहनीय कामसे प्रसन्न होकर सरकार भी इसे दो हजार रुपया साल देती है।

इसके अतिरिक्त हिन्दू स्त्रियों, मन्दिरों और अनाथोंकी रक्षाके लिये एक दूसरा दल मालवीय-जीकी सनातनधर्म सभाद्वारा चल पड़ा जिसे महावीर दल कहते हैं। यह एक प्रकारका धार्मिक स्वयंसेवक दल है पर ये लोग भी सब पर्वों, मेलों, उत्सवों आदिमें सेवा करते हैं। कुरुक्षेत्र मेलेपर जो उनका प्रबन्ध हुआ है उसकी प्रशंसा सरकारने भी की है। महावीर दलका विशेष सङ्गठन पञ्जाबमें हुआ है और सचमुच वहाँके स्वयंसेवकोंको देखकर यही मालूम होता है कि ये 'हर-हर महादेव' का जयकार बोलनेवाले सचमुच महावीर हनुमानजीकी सेनाके योग्य हैं।

मालवीयजीको अपने चीफ़ स्काउटके पदका गर्व है और उन्हें बाहर जाकर यह कहलानेमें अभिमान होता है कि वे चीफ़ स्काउट हैं। वे कोरे चीफ़ स्काउट नहीं हैं बल्कि उनका जीवन ही सेवामय है। एकबार प्रयागके कुम्भके अवसर पर सेवासमितिका कैम्प त्रिवेणी तटपर बनाया गया था। स्वयंसेवक बालूपर बिस्तरे बिछाकर लोट रहे थे। मालवीयजीने भी कैम्पमें ही अपना डेरा डाला। लोग दौड़े गए और उनके लिये चार-पाई उठा लाए। पर मालवीयजीने उसको वापस कर दिया और कहा कि यह कैसे हो सकता है कि स्वयंसेवक तो सोएँ ज़मीनपर और उनका सभापति सोए चारपाईपर।" यही मालवीयजी का बड़प्पन है।

जब सेवासमिति व्याय स्काउट एसोसिएशन और बेडेन पौवेल् दोनों एक हो गये उस समय यह समस्या आ खड़ी हुई कि चीफ़ स्काउट कौन हो। जब मालवीयजीको ज्ञात हुआ तो उन्होंने बड़े हर्षसे आशीर्वाद देते हुए कहा—मैं देशके हितके लिये यह पद त्याग करता हूँ और आशा करता हूँ कि सब स्काउट भारतका हित अपना प्रथम कर्त्तव्य समझें।

सेवा-धर्म बड़ा कठिन है पर जिसका शरीर शुरूसे सेवाकी कठोर तपस्यामें बीता है उसे अभ्यास हो जाता है और फिर वह दूसरोंके लिये आदर्श बन जाता है। ईश्वर करे हमारे चीफ़ स्काउट शतायु हों। जिस प्रकार हमलोग उनकी पचहत्तरवीं वर्षगाँठ मनाई हैं इसी प्रकार फिर अपने वृद्ध चीफ़ स्काउटको बीचमें बैठाकर उसकी सौवीं वर्षगाँठ मनाईथी।

अपनी सत्तरवीं वर्षगाँठके अवसरपर स्काउट मास्टरोंके साथ चीफ़ स्काउट मालवीयजी खड़े होकर वन्देमातरम् गा रहे हैं।

सोनेकी चिड़िया

यह भी एक समय था। दूर-दूरके यात्री, विद्वान्, व्यापारी भारतमें आते थे और भारतके लहलहाते हुए खेतों, हीरे-मोतियोंसे लदे हुए स्त्री-पुरुषों, और ऊँचे ऊँचे विशाल राज भवनों को देखकर सहम जाते थे। उनके लिये भारत भी एक अचरजकी जगह थी। जहाँ कुदाली मारो सोना निकलता है, आकाशसे अमृत बरसता है, घी दूधकी नदियाँ बहती हैं, खेतोंमें सोनेके थाल लगते हैं। "सोनेकी चिड़िया" दूर-दूरतक मशहूर हो गई। सबके दाँत इसपर गड़ गए। अपना अपना फन्दा लेकर सब इसकी ओर दौड़ पड़े। अब भी पुराने खण्डहरोंमें उस 'सोनेकी चिड़िया' के कुछ टूटे हुए पङ्ख मिलते हैं। ह्वेनत्साङ्ग और फ़ाह्यानके लिखे हुए ताड़के पत्ते उसकी कथा सुनाया करते हैं। ताजमहलके सङ्गमरमरकी शिलाएँ भी उसकी याद दिलाती हैं। महमूद गजनी, गोरी, तैमूर और अहमदशाह अबदाली अपना-अपना फन्दा लेकर आए और उस चिड़ियाके पङ्ख नोचकर ले गए, तब भी कुछ नहीं बिगड़ा। नुचे हुए पङ्खोंकी जगह नए निकल आए। पर न जाने कहाँसे कौन ऐसा बहेलिया आया जिसने पङ्ख तो नोच ही लिये पर साथ ही चिड़ियाका चुग्गा भी चुरा लिया और बेचारी चिड़िया न तो उड़ सकी, न चहचहा सकी। उसकी यह दशा हो गई कि अब गई—अब मरी।

भारतके खेत सचमुच सोना पैदा करते थे। इतना अन्न पैदा होता था कि न अपने भूखे रहते थे न अतिथि भूखा रहता था। इतना अन्न बचा रहता था कि दूसरे देश भी हमारे ही टुकड़ोंसे पलते थे। वस्त्रके व्यापारने तो हिन्दुस्थानकी कीर्त्ति समुद्रके पार पहुँचा दी। दूसरे देशोंकी सुन्दरियोंका भारतीय वस्त्रोंके बिना शृङ्गार ही नहीं हो सकता था किसी भी मशीनने आजतक इतनी सफाई नहीं दिखाई जैसी ढाकाके कारीगरोंने। यहाँका मलमल प्रत्येक रईस और नवावके शरीरपर चमकता था। इसीके बीच ईस्ट इण्डिया कम्पनीका राज्य आया। हिन्दुस्थानको मूर्खता सवार हुई। विलायती सामान और कपड़ोंसे इसके बाजार भर गए। कारीगरोंके अँगूठे काट लिए गए। उनके मुँहका कौर छीनकर विलायती कारीगरोंका पेट भरा जाने लगा। देशी मालपर टैक्स लगने लगा, कर बढ़ा दिया गया, उधर विलायतमें भारतीय कपड़ेपर कर अधिक लग गया, हिन्दुस्थानी कपड़ा पहननेवालोंपर जुर्माने होने लगे। भारतीय व्यापार सिर थामकर बैठ गया, टाट उलट दिया और दीवाला निकाल दिया। मरते हुए पेसली और मान्चेस्टरकी जान भारतका खून देकर बचाई गई।

विलायतसे रङ्गीन कपड़े आने लगे—बड़े आकर्षक और बड़े चमकदार। हिन्दुस्थानमें विलायती चीज़ोंका अम्बार लग गया। ब्याह-शादियोंमें खिलौने विलायती, साड़ियाँ विलायती, और सजावटका सामान विलायती। बाजा भी बजे तो अंग्रेज़ी दूल्हेकी फरमायश भी विलायती साइकिल और मोटर की ही होने लगी। हमारी बहनोंको भी जबतक गौकी चर्बीसे चमकाया हुआ विलायती कपड़ा न मिले तब तक उनका शौक नहीं पूरा होता। विलायती चूड़ियोंसे

उनका सुहाग हरा होने लगा। हमारे मूँछ मुँड़ाए हुए नौजवान—उनकी हालतपर सचमुच रोना आता है—सिरसे पैरतक विलायती रङ्गमें रँग गए। सिरपर हैट लगाकर, गलेमें नकटाई बाँधे हुए और सूट पहने हुए किसी हिन्दुस्थानीकी शकल तो देखिए—नारद मोहमें नारदजीकी जो शक्ल बनी थी वही समझिए। न जाने अपने देशके कितने बच्चोंके मुँहकी रोटी छीनकर इन युवकोंने अपना यह बनाव सिङ्गार शुरू किया है। कोई अपढ़ ऐसा काम करता तो बुरा न लगता। अफसोस यही है कि ये लोग अपनेको सभ्य और सुशिक्षित कहते हैं। अर्थशास्त्रके विद्वान् प्रोफेसरको इस बहुमूल्य वेढङ्गे वेशमें देखकर किसे हँसी न आयगी। कहावत है कि—जिसका चलन बिगड़ा उसका विश्वास क्या। देखें अभी इन सभ्य सुशिक्षित सज्जनोंके हाथ कितने बेचारे ग़रीबोंकी हत्या होनेको है। यह हम ही नहीं कहते हैं बल्कि न्यूयार्कके सुप्रसिद्ध वकील मिस्टर मायनर फेल्पस्का कहना है कि—"भारतवासियों को यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि स्वदेशीके बदलेमें विदेशी वस्तु व्यवहार करनेमें वे लोग अपने देशवासियोंके मुँहकी रोटियाँ ही नहीं छीन रहे हैं बल्कि उनकी हत्या भी कर रहे हैं।"

आजसे सतहत्तर बरस पहले प्रयागके एक युवकके मनमें बात आई कि विदेशी वस्तुओंने हमें बिलकुल बेबस कर दिया है। अगर विलायतवाले चाकू न भेजें तो हमारी तरकारी न कटे। गुलामीकी हद हो गई। युवकको तो आप समझ ही गए होंगे। हम मालवीयजीकी ही बात कह रहे हैं। सन् १८८१ ई० में उनके उद्योगसे व्यवहारकी देशी वस्तुएँ तैयार करनेके लिये प्रयागमें एक देशी तिजारत कम्पनी खुली जिससे देशी कारीगरोंको प्रोत्साहन मिले। मालवीयजीके मित्र बाबू राधाकृष्ण और बाबू हरदेवप्रसाद इसके मैनेजिङ्ग अध्यक्ष बने। यह देशी तिजारत कम्पनी छः वर्ष बड़ी अच्छी तरह चली। उसमें देशी वस्त्र, बटन, साबुन, चाकू, और ताले आदि बहुतसी चीजें बनने लगीं और खूब प्रचार हुआ पर उसके कार्य्यकर्त्ताओंको लोभने आ घेरा और और देशी तिजारत कम्पनी बन्द हो गई। इन दिनोंकी एक कथा पण्डित शिवराम वैद्यने कही है। वे लिखते हैं कि—

"मदनमोहनका स्वदेशी प्रेम बहुत पुराना है। बाबू राधाकृष्णजी खत्री और बाबू हरदेव प्रसादजी वगैरहके द्वारा प्रयागमें बड़ी धूम धामसे देशी तिजारत कम्पनी खुलवा चुकनेके उपरान्त एक दिन मदनमोहन मेरे पास आए और स्वदेशी वस्तुओंके विषयमें बातचीत होने लगी। मालूम हुआ कि मदनमोहनके हिंसा-विरोधी हृदयको एक नवीन व्याघात पहुँचा है। मदनमोहनने कहा कि जूतोंके कारण लाखों दीन और बेगुनाह पशुओंकी जान मारी जाती है। चमड़ोंके लिये असंख्य पशुओंको मारे जानेका तरीका डाक्टर जयकृष्ण व्यासने मुझे बताया है। उनकी बातें सुनकर मुझे बहुत दुःख हो रहा है और मेरे मनमें यही चिन्ता हो रही है कि किस प्रकार इन ग़रीब पशुओंके जीवनकी रक्षा की जाय।

बाबू राधाकृष्ण सुतसे कहा—बाबूजी! मैंने तो चमड़े का जूता पहनना छोड़ दिया, देखिए कपड़ेका जूता बनवाया है। कागजका बोट भी ऐसा मजबूत बनाया जा सकता है कि उससे गाडीका पहिया बन सकता है—ऐसा मैंने सुना है।"

तभीसे मालवीयजीने स्वदेशीका व्रत ले लिया और कष्ट तथा असुविधा सहकर भी तबसे विदेशीकी अपेक्षा देशीका ही प्रयोग करने लगे, केवल प्रयोग ही नहीं बल्कि उसका प्रचार भी करने लगे। सन् १८८१ ई० में मालवीयजीने मध्य हिन्दू समाजकी दूसरी बैठकमें 'स्वदेशी' पर एक बड़ा मर्मस्पर्शी व्याख्यान दिया, जिसमें अपने देशकी दरिद्रता, देशके उद्योग धन्धोंका नाश और विलायती व्यापारियोंकी अन्धाधुन्ध लूटका

ऐसा विशुद्ध वर्णन किया कि बहुतसे लोग रो पड़े और स्वदेशीके पुजारी बन गए।

अपने नगरमें तो मालवीयजी स्वदेशीका प्रचार कर ही रहे थे। अचानक सन् १६०५ ई० का साल आया—यही बङ्ग-भङ्गवाला। हिन्दुस्थानको पिट कर बुद्धि आई और उसने समझा कि हाँ, स्वदेशीका-प्रचार करना बड़ा ज़रूरी है। हिन्दुस्तानकी कारीगरी फिर अँगड़ाई लेकर आँखें मलकर उठ बैठी। सारे देशमें विदेशी कपड़ोंकी होलियाँ जलीं और हिन्दुस्थानी अपने कपड़े पहनकर भले लगने लगे।

इसी साल मालवीयजीके प्रयत्नसे सन् १९०५ ई०में भारतीय व्यावसायिक सम्मेलन हुआ, सन् १६०७ ई० में युक्तप्रान्त व्यावसायिक सम्मेलन हुआ और युक्तप्रान्त औद्योगिक समितिकी प्रयागमें स्थापना हुई। इन अवसरोंपर मालवीयजीने जो व्याख्यान दिए वे अत्यन्त भव्य थे। एक बार उन्होंने भारतीय शिल्प और उद्योगकी एक लहर पैदा कर दी। सारा देश इस लहरमें बह चला।

दिसम्बर सन् १६०७ ई० में सूरत-कांग्रेसके साथ-साथ स्वदेशी कौन्फ़रेन्स हुई। उसमें भी मालवीयजीने बड़ा प्रमुख भाग लिया था। उस समय जो उन्होंने व्याख्यान दिया उससे भारतकी दुर्दशाका पूरा-पूरा पता लग जाता है।

इससे पहले कांग्रेसके मञ्चपर भारतकी ग़रीबी-पर आँसू बहाते हुए कई बार मालवीयजीने स्वदेशीके व्यवहारके लिये अपील की थी और केवल राजनीतिक अधिकार माँगनेवाली कांग्रेसने इस आर्थिक पहलूकी महत्ता समझ ली थी। यह मालवीयजीका ही बूता था कि कई बार स्वदेशीके प्रचारके लिये कांग्रेसने अपनी आवाज़ उठाई और जनताको उसके लिये उत्तेजित किया और अपने देशकी बनी चीज़ें हमारे बाज़ारोंमें और घरोंमें दिखाई देने लगीं।

पर यह स्वदेशी आन्दोलन दिल्ली-दरबारके बाद ठण्ढा पड़ गया। हिन्दुस्थानका जलवायु ही कुछ ऐसा है कि जितनी जल्दी जोश आता है उतनी ही जल्दी ठण्ढा भी हो जाता है। इसके बाद सन् १६१४ ई० की लड़ाई आई और सारा देश अपना धन और जन लेकर उस महायुद्धकी पूजाके लिये तैयार हो गया। सारे देशने मिलकर अंग्रेज़ी राज्यकी हिलती नींवको सँभालनेके लिये सभ्यताके नामपर, न्यायके नाम पर, शान्तिके नाम पर तीन सौ करोड़ रुपया न्यौछावर कर दिया। जिस देशमें सत्तर फ़ी सदी लोगोंको सालके छः महीने भोजन न जुड़ सकता हो उन्होंने इतना धन देकर कितनी साँसत सही होगी, यह कल्पना कर लीजिए।

उधर लड़ाई हो रही थी, इधर १६ मई सन् १६१६ ई० को भारतके उद्योग और व्यवसायकी जाँचके लिये सरकारने एक कमीशन नियुक्त किया, जिसके सभापति सर टौमस हौलैण्ड हुए। भारतीय ग़ैरसरकारी जनताकी ओरसे मालवीय-जी नियुक्त हुए। जनताको इससे पूर्ण सन्तोष हुआ। दो वर्ष यह कमीशन जाँच करता रहा। सन् १६१८ ई० के अन्तमें कमीशनने रिपोर्ट दी। मालवीयजी उस कमीशनकी बहुतसी सिफ़ारिशोंसे सहमत न हुए। उन्होंने बड़ा परिश्रम करके एक अत्यन्त गम्भीर और विस्तृत टिप्पणी लिखी। वह टिप्पणी क्या है भारतका आर्थिक इतिहास ही समझिए। उन्होंने सिफ़ारिशें की हैं कि किस प्रकार हमारे देशका उद्योग और व्यापार उन्नति कर सकता है। उसमें जो उन्होंने सिफ़ारिशें की हैं और प्रस्ताव किए हैं उनसे भारतकी बहुतसी आर्थिक समस्याएँ सुलझ सकती हैं। भारतकी दशाका वास्तविक अध्ययन करनेवालेको और प्रत्येक सच्चे भारतीयको यह टिप्पणी अवश्य पढ़नी चाहिए।

इससे पहले भी मालवीयजीने सन् १६०७ ई०में स्थित डीसेण्ट्रलाइज़ेशन कमीशन (विकेन्द्रीकरण जाँच) के सामने १३ फ़रवरी सन् १६०८ ई० को लखनऊमें साक्षी देकर यह सिद्ध किया था कि केन्द्रीय सरकारको चाहिए कि विभिन्न प्रान्तोंको स्वतन्त्रता देकर अपना बोझ भी कम कर दें और

प्रान्तीय सरकारोंको भी अपना काम सहूलियतसे करने दें। इसीके बाद सन् १९१२ ई०में पब्लिक सर्विस-कमीशनके सामने ३१ मार्च सन् १९१३ ई० को मालवीयजीने गवाही देकर यह प्रमाणित कर दिया कि भारतीयोंमें भी अपना शासन करनेकी योग्यता है। इन्हीं दिनों कमीशनोंके सामने गवाही देनेके कारण ही औद्योगिक कमीशनपर मालवीयजी नियुक्त हुए। इसके बाद सन् १९२६ ई० में कृषि-कमीशन बैठा और उसमें भी मालवीयजीने बड़ी महत्त्वपूर्ण गवाही दी और भारतीय कृषिकी उन्नति के उपाय और कृषकोंको दशा सुधारनेकी रीतियाँ बताईं।

सन् १९२० ई० में असहयोग आन्दोलनके साथ साथ-साथ विदेशी वस्त्रका बहिष्कार, चरखे और खद्दरका प्रचार तथा स्वदेशी आन्दोलन शुरू हो गया। सन् १९२१ ई० में नेता लोगोंकी जेल-यात्रा और सरकारकी दमन नीतिसे हिन्दुस्थान फिर जागा और उसकी आँखें खुलीं। जगह-जगह *विलायती कपड़ोंकी होली होने लगी,* चर्खे घूमने लगे, करघे चलने लगे। सैकड़ों हज़ारों खाली बैठे स्त्री-पुरुषोंको भोजन-वस्त्र मिलने लगा। इस आन्दोलनको मालवीयजीके कारण बड़ा प्रोत्साहन मिला। सन् १९२१ ई० में और उसके बाद भी मालवीयजीने देशभरमें दौरा करके स्वदेशीका प्रचार किया। जिन-जिन लोगोंने मालवीयजीके उन दौरोंका विवरण पढ़ा होगा उनको याद होगा कि किस प्रकार मालवीयजीकी अपीलपर विदेशी कपड़ोंका ढेर *लग जाता था और किस प्रकार* उनके व्याख्यानोंमें स्त्रियाँ और पुरुष बेचारे दीन-भारतकी दुर्दशापर जी खोलकर रोते थे। आज जो चारों ओर खद्दर दिखाई दे रहा है इसमें मालवीयजीका कम हाथ नहीं है। अखिल भारतीय स्वदेशी सङ्घकी स्थापना करके मालवीयजीने स्वदेशी प्रचारकी जड़ जमा दी। उस संस्थाके द्वारा देशका कितना काम हुआ यह सभी जानते हैं।

सन् १९२४ ई० में कालपीमें स्वदेशी प्रदर्शिनी खोलनेके लिये उन्हें निमन्त्रण दिया गया था। आप अस्वस्थताके कारण न जा सके किन्तु आपने जो सन्देश भेजा था वह बड़ा महत्त्वपूर्ण है। आपने लिख भेजा था कि—

"जिस प्रकार अँधियारेमें लालटेन सहायक होती है, उसी प्रकार देशके वर्तमान दुःख और दारिद्र्यकी दशामें स्वदेशीका व्रत हमारा सहायक है। यह ऐसा पवित्र काम है कि इसमें अपना भी भला होता है और अपने देशके बहुतसे भाई और बहनोंका भी। मैं छप्पन वर्षसे स्वदेशी व्रतका पालन करता हूँ। जैसे ईश्वरकी पूजा करना धर्म है, उसी प्रकार देशकी सेवा करना धर्म है और उस सेवाका सबसे अच्छा साधन स्वदेशी वस्तुओंका बनाना, स्वदेशी वस्तुओंका खरीदना, स्वदेशी वस्तुओंका बेचना तथा उनका व्यवहार बढ़ाना है। देशके हितके लिये यह मेरी प्रार्थना है कि गाँव-गाँव और घर-घरमें हमारी माताएँ, बहनें और बेटियाँ सूत कातें और हमारे भाई फ़ुरसतके समय कपड़ा बुनें और गाँव-गाँवमें घर घरमें खद्दरका और स्वदेशी, पुरुष और स्त्रियों-के तनकी पवित्रता और शोभा बढ़ावें। गाँव-गाँवमें बाज़ार-बाज़ारमें स्वदेशी वस्तु और स्वदेशी वस्त्र दिखाई दें। हर ज़िलेमें समय-समयपर स्वदेशी मेला या प्रदर्शिनी हो, जिसमें ज़िलेकी बनी हुई चीज़ें दिखाई और बेची जायँ।

"मेरा निवेदन है कि हमारे भाई तहसीलोंमें और बड़े बड़े गाँवोंमें स्वदेशी वस्तुओंकी आढ़त *क़ायम करें और घर-घरमें स्वदेशीका प्रयत्न करें।* इसमें देशका मङ्गल होगा, देशकी दरिद्रता कम होगी, देशकी सम्पत्ति बढ़ेगी और प्रजामें धन-बल के साथ धर्म-बल बढ़ेगा।

"मैं परमात्मासे प्रार्थना करता हूँ कि वह आप सबके हृदयमें अपनी भक्ति के साथ-साथ देशकी भक्ति दृढ़ करे और उसके द्वारा हमारा प्यारा देश स्वतन्त्रता, सुख और सम्पत्तिसे फिर हरा-भरा, बलवान और प्रतापवान हो।"

एक और स्थान पर उन्होंने कहा है कि—

"जिन लोगोंके बीच मनुष्य रहता हो उनको दुखी देखकर सुखी और दुखी देखकर दुखी होना परम धर्म है। इसके पोषणमें आपने च्यवन मुनि का वर्णन किया, जिन्होंने नदीमें तपस्या करनेके समय मछलियोंका सहवास हो जानेके कारण उनके प्राण बचानेके लिये स्वयं प्राण दे देना स्वीकार किया था। तब क्यों न उन्हींकी सन्तान आज दिन अपने बन्धु ताओंको देखकर उनके दुःख मिटानेका यत्न करें? इस समय भारतवर्षमें करोड़ों मनुष्य व्यापार न होनेके कारण भूखों मर रहे हैं। लाखों जुलाहे और कारीगर, जो अपनी कारीगरीके द्वारा अपने कुल कुटुम्बका पोषण करते थे, आज विलायती चीजोंके कारण दाने-दानेको तरस रहे हैं। यदि सब विचारशील लोग एकमत होकर सङ्कल्प कर लें कि वे देशी वस्तुओं के आगे विलायती वस्तुओंको नहीं खरीदेंगे तो आज लाखों दुखियोंको रोजगार मिल जाय और उनके पेटकी आग बुझानेका उपाय निकल आवे। इङ्गलैण्ड, औस्ट्रेलिया, अमेरिका आदिके लोग इस बातको अपना धर्म समझते हैं कि वे अपने देश-बान्धवोंको रोज़गार देनेके लिये उन्हींकी बनाई चीजें काममें लावें चाहे उसमें उसका दाम भी अधिक लगे, वस्तु भी उतनी सफ़ाईसे बनी न मिले जितनी और-और देशोंकी बनी मिलती है। पर यहाँ प्रायः लोग यह समझते हैं कि देशी वस्तुओं के प्रचारका सङ्कल्प करना केवल मूर्खता है। किन्तु यह उनका अधर्म है।''' यदि देशका दुःख कम करना है तो देशमें रोजगार व्यापार बढ़ाना पहला काम है और इसके पूरा करनेके लिये सबको कटिबद्ध होना उचित है।"

भारत बड़ा दरिद्र है। यह बात तो बहुत लोग जानते हैं कि थोड़े-थोड़े दिनों बाद हमारे देशमें दुर्भिक्षका दौरा हुआ करता है पर यह बात कितने लोग जानते होंगे कि भारतमें नित्य ही दुर्भिक्ष रहता है। देशमें जो इतनी अधिक मृत्युएँ हो रही हैं क्या उसका कारण बीमारी है? सच पूछिए तो उसका कारण यह है कि बच्चेको पढ़ानेके लिये, घरको साफ़ रखनेके लिये, घर बनवानेके लिये, शरीरको गर्मी, सर्दी और बरसात से बचानेके लिये उनके पास पैसे नहीं हैं। सिवाय मौतके और इन्हें कहाँ आराम मिलेगा और इस मौतके लिये वे स्त्रियाँ जिम्मेदार हैं जो लन्दन, फ्रांस, इटली और जर्मनीकी साड़ियाँ मँगा कर पहनती हैं, विलायती साबुन, तेल, इत्र, पिन और पाउडर प्रयोग करती हैं। इसके लिये वे पुरुष जिम्मेदार हैं जो अपने देशवासियोंको भूखा मारकर विलायती कीमती कपड़े पहनते हैं, सिनेमामें और नये नये शौक़ोंमें पैसा खर्च करते हैं। उन्हें सावधान होना चाहिए और समझ लेना चाहिए कि उनके पापसे करोड़ों भारतवासी भूखे मर रहे हैं और यदि यही दशा रही तो इन भूखी आत्माओंके शापसे ये शौक़ीन लोग भी हाथ पसारते दिखाई देंगे और ये जिन विदेशियोंकी भूख बुझा रहे हैं, पेट भर रहे हैं, वे ही इनकी मूर्खतापर हँसेंगे और घृणाके साथ ठोकर मारेंगे। अब भी चेत सकते हैं, कुछ बिगड़ा नहीं है। हमारा विश्वास है कि मालवीयजीके स्वदेशी प्रेमको देखकर, उनका स्वदेशीके लिये त्याग देख कर हमारी भारतीय बहनें और भाई अपना श्रृङ्गार भारतीय वस्तुओंसे करेंगे और यदि भारतीय वस्तु न मिले तो उतना शृंगार त्याग देंगे। गरीब लोग अपने आँसुओंसे तुम्हारे पैर धोएंगे और उनके बच्चे सूखी रोटी खाकर भी तुम्हें आशीर्वाद देंगे। हमारे बड़े बूढ़े लोग सच ही विदेश-यात्राका विरोध करते थे। जबसे भारतकी लक्ष्मीने जहाज पर चढ़ना शुरू किया तभीसे भारतके बुरे दिन शुरू हो गए। पिंजड़ेमें पड़ी हुई सोनेकी चिड़िया घुल घुलकर मरने लगी। पर अभी उसमें प्राण बाकी हैं। उसे भारतीय कपड़ा उढ़ा दीजिए, हिन्दुस्तानका दूध पिलाइए, वह चङ्गी हो जायगी।

प्रजापति

एक बारकी बात है, श्री विजयराघवाचारी काशी आए हुए थे, उन्होंने मालवीयजीसे पूछा कि आपके कुटुम्बमें कितने बच्चे हैं? मालवीयजी मुसकुराए और बोले 'ठहरिए मुझे सोचना पड़ेगा। क्या बताऊँ मैं और मेरी स्त्री ही इसके लिये जिम्मेदार हैं।'

मालवीयजी महाराजके समान ही उनकी धर्मपत्नी श्रीमती कुन्दन देवी भी ईश्वर और धर्ममें अगाध श्रद्धा रखती थीं। उनकी शिक्षा सामान्य रूपसे घरमें हुई थी। हिन्दीके साथ-साथ संस्कृतका भी आपको अच्छा ज्ञान था। रामायण, गीता आदिका पाठ बड़ी अच्छी तरहसे कर सकती थीं। माता भागीरथीमें आपकी अगाध श्रद्धा थी। सत्तर वर्षकी अवस्थामें जब बायाँ हाथ पूरे तौरसे काम लायक नहीं था, जबान भी साफ़ नहीं थी, दिमाग भी कुछ कमज़ोर हो गया था, तब भी प्रातःकाल तीन बजेसे ही गङ्गा-स्नानकी तैयारीमें लगी हुई आप दिखलाई पड़ती थीं। जब आप स्वस्थ थीं तब तो आपका यह नित्यकर्म था कि तीन बजे उठकर मुहल्लेकी और स्त्रियोंके साथ प्रयागके क़िलेतक पैदल जाना और वहाँसे नावपर चढ़कर स्नान करने सङ्गम तक जाना। ६ नवम्बर सन् १९३४ ई० (भातृ द्वितीया) के दिन आप स्नान करके लौट रहीं थी। साथमें उनके सबसे छोटे पुत्र गोविन्द मालवीयजीके छोटे-छोटे बच्चे भी थे। उनके लिये खिलौना खरीदते समय एक दौड़ते हुए इक्केके पाँवदानसे आपको गहरी चोट लगी। आप मूर्छित हो गई और उनकी अवस्था दिन-प्रति-दिन खराब होती गई, परन्तु काशी विश्वनाथको अभीष्ट था अपनी पुरीमें रख कर उनको गङ्गा-स्नान कराना। हुआ भी ऐसा ही। उक्त दुर्घटनाके बाद जबसे आपका स्वास्थ्य सुधरा, आप काशी ही में रहती थीं और यथा-साध्य प्रतिदिन गङ्गाजीका स्नान और बाबा विश्वनाथका दर्शन करती थीं। प्रातः आठ बजे लौटकर दस बजेतक पूजन आदिसे निवृत्त होकर आप रसोई आदिकी व्यवस्था तथा छोटे-मोटे घरेलू कार्य्योंकी देख-रेख करती थीं। यह भी कम आश्चर्यकी बात नहीं है कि उन्होंने अपने आदर्श जीवनमें कभी भी किसी दूसरेके हाथकी बनी रसोई नहीं खाई। इधर जबसे गोविन्द पहली बार पकड़े गए थे तबसे आप एक ही बार भोजन करती थीं।

ऐसे पवित्र जीवनका निर्वाह करते हुए, पुत्र-पौत्रोंका सुख देखते हुए उन्होंने चैत्र कृष्ण २ संवत् १९९७ को इस संसारसे विदा ली।

आपके पाँच कन्या और पाँच पुत्र हुए—जिन में तीन पुत्र श्री राधाकान्तजी, मुकुन्दजी तथा गोविन्द जी, और पुत्री रमा तथा मालती विद्यमान हैं।

धर्म और राजनीतिमें सदासे भेद रहता आया है। कट्टर धर्मात्मा, सात्विक गुणोंका उपासक राजनीतिका भी पण्डित हो यह विलक्षण बात है। राजनीतिमें दाँव-पेंच हैं तो धर्ममें सत्य और शुद्धि। फिर भी मालवीय परिवारने अपने आचरण-द्वारा यह विभेद दूर कर दिया है। उन्होंने दिखला दिया है कि गौ और सिंह एक ही स्थानपर बिना किसी विघ्नके रह सकते हैं। यदि पूज्य मालवीयजी महाराजके चरितमें हम इसकी सार्थकता पाते हैं तो श्रीमती मालवीयजीमें भी इसकी आभा स्पष्टतया मौजूद है,
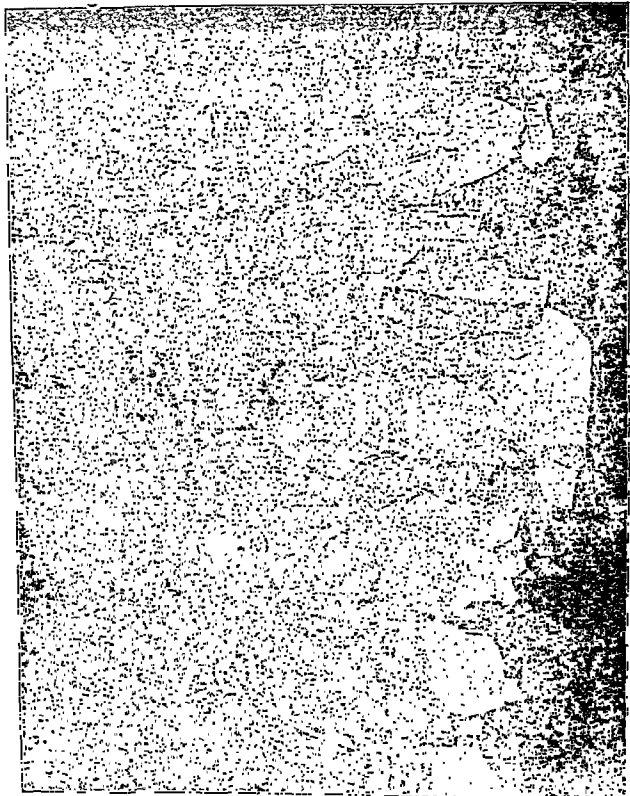
पूज्य मालवीयजी अपने पुत्रों के साथ—दाईं ओरसे मुकुन्द (तीसरे पुत्र), रमाकान्त (ज्येष्ठ पुत्र), पूज्य मालवीयजी, राधाकान्त (द्वितीय), गोविन्द (चतुर्थ) और नीचे श्रीधर (रमाकान्तजीके पुत्र)

स्वतंत्र संग्राममें भी भाग लिया। आपको जो काम जब दिया गया, उसको खूब उत्साह और यथा-विधि पूरा कर दिखाया। आन्दोलनके समयमें पुरुषोत्तम पार्कमें महिलाओंकी सभामें आपने सभानेतृका आसन भी ग्रहण किया था, और समय समयपर महिला-मण्डलको प्रोत्साहन आदि भी दिया करतीं थीं। इस प्रकार धर्मके साथ साथ देशके उद्धारमें भी आपने हाथ बटाया। आप शान्तिपूर्वक किसी भी काम को करना श्रेयस्कर समझती थीं। व्यर्थके वितण्डावाद और नामकी लोलुपता आपमें ज़रा भी नहीं थी। यही कारण है कि आप देश-सेवाके पुरस्कार—जेलयात्रासे वञ्चित रहीं। अपने पुत्र गोविन्द मालवीयकी जेलयात्रापर जो आपने उन्हें आशीष दिया था, वह वीर माताके ही योग्य था।

पण्डित रमाकान्त मालवीयने प्रयाग विश्व-विद्यालयसे बी० ए०, एल एल० बी० करके सन् १९०७ ई० में वकालत प्रारम्भ कर दी। इनका घरका नाम बङ्कटी भैया था। थोड़े ही समयमें आपने अच्छी ख्याति प्राप्त कर ली और प्रयाग हाइकोर्टके सम्मानित वर्क लोंमें आप एक हो गए। क़ानूनमें अत्यन्त निपुण होनेके ही कारण सन् १९२० ई० में आप उदयपुर राज्यमें जजके पदपर नियुक्त कर दिए गए। वर्ष भरके बाद आप सिरोही स्टेटमें दीवान बनाए गए, और सन् १९३३ से ३६ ई० तक आप श्रीनाथ-द्वारामें प्रधान प्रबन्धककी हैसियतसे कार्य करते रहे। आप युक्तप्रान्तीय बड़ी कौन्सिलके कांग्रेसी सदस्य होकर खड़े हुए। आपने सत्याग्रह आन्दोलनमें काफी भाग लिया। सन् १९१६ ई० में प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीके मन्त्री भी रह चुके थे। आपके सम्बन्धमें एक अत्यावश्यक बात यह है कि आपने अपने पूज्य पिताजीके रूपकी छाया पाई थी। उनका पहनावा, रहन सहन और बोली तकको ऐसा अपनाया था कि पुज्य मालवीयजी महाराजमें और आपमें बहुत कम भेद जान पड़ता था। एक बार एक सभामें आप व्याख्यान दे रहे थे। सभाके सभापति रायबहादुर बाबू विश्वम्भर-नाथजीने जनताको यद्यपि आपका परिचय दे दिया था फिर भी जनताको यह भ्रम बना ही रहा कि आप मालवीयजी ही हैं। प्रयागके प्रसिद्ध कांग्रेस-कार्यकर्त्ता श्री विश्वम्भरनाथजीकी मृत्युके अवसरपर जब पूज्य मालवीयजी श्री रमा-कान्तजीकी दुपलिया टोपी पहनकर श्री मोतीलाल नेहरूके यहाँ गए तो उन्हें भी भ्रम हुआ और उन्होंने 'रमा' कहकर पुकारा। पूज्य मालवीयजीके 'नहीं' कहनेपर भी मोतीलालजीने कहा—नहीं, रमा ही तो हो। ऐसी घटनाएँ अनेक बार हो चुकी थीं। आप हिन्दू महासभा, सनातनधर्ममहासभा, हिन्दी सम्मेलन लीडर आदि संस्थाओंके प्रधान मन्त्री रह चुके हैं। आप प्रयाग विश्वविद्यालयके कोर्टके सदस्य भी थे। आपको भी देशभक्ति का दण्ड कारावास भोगना पड़ा। सत्याग्रह आन्दोलनमें नैनी जेलके बन्दी थे। गुरु-वार माघ शु० १३, सं० १९९९, १८ फरवरी १९४२ को सेवा उपवनके सामने गंगातट पर आपका देहान्त हुआ।

पूज्य मालवीयजीके द्वितीय पुत्र श्री राधा-कान्तजी भी वकील हैं। ये घरमें लेडुआ भैया कहलाते हैं। बीचमें आपकी रुचि व्यव-सायकी ओर झुकी थी। आप सूखा वर्फ बनाने-की जानकारी पानेके लिये विदेश भी गए थे। विदेशमें आपने कट्टर सनातनधर्मीका जीवन बिताया। वहाँ अपने ही हाथों भोजन बनाते और शुद्धाचारसे रहते थे। लौटनेपर आर्थिक कठिनाइयोंके कारण आप अपने कार्य्योंमें सफल न हो सके। सार्वजनिक कार्य्यों—विशेषकर हिन्दू जाति और धर्म-सम्बन्धी बातोंमें आप बड़ी दिलचस्पी लेते हैं।

श्री मुकुन्दजी बी० ए० तक पढ़े और आपने प्रयागमें ही व्यवसाय करना प्रारम्भ किया। काम बढ़नेपर आप कानपुर गए और वहाँसे बम्बई चले गए। आपका व्यापार खूब जोरोंपर था कि सत्याग्रह आन्दोलन छिड़ा और आपने

पत्नीसहित उसमें भाग लिया। बम्बई ऐसे सुदूर प्रान्तमें भी आपके अपूर्व त्याग और विनयशीलताने आपको लोकप्रिय बना दिया। आप वहाँके कुशल कार्य्यकर्त्ताओंमें गिने जाते थे। इसी सिलसिलेमें आपको कई बार जेल जाना पड़ा जिससे आपके व्यापारको बहुतत ही धक्का पहुँचा। आन्दोलन बन्द होनेपर आप अपनी जन्मभूमि प्रयागमें वापस चले आए और तबसे यहीं रह रहे थे। अब मध्यभारत में हैं।

पूज्य मालवीयजीके चतुर्थ पुत्र श्री गोविन्द मालवीय हैं। आपकी शिक्षा काशी विश्वविद्यालयमें हुई है। जब देशमें चारों ओर प्रिन्स ऑफ वेल्सके बहिष्कारकी धूम मची हुई थी और पूज्य मालवीयजी उनके स्वागतका आयोजन कर रहे थे उस समय गोविन्दजी बी० ए० कक्षामें पढ़ रहे थे। आपने अपने पिताजीके विचारोंका विरोध किया, विद्यार्थियोंका साथ दिया और कौलेज् भी छोड़ दिया। बादमें आपने कौलेज्की उच्च शिक्षा एम० ए०, एल्-एल्० बी० तक प्राप्त की। सन् १९२८ ई० में आपका एक जोरदार भाषण प्रयागमें हुआ था जिसके फलस्वरूप आपको कठोर जेलयातना सहनी पड़ी। उस समय सरकारकी निगाहोंमें युक्त-प्रान्तके दो नवयुवक—दोनों अपने पिताके सच्चे सपूत—एक तो हमारे भारतके प्रधान मन्त्री नेहरूजी तथा दूसरे श्री गोविन्दजी खटक रहे थे। सरकारकी आँखोंमें इनसे अधिक जालिम आदमी और सरकारी अमनचैनको नष्ट करनेवाला अन्य व्यक्ति कोई नहीं था। फलतः दोनोंको कारागारका दण्ड मिला। देश उस समय इन्हीं नवयुवकोंपर आँख लगाए था। आज हमारे श्री नेहरूजीने उसीको चरितार्थ कर दिया है, पर परिस्थितियोंमें बँधे होनेके कारण पूज्य पिताजीमें अतुल श्रद्धा और उनके नाना प्रकारके कार्य्योंमें लगे रहनेके कारण उनके स्वास्थ्यपर जो असर पड़ रहा था उसको देखकर श्री गोविन्दजीको बहुत दिनोंतक पूज्य मालवीयजीके सहकारी मन्त्रीके रूपमें रहना पड़ा। इधर वे जीवनबीमाके कार्यमें संलग्न थे और न्यू इन्श्योरेन्स लिमिटेडके मैनेजिङ्ग डाइरेक्टर पदपर थे किन्तु साथ ही राजनीतिक आन्दोलनोंमें भाग लेनेके कारण वे भी पकड़े गए और अब केन्द्रीय धारा सभा तथा विधान परिषद्के सदस्य हैं और अब काशी हिन्दू विश्वविद्यालयके उपकुलपति हैं।

मालवीयजीने जो श्री विजयराघवाचारीसे बात कही थी, वह सचमुच ठीक ही थी। शायद ही उनके घर-भरमें कोई ऐसा हो जो मालवीयजीके परिवारके सभी बच्चोंका नाम जानता हो।

मालवीयजीको अपने घरके देखभालकी फुरसत ही नहीं रहती थी। एकबार जब उनकी धर्मपत्नीजीको चोट लगी तो आप पटनेमें दौरा कर रहे थे। वहाँ उन्हें इसकी खबर मिली। लोगोंने उन्हें कहा कि आप प्रयाग चले जाइए पर उन्होंने कहा कि नहीं, इस समय मैं कई स्थानोंपर पहुँचनेका वचन दे चुका हूँ। पहले वहाँ जाकर तब मैं प्रयाग जाऊँगा। किन्तु जब वे घरपर रहते थे तो अपनी पुत्रियों और नाती-पोतोंसे ख़ूब बातें करते और खेला करते थे। बच्चोंमें बैठकर वे बच्चे बन जाते थे। दूसरोंके बच्चोंको भी वे कम प्यार नहीं करते थे।

मालवीयजी जब अपने परिवारके बीचमें बैठते थे तो हँसी मजाक़ भी ख़ूब करते थे और चुटकियाँ भी लेते थे। मालवीयजी एक सुखी परिवार के प्रजापति थे और उनकी छायामें रहकर वह परिवार निरन्तर उन्नत ही होता रहा। उनके परिवारमें छोटेसे बड़े तक—क्या लड़की क्या लड़के, और क्या बहुएँ—सभी देश सेवाके रङ्गमें रँगे हैं जिनमेंसे उनके दो पुत्र, दो बहुएँ और एक पौत्रको सरकारका अतिथि बनकर जेलमें भी रहना पड़ा है। ईश्वर करे यह परिवार और भी उन्नति करे और इनके द्वारा देशका कल्याण हो और यश बढ़े।

शतदल कमल

रातके पिछले पहरमें जब अचानक मन्द वायु कुछ चपल होकर सोई हुई कलियोंको जगाता फिरता है और चटक-चटककर छोटी-बड़ी कलियाँ अलसाती, मदमाती-सी जग उठती हैं और आकाश इन नन्हें-नन्हें बच्चोंके कोमल अङ्गोंको सजा देता है और फिर जब ये हवाके हल्के झूलेमें झूलते हुए मोती बरसाते हैं उस समय भला कौन ऐसा प्राणी होगा जो अपनेको भूल न जाय। पर इससे भी सुन्दर एक और दृश्य है। तालाबके निर्मल जलपर हरे-हरे चौड़े-चौड़े पत्ते बिछे हुए हैं। रातका पिछला पहर समझकर उन्हीं पत्तोंके बीचसे आँख मूँदकर एक तपस्वी झाँकता है और धीरे-धीरे ऊपर उठता है। एक पैरपर खड़ा होकर अपने इष्टदेवके आनेकी बाट जोहता है। पौ फटने लगती है। पूरबका आकाश रङ्ग बदलता चलता है—हलका नीला, फिर सफेद, उसके बाद पीला, फिर नारङ्गिया, फिर लाल—इन इन्द्रधनुषके रङ्गोंकी साड़ी पहनकर ऊषा आती है, अरुण आता है और उसके पीछे-पीछे चला आता है सूर्य—प्रकाश देता हुआ, अन्धकार भगाता हुआ, अज्ञानको मिटाता हुआ। इधर इस तपस्वीके हृदयमें अपने इष्टदेवके आनेका पता चलता है। हुलासके मारे वह खिल उठता है—वैसे ही जैसे परीक्षामें उत्तीर्ण होकर विद्यार्थी, और फिर जबतक वह इष्टदेव सामने आता है, तबतक तो यह शतदल कमल अपने निर्मल पङ्खोंमें सुनहरे परागका थाल लेकर अपने इष्टदेवकी पूजा करने को खड़ा हो जाता है। न जाने कितने कवि कमलके इस सुन्दर स्वरूपपर मुग्ध हो गए और इसी नशेमें उन्होंने संसारके सम्पूर्ण सौन्दर्यको तराजूके पलड़ेमें रखकर एक कमलसे तौल दिया। फिर भी कमल भारी ठहरा। भगवान्‌के नेत्र, मुख, कर, चरण—सभी कमल बन गए और जिसके भी सौन्दर्यने हमारे हृदयको बन्दी बनाया उसके रूपको भी हमने कमलकी कसौटीपर कसकर जाँचा। कवियोंने कमलको सर्वश्रेष्ठ सुमन कहा, सबसे पवित्र पुष्प माना और उसे फूलोंका राजा ठहराया। पर एक ही बात उनकी हम नहीं मानते। वे कहते हैं कि सूर्य जब अपने करोंसे उसे छूता है तभी वह खिलता है। पर बात ऐसी नहीं है। रातको जब सारे जीव अपने अपने आवासोंमें शीतसे बचकर आराम करते हैं, उस समय ध्यान लगाकर, आँख मूँदकर ठण्डे जलमें शीत सहता हुआ भी तपस्वी कमल एक पाँवपर खड़ा रहता है। उसीकी तपस्या सूर्यको आकर्षित करती है, उसीकी तपस्या प्रकाश लाती है, ज्ञान लाती है और जागर्त्ति लाती है। वह न होता तो सारा संसार अज्ञान और अँधेरेमें पड़ा सोता रहता। कमलकी तपस्याका महत्त्व देवताओंतकने जाना है। ब्रह्माजीसे वेदका ज्ञान उत्पन्न हुआ पर ब्रह्माजी कहाँसे उत्पन्न हुए? उन्हें कमलने पैदा किया। सरस्वतीजी भी श्वेत-पद्मासना हैं और लक्ष्मीजीको भी कमल ही सुहाता है, और उस शतदल कमलकी सब पङ्खुड़ियाँ एकसी सुन्दर, एकसी कोमल, एकसी मनोहर और एकसी गन्धवाली हैं। सौन्दर्य, पवित्रता, कोमलता, स्वच्छता और तपस्विताके साक्षात् मूर्तिमान स्वरूप कमलके आगे अपने आप सिर झुक जाता है। जी करता है कि इसे हृदयमें रख लें। जङ्गलमें घूमते हुए कहीं उसका परिमल ही वायुके साथ हमारी नासिकातक पहुँच जाय तभी प्रफुल्लित हो उठता है। पर यदि कहीं यह

पड़ जाय तो उतने क्षण तो संसारको याद भूल जाती है, आदमी अपनेको खो देता है। कोई दुष्ट बालक उसपर कीचड़ भी फेंके, उसकी पङ्खुडी भी नोचे, फिर भी वह कमल हो रहता है, लोग उस बालककी मूर्खताको ही दोष देते हैं।

प्रत्येक महापुरुष ऐसे ही शतदल कमल होते हैं। अज्ञान, कायरता, द्वेष और अहङ्कारके अँधेरेमें पड़े हुए लोगोंके लिये ज्ञानका सूर्य्य बुलानेको ये लोग तपस्या करते हैं और जब अन्धकार मिट जाता है तब अपना पूर्ण स्वरूप दिखाकर अपनी मधुर याद छोड़कर विदा लेते हैं।

चाहे कोई कुछ कहे पर यह मानना पड़ेगा कि भगवान् कृष्णने गीतामें अर्जुनसे जो प्रतिज्ञा की थी कि जब जब धर्मकी हानि होगी, प्रजापर क्लेश होगा, तब तब मैं आऊँगा वह उन्होंने सदा सच किया। बुद्ध, महावीर, स्वामी शङ्कराचार्य्य, रामानुजाचार्य्य, वल्लभाचार्य्य, चैतन्य महाप्रभु, सूरदास, तुलसीदास, गुरु गोविन्दसिंह, स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द आदि धर्मप्रचारक और सन्त और महाराणा प्रताप, शिवाजी, दुर्गादास, महाराजा रणजीतसिंह आदि वीर योद्धा तथा लोकमान्य तिलक, मालवीयजी और गान्धीजी जैसे महापुरुषोंको देखकर कौन कहेगा कि भगवान् श्रीकृष्णने अपनी बात नहीं रक्खी।

सन् १९२९ में जापान द्वीपके प्रसिद्ध नेता श्री रैदन सोहतोमो महोदय भारतका भ्रमण करने आए और यहाँ आकर यहाँके बड़े-बड़े नेताओंसे मिले। उन्होंने हिन्दू मिशनके सभापति स्वामी सत्यानन्दजीको एक पत्र लिखा था कि—

"मालवीयजीके साथ थोड़ी देर बात करनेपर मेरे मनमें सबसे बड़ा भाव यह आया कि मैंने वास्तवमें एक महापुरुषके दर्शन किए हैं। पण्डितजीके कमरेसे बाहर निकलते ही सहसा ये शब्द मेरे मुँहसे निकल पड़े थे। मैं मालवीयजीके चिरस्मरणीय कार्य्य काशी हिन्दू-विश्वविद्यालयसे बड़ा प्रभावित हुआ था।"

मालवीयजी जिन परिस्थितियोंमें पैदा हुए थे, जिस वातावरणमें उन्होंने जन्म लिया था, उसका वर्णन हम कर ही चुके हैं। शतदल कमलके समान उन्होंने अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा लेकर, कठोर तपस्या करके, देशका अज्ञान दूर करके, दरिद्रता, कायरता और द्वेष आदिको दूर करनेका प्रयत्न किया वह भी आप पढ़ ही चुके होंगे। कमलकी तपस्याने सूर्य्यको बुलाकर जो जगत्‌की सेवा की है वह तो जान ही चुके, अब ज़रा कमलका स्वरूप भी तो देख लीजिए।

भगवान् श्रीकृष्णने गीताके सोलहवें अध्यायमें दैवी सम्पत्तिका जिक्र करके महापुरुषको जाँचनेकी कसौटी बता दी है। उन्होंने लिखा है—

> अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।
> दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्॥
> अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
> दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम्॥
> तेज क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता।
> भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत॥

अर्थात् निडरपन, शुद्ध सात्त्विक वृत्ति, ज्ञानयोगमें व्यवस्थित होना, दान, दम, यज्ञ, स्वाध्याय, तप, सरलता, अहिंसा, सत्य, अक्रोध (सदा हँसमुख रहना), त्याग, शान्ति, उदारता, सब प्राणियोंमें दया, तृष्णा न रखना, कोमलता, अनुचित कामकी लज्जा, गम्भीरता (अचपलता अर्थात् सोच-विचारकर काम करना) तेज, क्षमा, धैर्य्य, शुद्धता, द्रोह न करना और अहङ्कारका अभाव ये दैवी सम्पत्तिवाले पुरुषमें गुण होते हैं। इसी आधारपर ज़रा मालवीयजी महाराजका स्वरूप तो देखें।

निडरपन

पिछले पृष्ठोंमें कई बार आप पढ़ चुके होंगे कि मालवीयजी कितने निर्भय थे। न जाने कितनी बार सरकारने बन्दरघुड़कियाँ दीं, लाल-लाल आँखें दिखलाईं पर मालवीयजीके वीर हृदयपर उनका कुछ असर न हुआ। सिंह जब अपनी शानसे चला जाता है उस समय अन्य जानवरोंके भोंकने-चिल्लानेसे वह अपनी गति नहीं बदलता,

विचलित नहीं होता। पिंजड़ेमें बन्द होकर भी शेर, शेर ही रहता है। यह निर्भयताका गुण उनमें शुरूसे ही रहा। जो बात उन्होंने ठीक समझी उसके कहने और करनेमें कभी आगा-पीछा न किया। संसारके विरोधके बीचसे निर्भय होकर यच निकलना कोई साधारण बात नहीं है।

एक दफ़ेकी बात है, मालवीयजीके बड़े लड़के रमाकान्त मुहल्लेमें खेल रहे थे। किसी दूसरे लड़केने उनकी गेंद छीन ली। वे रोते हुए मालवीयजीके पास आए और शिकायत की—'बाबू! हमार गेंद एक लड़का ले लिहा है सो दिवाय दो।" मालवीयजी बड़े बिगड़े और कहा कि 'जाओ उससे गेंद लेकर आओ। रोते हुए क्या आए हो! हम होते तो बिना गेंद लिए थोड़े ही आते!' मालवीयजी खम ठोंककर लड़नेवाले हैं, धर्मयुद्धमें पीठ दिखाकर भागनेवाले नहीं हैं और न दूसरोंको भागनेका उपदेश देते हैं।

पिछली बार जब कलकत्तेमें मुसलमानोंका दङ्गा हुआ तो मालवीयजी निषेधाज्ञा होनेपर भी वहाँ गए। वे मोटरपर बैठे चले जा रहे थे, अचानक एक मुसलमानका लड़का उनकी मोटरके नीचे आ गया। मुसलमानोंका मुहल्ला था। उन 'अल्ला हो अकबर' के दिनोंमें वैसे ही जान आफ़तमें रहती थी, फिर यह घटना तो आफ़तसे बढ़कर ही समझो। चारों तरफ़से मुसलमान जुट गए। मालवीयजीके साथ डाक्टर मङ्गलसिंह थे। उन्होंने राय दी कि मोटर तेजीसे भगा ले चलिए, कौन जाने क्या हो जाय। पर मालवीयजीने कहा—नहीं, उस लड़केको अस्पताल ले चलना होगा। वे मोटरसे उतर गए। उस लड़केको उठाकर मोटरमें बैठाया और अस्पताल पहुँचा दिया। इतना ही नहीं बल्कि जबतक वह अच्छा नहीं हो गया तबतक थोड़ी-थोड़ी देर बाद उसकी पूछताछ भी करते रहे। इतनी उत्तेजित भीड़मेंसे किसीकी मजाल नहीं हुई कि मालवीयजीके शरीरको छू भी सके।

इसी प्रकार मुलतानके दङ्गेके समय मुसलमानोंकी सभामें जाकर उन्होंने जो खोटी खरी सुनाई और ऊँच-नीच सुझाया उसे सुनकर दाँतों तले उँगली दाबनी पड़ती है। आठ दिन पहले जो हिन्दूका ख़ून पीनेको तैयार थे वे उस दिन बकरी बने हुए उस हिन्दू नेताकी झिड़कियाँ चुपचाप कान दबाकर सुन रहे थे। भला कितने हिन्दू नेताओंको इतना साहस होगा?

मन और हृदयकी शुद्धि

मालवीयजी जैसे बाहरसे धवल दिखाई देते थे उससे भी धवल वे भीतरसे थे। कहा जाता है कि आचारसे ही विचार बनते हैं। मनुष्य जैसा भोजन करता है, जैसे लोगोंकी सङ्गत करता है, जैसी पुस्तकें पढ़ता है वैसे ही उसके विचार हो जाते हैं। मालवीयजीका जन्म शुद्ध वैष्णव परिवारमें हुआ था। किसीके हाथका छुआ नहीं खाना और अपने हाथसे भोजन बनाना यह इनके परिवारका नियम था और इनका यह नियम व्यवस्थापिका सभाओंमें, कांग्रेसकी बैठकोंमें, जेलमें और विलायतकी गोलमेज़ परिषद्में भी चलता रहा। शुरूमें इनके पास नौकर नहीं थे। उस समय ये अपने हाथसे भोजन बनाते थे। इनका चूल्हा-बर्त्तन सब साथ चलता था। जब ये कांग्रेसकी स्थायी समितिके सदस्य थे तब काशीमें युक्तप्रान्तीय सदस्योंके चुनावकी सभा हुआ करती थी। ये आकर श्री रामकाली चौधरीके यहाँ ठहरते थे पर भोजन अपने हाथसे बनाते थे। खान-पानके विषयमें मालवीयजी बड़े पक्के थे। उनको जहाँ अपवित्रताकी गन्ध आई कि वे उससे दूर भागे। वायसरायकी पार्टियोंमें तथा और भी बहुतसी दावतोंमें वे शरीक तो होते रहे पर कभी इन्होंने वहाँका जल तक न पिया। एसेम्बलीमें पाँच-पाँच घण्टे व्याख्यान देनेपर भी इन्होंने एक बूँद पानी गलेसे नीचे नहीं उतारा। उनका आचार ही पानीके न मिलनेपर भी उनके कण्ठको बल देता रहता था।

एक बारकी घटना है, पञ्जाबका दौरा करते हुए मालवीयजी पेशावर पहुँचे। यों तो वे नित्य तेलकी मालिश कराते ही थे, लेकिन रात-

दिन दौड़-धूपसे जब उनका शरीर थक जाता था उस समय आप इतना तेल मलवाते थे कि उसे तैल-स्नान कहें तो अनुचित न होगा। इसी लिये तेलभरी बोतल आपके साथ यात्रामें भी चला करती थी।

तेलकी बोतल ख़ाली हो चली थी। पेशावरसे रावलपिण्डीको आना था। मालवीयजीके रसोइया और उनके प्राइवेट सेक्रेटरी एक बोतल चमेलीका तेल बाज़ारसे ले आए। बोतल नई देखकर आपको जब यह बतलाया गया कि बोतल बाज़ारसे ली गई है तो इस शङ्कासे कि कभी उसमें शराब न न रही हो, आपने तेल-समेत बोतल फिंकवा दी। देखनेमें शायद बात छोटी मालूम पड़ती होगी, पर मालवीयजीकी असीम पवित्रताका इससे पूरा अन्दाजा लग सकता है।

एक बार तेजपूरसे मालवीयजी बाबू राजेन्द्र प्रसादके सङ्ग डिब्रूगढ़के लिये रवाना हुए। वहाँसे उन्हें अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस कमिटीकी बैठकमें लखनऊ पहुँचना था। गोहाटीमें ब्रह्मपुत्रके इस पार अमीनगाँव तथा उस पार पाण्डु स्टेशन है। डिब्रूगढ़से-रेलसे पाण्डु पहुँचकर, वहाँसे अमीनगाँव स्टेशनपर गाड़ी पकड़नेके लिये स्टीमर पर सवार होनेके लिये मुश्किलसे तीस मिनटका समय बचता था। डिब्रूगढ़से लखनऊका सफ़र, बीचमें केवल कुछ घण्टोंके लिये कलकत्तेमें विश्राम और मालवीयजीकी कठोर जीवन-चर्या! इसलिये आपने अपने प्राइवेट सेक्रेटरी श्री चन्द्रबली पाण्डेयको तेजपूरसे गोहाटी इस आदेशके साथ रवाना किया कि पाण्डु स्टेशनपर कच्ची रसोईकी तैयारी रक्खें। आसामके प्रधान नेता श्री तरुनराम फूकनके यहाँ पण्डितजीके ठहरनेका प्रबन्ध आसाम प्रान्तीय कांग्रेस कमिटीने किया था। उस समय फूकन महोदय भी जेल में ही थे। यद्यपि वे जातिके ब्राह्मण थे परन्तु मालवीयजीने यह आदेश दिया कि भोजन तैयार करनेके लिये फूकन महाशयके यहाँसे पात्र न लिये जायँ, कौन जाने उनके भोजन-पात्रोंमें मत्स्य-मांसका संसर्ग रह चुका हो। मिट्टीके बर्त्तन में ही चावल, दाल तथा भाजी बनाई जाय, सो भी ऊपरसे छोड़ दी जाय। मालवीयजी किस कड़े आचारमें रह कर दुनिया भरका काम करते थे, यह कम अचरजकी बात नहीं है। उनका खानपान उनके आचारकी तपस्या एक प्रधान अङ्ग था। वे जितना काम करते थे, उसकी तुलनामें उनका भोजन पासङ्ग भी नहीं था,—दिनमें दो चार फुलके, थोड़ा सा भात और एक दो तरकारी, बस इतना ही। अचार, चटनीका बिल्कुल शौक़ नहीं था। फल खानेका भी शौक़ कभी नहीं था। अन्तमें बीमार होनेसे वैद्यों और डाक्टरोंकी रायसे ही वे नियम से फल खाने लगेथे। खजूर, सन्तरा, अंगूर ये उनके प्रिय फलोंमें थे। पर दूध और मक्खन वे नियमसे लेते थे। प्रातःकाल और सायंकाल सन्ध्या करनेके बाद वे आध-आध सेर दूध अवश्य पीते थे। उनकी यात्रामें भी एक गोल चूड़ीदार लोटेमें दूध सदा उनके साथ रहता था। व्याख्यान देने या कहीं जानेके पहले भी वे प्रायः आध पाव, पाव भर गायका दूध पी लेते थे। मालवीयजीकी थालीमें चाय, काफ़ी आदिको कभी कोई स्थान नहीं मिलता। बीमारीसे उठनेपर कहने-सुननेसे कभी-कभी थोड़ा शहद भी ले लेते थे। रेलके सफ़रमें दूधमें सने हुए आटेकी पूरियाँ साथ चलती थीं पर कभी-कभी गाड़ी आ जानेपर वे रोटी बनाकर नमकके साथ खाकर चल देते थे जैसा माउण्ट आबू रोड स्टेशनपर सन् १९१८ ई० में किया था। इसी आचारके कठोर नियमके कारण ही वे अंग्रेज़ी दवा भी नहीं लेते थे। इसी आचारकी शुद्धिने उनका हृदय अत्यन्त शुद्ध बना दिया था और उसमें भर दिया था इतना नैतिक साहस।

एक बारकी बात है। मालवीयजी किसी अफ़सरसे बातें कर रहे थे, पण्डित रामनारायण मिश्र भी वहीं बैठे थे। उसी बातचीतके सिलसिले में उन्होंने मिश्रजीसे कुछ ऐसी बात कह दी जो उस अफ़सरके सामने नहीं कहनी चाहिए थी। मिश्रजीने मालवीयजीको पत्र लिखा कि आपने

उक्त अवसरपर ऐसी बात कह दी थी। मालवीयजीने तत्काल तार देकर उनसे क्षमा माँग ली। यह हृदयकी शुद्धि बहुत कम लोगोंमें पाई जाती है।

मालवीयजीके पवित्र हृदय-मन्दिरमें कपटका प्रवेश नहीं हो पाता था। जो बात उनका हृदय स्वीकार करता था उसे निष्कपट रूपसे कह देनेमें सङ्कोच नहीं करते थे पर हाँ, कहते थे इस मीठे ढङ्गसे कि सुननेवाला भी उनकी प्रशंसा किए बिना नहीं रह सकता था।

ज्ञानयोगमें व्यवस्थिति

ऐसे बहुत कम लोग हैं जो संसारके काम भी करते रहें और अपनी बुद्धिके विकासके लिये निरन्तर ज्ञान भी प्राप्त करते चलें। मालवीयजी केवल बी० ए०, एल्‌एल्० बी० ही नहीं पास थे। स्कूल और कौलेजके पाठ्यक्रमके अतिरिक्त उन्होंने जो धर्मशास्त्रों और विभिन्न साहित्योंका अध्ययन किया था वह उनकी कौलेजकी पढ़ाईसे कहीं अधिक महत्त्व रखता है। मालवीयजी जब कभी धार्मिक व्याख्यान देते थे या कथा कहते थे, उस समय मालूम होता था कि शास्त्र और पुराणोंका उन्होंने कितना गम्भीर मनन किया था। फिर अपने लिये तो बहुत लोग ज्ञान एकत्र करते हैं, पर जिसने दूसरोंके लिये ज्ञानका स्रोत खोल दिया हो, उसकी ज्ञानयोगमें कितनी व्यवस्था होगी, अनुमान कर लीजिए।

सात्विक दान।

सैकड़ों धर्मशालाएँ, पाठशालाएँ, स्कूल, मदरसे, अनाथालय, मन्दिर और मस्जिद नित्य खुलते जाते हैं। दानी, उदार महानुभाव नित्य अपनी थैली खोलते चले जाते हैं पर उसके पीछे उनकी प्रसिद्ध होनेकी भावना बनी ही रहती है। वास्तवमें दान वह है जो बिना किसी बदलेके दिया जाय। मालवीयजीके दानकी एक घटनाका उल्लेख पण्डित रामनारायण मिश्रजीने किया है। वे लिखते हैं :—

"मैं विद्यार्थी था, पण्डित मदनमोहन मालवीयजीका नाम सुना करता था। जब वे बाबू रामकाली चौधरीके यहाँ ठहरा करते थे, दो एक बार उनके दर्शन भी हुए थे।

मेरे स्वर्गवासी मामा डाक्टर छन्नूलालने जो काशी नागरी प्रचारिणी-सभाके उन दिनों सभापति थे, स्वास्थ्य-रक्षा पर एक लेख, सभाके एक अधिवेशनमें शायद सन् १८९५ ई० में पढ़ा था। सभाकी वह बैठक कारमाइकल लाइब्रेरीके कमरेके बाहर पच्छिमकी तरफ़ चबूतरेपर हुई थी। उसमें श्री मालवीयजी भी आए थे। डाक्टर साहबने स्वास्थ्य रक्षाकी दृष्टिसे भारतीयोंके रहन-सहनकी कड़ी आलोचना की थी। श्रीमालवीयजीने उस समय एक छोटा सा मधुर व्याख्यान देकर कहा था कि डाक्टर साहबने बातें सब ठीक कही हैं पर "सत्यं ब्रूयात्, प्रियं ब्रूयात्" सिद्धान्तका अनुसरण नहीं किया है। जहाँतक मुझे याद है, मैंने उनका यह पहला ही व्याख्यान सुना था। उस व्याख्यानको सुननेके बाद मैं उनके पास गोस्वामी भवानीपुरीके यहाँ, जहाँ वे ठहरते थे, पहुँचा। उन दिनों पण्डित मथुराप्रसाद मिश्रजी अपने समयके बड़े प्रसिद्ध हेडमास्टर माने जाते थे। वे पेन्शन लेकर दशाश्वमेध घाटपर एकान्तवास करते थे। वे अपने अंग्रेजी उच्चारणके लिये प्रसिद्ध थे। मुझपर उनकी बड़ी कृपा थी। एक दिन मैं श्री मालवीयजीको उनके पास ले गया। दोनों एक दूसरेसे बहुत प्रेम और श्रद्धासे मिले।

उन्हीं दिनों नागरी-प्रचारिणी-सभाके लिये मैंने जापानका इतिहास लिखा था। श्रीमालवीयजीने पूछा कि ओकाक्यूराकी नई पुस्तक 'जापान बाई दी जापानीज़" पढ़ी है या नहीं। मैंने कहा, वह पुस्तक मँहगी है इसलिये मैं उसे पा नहीं सका। इसी प्रकार बातचीत करता मैं उनके साथ काशी स्टेशनतक गया। वे प्रयाग जानेके लिये रेलमें बैठ गए और कुछ लोगोंसे बातचीत करने लगे। रेल छूटने ही वाली थी कि क्लार्कने धीरेसे मेरे हाथमें कुछ रुपये

और कहा कि श्री मालवीयजीकी आज्ञासे मैं जापान-सम्बन्धी पुस्तक खरीदनेके लिये दे रहा हूँ। मैंने रुपया लेनेसे इनकार किया। क्लार्कने आग्रह किया—इतनेमें रेल चल दी।"

अन्त तक मालवीयजीके द्वारसे कोई विमुख नहीं गया। यह तो सभी जानते हैं कि मालवीयजी संसारके सबसे बड़े भिखारी थे। जो दूसरोंके आगे हाथ फैलाता हो उसके आगे दूसरे भी हाथ फैलाते हों, यह तो देखनेमें बिलकुल अटपटी बात जान पड़ती है पर बात सच थी। न जाने कितने याचक वहाँ करुणाके साथ आते थे और मुसकानके साथ जाते थे। न जाने कितने दीन विद्यार्थी मालवीयजीकी कृपासे विद्या पा चुके। उसका कारण यही था कि बहुतसे धनी मानी मालवीयजीके हाथोंसे ही धनका सदुपयोग कराना चाहते थे। कभी आप गए हों मालवीयजीके बँगलेपर, एक भीड़ जमा रहती थी—फीस चाहिए, पुस्तक चाहिए, वस्त्र चाहिए, मानो कुबेरका खजाना खुला हुआ हो। पर आपने यह भी देखा होगा कि उस 'संसारके सबसे बड़े भिखारी' के द्वारसे निराश कोई नहीं लौटता था।

दम

मालवीयजीका पवित्र उदात्त और निष्कलङ्क चरित्र ही उनके दम (इन्द्रिय-निग्रह) का सबसे बड़ा और पूर्ण प्रमाण है।

यश

जैसे-जैसे हम लोग सभ्य होते जाते हैं वैसे-ही-वैसे हम अपने बड़ोंका सम्मान करना भूलते जा रहे हैं। हममें कुछ ऐसी मादकता छाई हुई है कि हम अपनेको सब कुछ समझ बैठे हैं। हम यह नहीं समझते कि हमारा शरीर हमारे बड़ोंका आशीर्वाद है, हमारा ज्ञान हमारे बड़े बूढ़ोंकी तपस्याकी देन है और हमारी शक्ति हमारे बुजुर्गोंका प्रसाद है। शास्त्रोंमें कहा गया है कि जहाँ बड़ोंका सम्मान होता है वहाँ आयु, विद्या, यश और बल बढ़ते हैं। शायद बूढ़ोंकी सेवा न करनेका ही यह परिणाम है कि हमारी आयु कम हो गई, अविद्याका साम्राज्य बढ़ गया, यश देश छोड़कर भाग गया और बल रह गया है—आत्महत्या करनेमें। बड़ोंका सम्मान स्वतः एक बड़ा भारी यश है। जो ऐसा यश करते हैं उन्हें सारा संसार अपना मानता है और वे अपने बड़े लोगोंके आशीर्वादसे फलते-फूलते हैं। मालवीयजी अपने माता-पिताके अनन्य भक्त थे और अन्त तक उन्होंने माता पिताका चित्र निरन्तर अपनी आँखोंके आगे रक्खा। घरके बाहर भी सभी बड़े बूढ़ोंका वे बड़ा आदर और बड़ी सेवा करते थे।

एक बार पण्डित बालकृष्ण भट्टजी बड़े बीमार पड़े। वे उन्हें बड़ा मानते थे। बस उनकी सेवामें लग गए। उस समय इन्होंने जो उनकी सेवा की वह कोई क्या करेगा।

काशीकी रणवीर संस्कृत पाठशालाके अध्यक्ष स्व० पण्डित अनन्तराम शास्त्री इनसे अवस्थामें बड़े थे। काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालयके कुलपति होते हुए भी मालवीयजी उनका पैर छूआ करते थे।

गत १९३३ की जनवरीकी बात है। विद्वान् पण्डित चन्द्रशेखर मिश्र (गूलराविष्कारक) जी अपनी पुरी-यात्रामें कलकत्तेमें ठहरे थे। उन्हीं दिनों मालवीयजी भी कलकत्ते पधारे थे। मिश्रजीको जब मालवीयजीके आनेका पता चला तो मिलनेके लिये उनके निवासस्थान—बिड़ला-हाउस पहुँचे। मोटरसे उतरकर जैसे ही वे सीढ़ियोंपर चढ़ने जा रहे थे कि उधरसे मालवीयजी कहीं बाहर जानेके लिये आते हुए दीख पड़े। बाहर ही सम्मिलन हो गया। मिश्रजी पण्डितजीका सम्मान करनेके लिये झुकना ही चाहते थे कि उन्होंने बीचमें ही रोककर स्वयं झुककर उनके पैर स्पर्श किए। मिश्रजी कहने लगे—आपने देशपूज्य नेता होकर ऐसा अनुचित कार्य्य क्यों किया? मालवीयजी मुस्कुराते हुए

बोले—अनुचित मैंने किया या आप स्वयं करने जा रहे थे। मुझसे वयोवृद्ध होकर आप मेरे पैर छूने जा रहे थे, क्या यह उचित था? आप मुझसे अवस्थामें बड़े हैं, आपका पदस्पर्श मुझे करना चाहिए।

मालवीयजीने बड़े बूढ़ोंका सत्सङ्ग भी बहुत किया था। प्रयागमें मालवीयजीके मुहल्लेमें ही एक व्यासजी वैद्य रहा करते थे। वे भी मालवीय ब्राह्मण ही थे। मालवीयजी रातको नौ दस बजेसे लेकर बारह-ग्यारह बजे राततक वेदान्त और परमार्थ सम्बन्धी बातचीत उनसे करते रहते थे या वैद्यकके नुस्खे लिखते रहते थे।

मालवीयजीके पुराने प्राइवेट सेक्रेटरी पण्डित चन्द्रवली पाण्डेयने लिखा है कि वे अम्बालेसे पञ्जाब राजनीतिक सम्मेलन, बटालामें सम्मिलित होनेके लिये जा रहे थे। अम्बाला जङ्क्शनपर और सामानोंके सिवाय उनका बक्स लेकर भी कुली लोग एक प्लैटफार्मको चले। मेरी अनुभवशून्यता तथा असावधानीसे कुली कुल सामान लेकर नौ दो ग्यारह हो गए। बड़ी छानबीन हुई। बहुत दिनोंतक रेलवे पुलीसने भी पता लगाने का प्रयत्न किया, परन्तु सब निष्फल। पूज्य माता पिताके जिन चित्रोंको वे नित्य श्रद्धा भक्तिसे देख लिया करते थे अब वे आपसे सदाके लिये विलग हो गए। इन चित्रोंके खो जानेसे मालवीयजीको बहुत कष्ट हुआ। उन्हीं सब सत्सङ्गों और वृद्धोंकी सेवाओंने ही मालवीयजीको मालवीयजी बनाया था।

मालवीयजीका घर मुसाफिरखाना, अतिथिशाला, जो कहिए वही था। कोई न कोई अतिथि उनके घर सदा रहता ही था। पर वे भी अतिथियोंकी बड़ी खातिर करते थे। पर यह तो एक साधारण व्यवहारकी बात है। सभी ऐसा करते हैं। पर नीचे लिखी घटनासे आपको उनकी शुद्ध 'मालवीयता' का परिचय मिलेगा—

दुपहरी ढल चुकी थी। मालवीयजी भोजन करके निकले ही थे कि एक साधु आए। मालवीयजीने पैर छूए-कहिए महाराज क्या सेवा करूँ। साधु बोले—"मैं भोजन चाहता हूँ।" मालवीयजी बोले—'अच्छा आप जरा सा बैठिए, मैं अभी प्रबन्ध करता हूँ। मेरे घरमें चौका उठ चुका है। मैं पड़ोसके मित्रके घरसे लाता हूँ।" और सचमुच साधुके मना करनेपर भी आपने भोजन लाकर दिया।

मालवीयजीके पास जो जाता था, जो उनसे मिलता था उसे मालवीयजीसे एक वस्तु तो तत्काल मिल जाती थी—उनकी मन्द मुसकान। केवल मीठी मन्द मुसकान और कुशल मङ्गलमें अभ्यागतका हृदय हरनेवाले, उसकी थकावट दूर करनेवाले और उसे सन्तुष्ट कर देनेवाले भला कितने लोग होंगे?

स्वाध्याय

हिन्दुओंकी पुरानी चाल यह रही है कि वे प्रातःकालकी सन्ध्याके साथ कुछ भगवान्‌का भजन और गीता भागवत आदि धर्मग्रन्थोंका पाठ कर लिया करते हैं।

मालवीयजी नित्य श्रीमद्भागवत अथवा महाभारतका स्वाध्याय करते थे। महत्त्वका शायद ही कोई वाक्य इन ग्रन्थ रत्नोंमें हो जिसे उन्होंने रेखाङ्कित न कर रक्खा हो।

मालवीयजीके स्वाध्यायका फल उनकी डायरी है। उनकी डायरीमें नित्यकी घटनाएँ नहीं लिखी हुई हैं बल्कि उसे हम एक नीतिका सग्रह कह सकते हैं। अनेक कवियों और नीतिकारों और धर्मग्रन्थोंके सुन्दर नीतिपूर्ण दोहे, श्लोक आदि उन्होंने उसमें लिख रक्खे थे।

तप

गर्मीके दिनोंमें भरी दोपहरीमें चारों ओर अग्नि जलाकर तपते हुए साधुओंको आपने देखा होगा। जाड़ेके दिनोंमें गलेतक जलमें खड़े होकर मन्त्र जपते हुए महात्माओंको भी होगा। एक पाँवपर खड़े होकर ...

लोग भी आपकी दृष्टिमें आप होंगे। वे वास्तवमें तपस्वी हैं, उनको हम सादर प्रणाम करते हैं। पर ये लोग इस तपस्याके द्वारा अपने आत्माकी शान्तिका मार्ग ढूँढ़ते हैं, अपने लिये स्वर्गमें सुखका स्थान सुरक्षित करनेमें लगे हुए हैं। पर जो आदमी अपने सब सुखोंको लात मारकर, पैंतीस करोड़ देशवासियोंके सुख-दुखमें, भूख-प्यास सहकर, शारीरिक कष्ट सहकर, हाथ बँटाता फिरता हो और निरन्तर उनके कल्याणकी बात सोचता हो उसे आप तपस्वी नहीं कहेंगे तो फिर क्या कहेंगे? मालवीयजीकी इस तपस्याने उन्हें अद्भुत शक्ति भी दी थी।

पण्डित शिवराम वैद्यने मालवीयजीकी तपस्विताकी कुछ घटनाएँ दी हैं। वे लिखते हैं—

"मदनमोहन ब्राह्मण-बालक तो हैं ही साथ ही तपस्विता भी इनमें कम नहीं है। इन्फ्लूएन्ज़ाके अवसरपर मेरे भतीजे चि० काशीप्रसादको निमोनिया जैसा बुखार था और एकदम बेहोशीका दौरा हो गया। गोदान वगैरह भी करा दिया गया। उस समय मेरी अवस्था पागलोंकी सी थी। मैंने आदमी भेजकर मदनमोहनको बुलाया, कह दिया कि जहाँ मिलें उनको फ़ौरन् ले आओ। इसके बाद मैं चिकित्सकोंके पास दौड़ा। डा० सुरेशको लेकर आया। मदनमोहन आ गए थे। उन्होंने मुझे सान्त्वना देते हुए कहा—घबरानेकी बात नहीं है। काशी अच्छा है। मैंने जब आकर देखा तो विश्वनाथ ब्रह्मचारीने डा० अनन्तप्रसादकी बताई हुई मुँहके भीतर बफ़ारा देने कि दवा शुरू कर दी थी। डा० सुरेशने भी उस बफ़ारेको, जिसमें कुछ दवाका भी योग था, पसन्द किया और कहा कि इस दवासे काशी अच्छे हो जायँगे। इस अवसरपर मुझे यही विश्वास हो रहा था कि दवा वगैरह एक तरफ़, अगर मदनमोहन मेरे यहाँ आ जायँ तो काशी सुखी हो जाय। मदनमोहन कोई वैद्य-डाक्टर न थे। मगर मेरे मनमें जो बातें उठी थीं वे पूरी उतरीं।

"इसी प्रकारकी एक दूसरी घटना पहले घट चुकी थी। उस समय मालवीयजीके मझले भाई पण्डित जयकृष्णचन्द्रजीकी हालत संग्रहणीके रोगसे बहुत बिगड़ गई थी। बड़े-बड़े वैद्य डाक्टरोंने जवाब दे दिया था। उस समय मदनमोहन मेरे पास दौड़े आए और बड़े ज़ोरसे मुझसे कहा—मैंने सुना है कि भैयाको आपने भी जवाब दे दिया है। बड़ी भूलकी बात है। उठो, चलो हमारे साथ और उनकी दवा आरम्भ करो। वे बिलकुल अच्छे हो जायँगे। मुझे ऐसा मालूम पड़ा मानों भगवान कृष्ण अर्जुनसे कह रहे हैं—उत्तिष्ठ कौन्तेय! युद्धाय कृतनिश्चयः।" अब किस हिम्मतसे कह देता कि उनके बचनेकी कोई उम्मीद नहीं। इसलिये सीधे चुपचाप मदनमोहनके साथ हो लिया। मेरा भी साहस और आत्मबल बढ़ गया था और हिम्मत पड़ी कि दवा दे दूँ। मैंने दवा करना आरम्भ कर दिया। धीरे-धीरे मदनमोहनके आत्मबलने सहायता की और पण्डित जयकृष्णजी आरोग्योन्मुख होने लगे। धीरे धीरे जहाँ उनको छटाँक-आध पाव दूध हज़म होना कठिन था वहाँ उनको १२-१४ सेर तक दूध हज़म होने लगा। इस बीचमें उन्हें ऐसा बल हुआ कि वे अखाड़ेमें गए और एक पहलवानको पछाड़ा। इस घटनाकी खबर दो दिनतक न दी गई क्योंकि उनकी कमरमें हुक हो गई थी।"

एक बार आप पटनेमें थे। आपके पैरमें एक फुड़िया निकल आई थी। आपने वैद्यजीसे मञ्जूरी ली और एक दिनमें दो सौ मीलसे अधिक दूरीकी यात्रा करके नौ भाषण दिए। आप फिर पटना आ गए। उसी समय प्रयागमें उनकी धर्मपत्नीजी यमद्वितीयाके दिन एक इक्केसे चोट खा गईं। इस घटनाका तार पूज्य मालवीयजीको मिल गया पर आप इलाहाबाद नहीं लौटे। पैरका दर्द बढ़नेपर भी आपने नौ स्थानोंमें भाषण दिए और दिन भर घूमते रहे। इसी तपस्याने मालवीयजीको सबके हृदयमें बैठा दिया।

सरलता

महापुरुषोंमें एक बड़ा भारी गुण होता है

सरलता। इसी गुणके कारण वे दूसरोंकी बातें एकदम सुन लेते हैं और मान बैठते हैं यहाँतक कि कभी-कभी तो वे बातें उनके हृदयपर ऐसी छाप लगा देती हैं कि लाख प्रयत्न करनेपर भी नहीं हटाई जा सकतीं। मालवीयजीका हृदय तो इतना सरल था कि वे सारे संसारको अपने समान ही पवित्र, शुद्ध, सत्यवादी समझते थे इसीलिये कुछ भले आदमी (!) उनकी इस सरलतासे लाभ उठाकर उनके मनमें बहुतसी झूठी और भ्रमपूर्ण बातें भर देते थे जिसका परिणाम दूसरोंके लिये कभी-कभी अच्छा नहीं होता था। पर साथ ही मालवीयजी व्यवहार-कुशल भी थे। इसलिये वे अधिकतर तो ताड़ लेते थे पर महापुरुषका सरल हृदय आखिर कहाँतक दूसरेकी वाणीपर सन्देह कर सकता था?

अहिंसा

मालवीयजीका अहिंसा-प्रेम तो ऐतिहासिक हो गया है। जो अपनी तुलना छोटे-छोटे जानवरोंसे करनेपर गर्व करता हो, मच्छड़ जैसे दुष्ट प्राणीको भी प्रेमकी दृष्टिसे देखता हो उसके अहिंसा भावका भला वर्णन ही क्या हो सकता है? मालवीयजीके हृदयमें मनुष्यको हिंसाका तो कहना ही क्या साधारण जीवोंको भी वह प्यारकी दृष्टिसे देखते थे। वे मन, वाणी और शरीरसे किसीको भी कष्ट नहीं दे सकते थे।

सत्य

पूज्य मालवीयजी जब सत्यपर आघात होते देखते थे तो उसका विरोध करने और सत्य कहनेमें नहीं चूकते थे। एक बार मालवीयजीसे बातचीतके सिलसिलेमें काशीके प्रसिद्ध विद्वान् स्व० नकछेदजीने श्राद्धका विषय आनेपर स्वामी दयानन्दजीके लिये बड़े कड़े शब्दोंका प्रयोग किया और यहाँ तक कह डाला कि "वह संस्कृतका विद्वान नहीं था"। मालवीयजीसे न रहा गया और उन्होंने स्पष्ट शब्दोंमें कहा कि मैं स्वामी दयानन्दको तपस्वी और विद्वान् समझता हूँ। मालवीयजीकी यह सम्मति सुनकर उन्होंने भी स्वामीजी पर आक्षेप करना छोड़ दिया।

उनके निष्कपट सत्यका एक और बहुत बड़ा उदाहरण है। जब गान्धीजीके पुत्र देवदासका विवाह श्री राजगोपालाचारीकी कन्यासे हुआ उस समय उन्होंने मालवीयजीका आशीर्वाद माँगा। मालवीयजीने आशीर्वादात्मक तार देते हुए लिखा कि "यद्यपि मैं इस प्रकारके विवाहको ठीक नहीं समझता किन्तु मेरा आशीर्वाद है कि वर-कन्या दीर्घायु हों।"

अक्रोध

मालवीयजीको क्रोध तो कभी आता ही नहीं था। मुँहसे अपशब्द भी कभी नहीं निकलते थे। बहुत नाराज़ होते तो केवल यही कहते थे "आप भी बड़े अकिलमन्द हैं, बड़े बुद्धिमान हैं" और फिर धीरेसे मुस्करा देते थे। बेचारा क्रोध अपनासा मुँह लेकर भाग जाता था।

त्याग

मालवीयजीके त्यागका कोई एक उदाहरण हो तो लिखें। उनका सारा जीवन उनके त्यागकी ही तो रामकहानी है। जब वाइसचान्सलरपद त्यागा तो उनके लिये दो लाखका चेक कोर्ट मीटिंगमें दिया गया। प्रो-वाइसचान्सलर राजा ज्वालाप्रसादको उन्होंने चेक देकर विश्वविद्यालयको दे दिया।

शान्ति

शान्त मनुष्यका लक्षण यह है कि उसे देखकर कोलाहल बन्द हो जाय, टूटे हुए दिल मिल जायें, पीड़ा दूर हो जाय और उबला हुआ हृदय चुप होकर बैठ जाय। न जाने कितनी बार मालवीयजीकी उपस्थिति मात्रसे, उनकी वाणीके पहले शब्दने, उनकी उठी हुई उँगलीने कितनी उठी हुई तलवारोंको म्यानमें डाल दिया, कितनी बड़ी-बड़ी लहरोंको नीचे सुला दिया।

एक बार काशी हिन्दू विश्वविद्यालयके कुछ छात्रों और काशीके श्रीहरिहर बाबाकी साधु-मण्डलीसे कुछ खटपट हो गई जिससे हरिहर

बाबा अपने परिजनोंके सहित अस्सीघाट चले गए। जब मालवीयजी काशी आए और यह घटना उन्हें मालूम हुई तो वे तत्काल हरिहर बाबाजीके पास गए और कहा कि आप उसी स्थानपर चलें, मैं सब प्रबन्ध कर दूँगा, आप बालकोंका अपराध क्षमा करें। हरिहर बाबाने हज़ारों गालियाँ दीं, पर मालवीयजी हाथ जोड़े हुए खड़े रहे और अपनी पगड़ी उनके पैरोंपर रख दी। दूसरे दिन मालवीयजी फिर पधारे। उस दिन हरिहर बाबा मालवीयजीका गुणगान कर रहे थे।

उनकी शान्तिने न जाने कितने मुँह बन्द कर दिए और जिनसे अङ्गारे निकलते थे उनमे फूल बरसने लगे।

उदारता

जैसे उनका द्वार सबके लिये खुला रहता था वैसे ही उनका हृदय भी। संसारके सभी प्राणी उसमें समा सकते थे। सबके लिये उनके मनमें प्रेम था, प्रशंसा थी। न तो उनका मन ही किसी की निन्दाकी कल्पना कर सकता था और न उनकी वाणी। सारा संसार उनकी उदारतामें स्वच्छन्द घूम सकता था।

दया

राहमें पड़े हुए बीमारको देखकर हमें दया होती है, लुटे हुए मुसाफ़िरकी कथा सुनकर करुणा उमड़ पड़ती है, ग़रीबकी व्यथा सुनकर जी पसीज जाता है, पर हम क्षण भरके बाद उसे भूल जाते हैं। फिर वह दया क्या रही? दया तो तब असली कही जाती है जब हम दुखी प्राणी के दुखको अपना दुख समझें, उसकी चोटको अपनी चोट समझें और फिर केवल देखकर ही न रह जायँ बल्कि उसका कष्ट दूर करनेका प्रयत्न करें। कोरे तमाशबीनकी दयाका कोई मूल्य नहीं है। मालवीयजीका वर्णन करते हुए लीडरके प्रतिष्ठित सम्पादक श्री सी० वाई० चिन्तामणिजीने कहा था कि 'वे सिरसे पैरतक हृदय-ही हृदय हैं।' इस एक वाक्यमें मालवीयजीका पूरा चित्र आ गया है। मालवीयजीकी दया हृदयसे निकलती थी और हृदयमें ही पहुँचती थी। बुद्धि और तर्कके द्वारा वे उस दयाको मैला नहीं करना जानते थे। पण्डित मधुमङ्गल मिश्रजीने मालवीयजीकी दयालुताकी एक घटना लिखी है—

"एक दिन मैं प्रयागमें घण्टाघरके सामने जा रहा था कि मालवीयजी मिले। कुशल-प्रश्नके अनन्तर मैं थोड़ी दूर तक ही साथ चला होऊँगा कि एक अनाथ भिखारिनने उनका ध्यान आकृष्ट किया। उसके आर्तनादसे खिन्न हो वे पूछने लगे —पीड़ा कहाँ है? वह मैली घावसे भरे शरीरसे निरन्तर ताकती सी रही। उसके पास सड़कपर ही बैठकर पूछने लगे—कभी दवा कराई थी? उन्हें यों बैठे देख कई राहगीर एकत्र हो गए और उसके टिनमें पैसे पड़ने लगे। उससे कुछ उत्तर न पाकर मालवीयजीने कहा—मधु! एक एक्का बुलाओ और तुरन्त उठ कर खड़े हो एक खाली एक्का देखकर बुला लिया। उसे एक्केपर बैठनेको कहा। पर उसके हाथ पैर भी न चलते थे। एक स्वच्छ वस्त्रधारी युवकने पूछा—'क्या मैं उसे बैठा दूँ?' आज्ञा पा उसने उसे हाथ पकड़ कर उठाना चाहा। जब न बन पड़ा तब हाथ पैर समेत उठाकर एक्केपर टिका दिया। मालवीयजी अस्पतालकी ओर आगे बढ़े और एक्केवालेसे कहा—मेरे साथ आओ। मेरा साथ उस समय वे भूलसे गए।"

"अभी दो ढाई वर्षकी बात है कि विश्वविद्यालयके बी० एस् सी० का एक विद्यार्थी जुलाईसे पढ़ते हुए जनवरीतक फ़ीशिप न पा सका। प्रिन्सिपलने सहायता देना अस्वीकार किया। प्रार्थनापत्र लेकर वह तीन दिनतक मालवीयजीसे मिलनेका अवसर ढूँढ़ता रहा पर मौक़ा न मिला। चौथे दिन भी सब कार्य निबाहकर वे भीतर चले गए, और फिर हठात् बाहर आए। उसे सूनेमें खड़ा देखकर पूछा—कहो क्या है? उसने प्रार्थनापत्र दे दिया। उसपर किसी पण्डितने लिख दिया था कि सहायाके अभावमें इसका अबतक का पढ़ना व्यर्थ जावेगा। उन्हों ने तुरन्त उसपर लिख दिया

—प्रिंसपल साहिब, बन पड़े तो इसे सहायता दीजिए। प्रिन्सिपल महाशयने इतना लिखापाकर उसकी फ़ीस् क्षमा कर दी।"

इसी प्रकार पण्डित शिवराम वैद्यने भी एक घटना लिखी है—

एक बार मदनमोहन बिजलीकी तरह मेरे घर आ धमके। वे बहुत जल्दीमें थे। बोले—एक कुत्ते के कानके पास कानसे ही मिला हुआ एक बड़ा घाव है। घावमें कीड़े पड़ गए हैं। वह उस तरफ़का शिरोभाग और कान लटकाए हुए भागता रहता है। उसकी दवा बताइए। मैंने एक अंग्रेज़ी दवा तजवीज़ की और इस सम्बन्धमें सलाहके निमित्त डाक्टर अविनाशके यहाँ गया। उनसे सारा हाल कहा। अविनाश हँस पड़े। बोले—आपकी तजवीज़ की हुई दवा ठीक है। मदन मोहन मेरे यहाँसे दौड़े हुए वापस कुत्तेके पास गए। उनके साथमें बहुतसे स्कूली लड़के भी थे। कुत्ता मक्खियोंके डरसे टट्टरकी आड़में दुखी होकर बैठा था। मदनमोहनने एक बाँसमें कपड़ा लपेटकर उसे दवासे तर किया और दूरसे कुत्तेके घावमें दवा लगानी शुरू की। कुत्ता भयङ्कर स्वर से गुर्राता और भौंकता था। वह दवा लगानेवाले को डराकर भगा देना चाहता था। पर मदनमोहन भी अपने धुनके पक्के थे। वे चुपचाप दवा लगाते जाते थे। दवा लगाने के बाद कुत्ते को आराम मिला और चिल्लाता हुआ कुत्ता थोड़ी देरमें आरामसे सोने लगा। ऐसा दुखी कुत्ता पागलकी अवस्थामें रहता है। उस समय मदनमोहनकी धुनमें भी पागलपनका ही पुट था। अविनाशकी हँसी का यह एक माक़ूल कारण था। अविनाश डाक्टर थे, इसलिये ऐसी कार्रवाईपर हँस सकते थे, पर उस दुखी कुत्तेके दुःखको अनुभव करने और उस दुःखको दूर करनेकी व्याकुलतासे तड़पनेके लिये एक ऐसे हृदयकी ज़रूरत है जो मदन-मोहन जैसे कुछ थोड़ेसे कोमल-हृदय महानुभावोंको ही प्राप्त होता है।

पण्डित रामनारायण मिश्रजीने एक घटना लिखी है जिससे यह मालूम हो जायगा कि वे कोरे कुर्सी-तोड़ नेता नहीं हैं, बल्कि उनके मनमें सचमुच पीड़ितके प्रति दया है और पीड़ितकी सेवा करनेको हरदम तैयार रहते हैं।

"एक दिन रातके एक बजे श्री मालवीयजी हिन्दू स्कूलके बोर्डिङ्ग हाउसमें जिसमें मैं रहता हूँ पधारे और तीन-चार बड़ी उम्रके लड़कोंको अपने साथ मोटरपर ले गए और एक घण्टेके अन्दर उनको स्वयं लाकर पहुँचा गए। पता लगा कि जब वे बनारस स्टेशनपर उतरे थे, उन्होंने देखा कि दो बदमाश एक बच्चेवाली स्त्रीके पीछे लगे हैं और वह उनसे बचनेका प्रयत्न कर रही है। वे उस स्त्रीके साथ हो लिए और जब वह इक्केपर बैठ गई तब उन्होंने उसका पता जान लिया। बोर्डिङ्ग हाउसके लड़कोंको अपने साथ ले जाकर उनको खोजवाँमें उस स्त्रीका पता लगानेके लिये छोड़ दिया। लड़कोंने पता लगा लिया। पहले तो उस स्त्रीने डरकर दर्वाज़ा बन्द कर लिया और समझा कि ये ही बदमाश उसके पीछे पड़े हैं, परन्तु जब उसको मालूम हुआ कि श्री मालवीयजीने ही उसकी रक्षा की है और वे यह जाननेके लिये बाहर खड़े हैं कि वह घर पहुँच गई अथवा नहीं, तब वह प्रसन्न हो गई और उसने तुरन्त दरवाजा खोल दिया।

तृष्णाका त्याग

जिसने अपनी जाति और देशके लिये धूनी रमा ली, घूमता फिरा, आफ़तें सहीं, कष्ट सहे उसे फिर चाहिए ही क्या? संसारके सब पदार्थ, उसके त्यागमें समा जाते हैं। केवल सेवा ही एक अकेली रह जाती है। महापुरुषकी यही तृष्णा रहती है—

नत्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नाऽपुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्त्तिनाशनम्॥

देशके लिये मालवीयजीने वकालत छोड़ी और अपना सुख भी छोड़ दिया, और यह सब छोड़कर उन्होंने केवल दण्ड-कमण्डल लेकर संन्यास

नहीं लिया और न अलख जगाते फिरे। सरकार और जनताके बीच साँकल बने हुए आपने अनमोल सेवाएँ कीं। जिस समय कांग्रेसमें उनके व्याख्यानोंकी धूम थी और प्रयागमें वे अपनी सेवाओं के कारण बड़े प्रसिद्ध हो रहे थे उन दिनों एक यह शोहरत उड़ी कि सरकारकी यह इच्छा है कि मालवीयजीको एक हज़ार रुपया महीनेपर जज बनाकर यह उन्हें ख़रीद ले। सरकारके लिये कोई यह नई बात नहीं थी। महाकवि अकबरने कहा भी था—

जज बनाकर अच्छे-अच्छोंका लुभा लेते हैं दिल।
क्या अजब है खुशनुमा दो जीम उनके हाथमें॥

किसीने बातों-बातोंमें मालवीयजीसे भी इसका ज़िक्र किया। एकदम मालवीयजी बोले—मैं जजी या सरकारी नौकरी किसी भी वेतनपर स्वीकार न करूँगा। मैं इस लालचमें नहीं फँस सकता। मैं खरीदा नहीं जा सकता। (आइ कैन नौट बी बौट ऑफ़)। सचमुच मालवीयजीको कोई क्या खरीद सकता है?

कोमलता

मालवीयजीका स्वभाव कितना कोमल था इसे वे ही लोग जानते हैं जो उनके पास रहते थे। दूसरोंकी पीड़ाकी हलकी सी आँच लगते ही उनका हृदय पिघल जाता था और फिर वह कोमल हृदय, मीठी बोली और निर्मल आँसुओंके रूपमें प्रकट हो जाता था। एक सज्जनने कहा "मैं दावेके साथ कह सकता हूँ कि शायद वर्त्तमान महापुरुषोंमें कोई भी व्यक्ति इतना कोमल न होगा जितने मालवीयजी, जो किसीको निराश नहीं करते और जिनसे कभी किसीको हानि तो पहुँच नहीं सकती।

अनुचित कामकी लज्जा

महापुरुष पहले तो कोई ऐसा काम नहीं करते जिससे लोक और शास्त्रकी मर्यादा भङ्ग हो। यदि कभी भूलसे हो भी जाय तो वे उसे स्वीकार कर लेते हैं और प्रायश्चित्त करते हैं। मालवीयजीका हठ यद्यपि प्रसिद्ध है पर साथ ही यह भी बात है कि अपनी भूल जान लेनेपर उन्हें कम पछतावा और ग्लानि नहीं होती।

गम्भीरता

मालवीयजीका कोई काम जल्दीमें या जोशमें नहीं होता था। वे अच्छी प्रकार उसको बुद्धिकी कसौटीपर कसते और तब प्रकट करते थे। यही कारण है कि कभी-कभी उन्हें सारे संसारके विरुद्ध खड़ा होना पड़ा और अपजस भी सहना पड़ा पर उनकी गम्भीरता सदा विजयी होकर ही लौटी। उनका अंतिम लेख इस गम्भीरताका द्योतक है।

तेज

तेज मनुष्यकी वह शक्ति है कि केवल उसकी सूरत देखकर ही शत्रु हथियार डालकर, हाथ जोड़कर, घुटने टेककर, उसके आगे झुक जाय। मालवीयजी पचासी वर्षके हो कर गए। इस अवस्था में साधारणतः झुर्रियाँ मुखको ढक लेती हैं, तेज गायब हो जाता है, फुर्ती भाग जाती है। पर मालवीयजीका मुख अन्ततक। ऐसा चमकता था मानो अभी जवानी शुरू होनेकी तैयारी हो रही हो। एक बार किसीने उनसे कहा कि अब तो आपका संन्यास लेनेका समय आ गया। मालवीयजी बोले—'लोग तो पचहत्तर बरसपर संन्यास लेते हैं पर मैं तो फिरसे बालक बनने जा रहा हूँ।' एक बार मालवीयजीके चेहरेकी ओर देखनेपर जान पड़ता था कि उन्होंने बावन तोले पाव रत्तीकी बात कही है। अन्ततक भी उनका तेज ज्योंका त्यों बना हुआ था।

यह उनके तेजका ही प्रताप था कि स्वर्गीय महाराणा उदयपुर उन्हें अपने बराबर कुर्सी देते थे और महाराजा ग्वालियर उनको मोटरमें बैठाकर अपने आप मोटर हाँकते थे।

एक बार एक सज्जन बड़े लाल-पीले होकर मालवीयजीसे लड़ने आए। भीतर मालवीयजीसे मिले, बाहर आकर कहने लगे—भाई, मालवीयजीके तेज और उनकी शान्तिके सामने मेरी तो हवा ही गुम हो गई। यह था उनके तेजका तेज।

क्षमा

क्षमाका गुण उसीमें हो सकता है जिसका हृदय विशाल हो, बुद्धि निर्मल हो और मन पवित्र हो। एक ओर जहाँ मालवीयजी 'आततायीको मारो' का उपदेश देते हैं वहाँ शत्रुके झुक जानेपर और मुसीबतमें पड़ जानेपर क्षमा भी कर देते हैं। सन् १९२१ ई० की बात है। मालाबारमें मोपला लोगोंने हिन्दुओंको बुरी तरह लूटा और उनपर अत्याचार किए। सरकारने उन लोगोंका बड़ा दमन किया। सत्तर मोपले क़ैदी गाड़ीमें घुटकर मर गए और अनेकोंको सज़ाएँ हुईं। गान्धीजीने मालवीयजीको लिखा कि जहाँ हिन्दुओंकी सहायता हो रही है वहाँ इन पीड़ित मोपलोंके परिवारोंकी भी रक्षा की जाय। मालवीयजीने उत्तर दिया कि "आपने जो कुछ कहा है, ठीक ही है। यदि कोई उपकारके बदले उपकार ही करे तो उसका महत्व ही क्या। बात तो तब है कि जो बुराई करे उसके साथ भलाई की जाय। हिन्दू धर्मका महत्व उसीमें है"

यह तो मालवीयजीकी क्षमाका केवल एक उदाहरण है

धैर्य

धर्मका पहला लक्षण है धैर्य। धैर्यके लिये बड़े शुद्ध मनकी और शान्त बुद्धिकी आवश्यकता होती है। कभी-कभी ऐसे अवसर आते हैं कि बड़े-बड़े लोग मनकी शान्ति खो बैठते हैं, धीरज छोड़ देते हैं और घबरा जाते हैं। पर मालवीयजीको ईश्वरने अपूर्व धैर्य दिया है। पण्डित चन्द्रमौलि सुकुलजीने एक घटना लिखी है—

"सन् १९१९ ई० और १९२२ ई० के बीचके किसी समयकी बात है। श्रीमान् मालवीयजी बहुत रुग्ण थे उग्र ज्वरके साथ कठिन निर्बलता थी। उस समय तक विश्वविद्यालयमें वाइस-चान्सलरका बँगला नहीं तैयार हुआ था, क्योंकि पूज्य मालवीयजी जबतक सबके लिये निवास-स्थान न हो अपने लिये ईंट भी नहीं रखने देना चाहते थे। अस्तु, उस समय आप बाबू शिव-प्रसाद गुप्तकी नगवावाली कोठी,—'सेवा-उपवन' में रहते थे। डाक्टरोंने कह दिया कि श्रद्धेय मालवीयजी किसीसे बात न करने पावें, क्योंकि रुग्णावस्थामें, विशेषतः निर्बल अवस्थामें, बातचीत करनेसे बची-खुची शक्ति भी क्षीण हो जाती है। परन्तु मालवीयजीको यह बन्धन कैसे पसन्द हो? वे उस दशामें भी लोगोंसे घिरे रहते थे और डाक्टरोंकी बातपर ध्यान न देते थे। अन्ततोगत्वा बाबू शिवप्रसाद गुप्तने ऐसा प्रबन्ध किया कि बाहरका कोई आदमी वहाँ जाने ही न पाए; दर्शनार्थी लोग बाहरसे ही विदा कर दिए जाने लगे। शायद इस प्रतिषेधकी सूचना भी पूज्य मालवीयजीको न दी गई हो। फलतः आपको कोई आदमी बात करनेके लिये न मिलने लगा। तब आपने एक उपाय निकाला, आदेश करने लगे कि अमुक व्यक्तिको बुलाओ, अमुक अध्यापकको बुलाओ। इन आज्ञाओंकी अवहेलना आपके परम हितैषी भी नहीं कर सकते थे।

मैं भी एक दिन पहुँच गया। वहाँ देखा कि एक वृद्ध पञ्जाबी सज्जन बड़ी गम्भीर मुद्रासे बैठे हुए हैं। कभी कभी कोई बात कह उठते हैं। चलनेका समय हुआ तो प्रेमावेशमें उबल से पड़े। वह श्री मालवीयजीके कोई चिरपरिचित मित्र और सम्भवतः उनके साथ काम करनेवाले थे। साश्रुलोचन, गद्गद कण्ठसे, कुछ सङ्कोचके साथ बोले, "महाराज! आपकी यह बीमारी सिर्फ़ उस मिहनत और परेशानीका नतीजा है जो आपने इस भारी कामके लिये अपने सरपर उठाई है। आपकी हालत देखकर निहायत अफ़सोस हो रहा है। इतनी कमज़ोरी है कि देखा नहीं जाता। अब ज़ईफ़ीका आलम आ रहा है, इतनी मिहनत करना मुनासिब नहीं। हिन्दुओंकी बहबूदीको मद्देनज़र रखनेवाला आपके बराबर कोई है नहीं। आप किसीका.........कहना..... मानते नहीं। ज़रा सोचिए तो कि आप ही तकका सहारा है। मैं क्या कहूँ? आपकी हालत यह हो रही है! परमात्मा आपको तन्दुरुस्त कर दें"।

ये बातें उन वृद्ध महाशयने बड़े करुण स्वरसे, रुक-रुक कर, क्षोभके साथ कहीं। इनका गूढ़ अभिप्राय समझनेमें श्री मालवीयजीको देर न लगी। उस शारीरिक कष्टमें आपने मुस्कराकर, परन्तु फिर भी बड़ी दृढ़ताके साथ उत्तर दिया —"भाई, आपकी बड़ी कृपा है कि मेरे लिये ऐसे उच्च भाव आप रखते हो। आप यह बुजदिली छोड़ दो। आप तो खुद जानते हो कि मुझे अभी बहुत काम करना है, इसलिये मैं आपको इतमीनान दिलाता हूँ कि मुझे अभी मरनेकी फुरसत नहीं।"

एक बारकी घटना है। मालवीयजी देहरादून गए थे। वहाँ टपकेश्वर नामक एक बड़ा सुन्दर स्थान है। लाला उग्रसेन रईसके साथ मालवीयजी टपकेश्वरके पास घङ्घोड़ नामक स्थानको जा रहे थे। रास्तेमें मोटर बिगड़ गई। मालवीयजी उतरकर एक पत्थरपर बैठ गए मानो अपने घरपर ही बैठे हों। और इसी तरह घण्टे भरतक बैठे रहे। उनके चेहरेसे एक क्षणको भी यह नहीं मालूम हुआ कि उन्हें कहीं जाना है या नहीं। गज़बका धैर्य है उनका।

इसी तरह असहयोगके दिनोंमें जब हिन्दू विश्वविद्यालयके टूटनेकी नौबत आ रही थी। राजे-महाराजे सभासे उठकर चले गये। जान पड़ा कि बस, अब टूटी युनिवर्सिटी। पर मालवीयजी ज़रा भी न घबराए। दौड़धूप करके सबसे मिले और मिलकर फिर सभा की। बाढ़ निकल गई। और कोई होता तो घबरा जाता और आज हिन्दू युनिवर्सिटीका इतिहास किसी दूसरी तरह लिखा जाता।

उनके धैर्यकी एक और कथा पण्डित चन्द्रमौलि सुकुलजीने कही है:—

"भागीरथीके वाम तटपर विशाल हिन्दू विश्वविद्यालयका कुछ भाग निर्मित हो चुका था। कई छात्रालय भी बन चुके थे। पहले जो छात्रालय बना उसमें एक-एक विद्यार्थीके लिये एक-एक छोटा कमरा देनेकी योजना की गई उसमें अंग्रेजी कक्षाओंके विद्यार्थी भर गए। प्राच्यविद्या (संस्कृत) के विद्यार्थियोंका निवास-स्थान बनाना आवश्यक तथा असमयासहिष्णु था; इसलिये एक-एक बड़े कमरेमें कई विद्यार्थी रहनेके योग्य जो छात्रालय बना था उसमें इन विद्यार्थियोंके रहनेकी स्वीकृत दी गई। विद्यार्थी प्रविष्ट भी हो गए। परन्तु कुछ कालके अनन्तर उन्होंने यह आपत्ति की कि अंग्रेज़ीके एक-एक विद्यार्थीको पूरा-पूरा कमरा दिया गया है तो हम लोगोंको भी वैसे ही कमरे क्यों न दिए जायँ। अध्यापकोंने उन्हें बहुत कुछ समझाया-बुझाया, परन्तु वे क्यों मानने लगे। छात्रावास छोड़नेपर या उधम मचानेपर उद्यत हुए। अन्तमें निश्चय यह हुआ कि जबतक वाइस-चान्सलर महोदय (श्री मालवीयजी) न आ जायँ, सब कार्रवाई स्थगित रहे।

"श्री मालवीयजी काशी पधारे। विद्यार्थियोंने उन्हें घेर लिया। थोड़ा समझाने-बुझानेपर जब उन्होंने देखा कि यह साधारण कार्य नहीं है तो छात्रालय देखकर निर्णय करनेका वचन दिया। इन पंक्तियोंके लेखकको भी अपने कौलेजके सम्बन्धमें कुछ आवश्यक निवेदन करना था, अतः वह भी प्रातःकाल दर्शनार्थ पहुँचा। मालूम हुआ कि आप प्राच्य विद्या-विभागका छात्रालय देखने गए हैं। लेखक भी वहीं पहुँचा। देखा कि एक कमरेके बाहर चार-छः विद्यार्थी खड़े भीतरी कोई घटना देख रहे हैं; भीतरसे शब्द भी आ रहा है। वहाँ पहुँचनेपर श्रद्धेय पण्डित मदनमोहन मालवीयजीको कमरेके भीतर विद्यार्थियोंसे घिरा हुआ पाया। बातचीत हो रही थी—बातचीत क्या, खासा शास्त्रार्थ हो रहा था। एक ओर तो सौम्य रससाने शब्दोंका प्रयोग, प्रेमका प्रदर्शन, मन्द मुसकानकी मृदुल महिमा, वात्सल्य विधायक बाहुओंसे विद्यार्थियोंका पृष्ठ-स्पर्श, शास्त्रीय शब्दोंका समावेश, आगामी उन्नतिकी आशाओंका अपूर्व स्पष्टीकरण, तथा दूसरी ओर बाल-सुलभ चापल्यका धाराप्रवाह, समतामें विषमताका

दर्शन, कई-कईका युगपत् प्रलाप, कभी विद्यालय छोड़ देनेकी धमकी, कभी हड़तालकी विभीषिका, कभी अधिकारियोंपर अंग्रेज़ी विद्यार्थियोंके प्रति अनुचित पक्षपातका आरोपण, कभी उनके वचनोंपर अप्रतीति प्रदर्शन, कभी ऐसे महापुरुषके समक्ष कहनेका सर्वथा अयोग्य शब्दोंका प्रयोग था।

"धैर्य्यमूर्त्ति मालवीयजीने बहुत कुछ समझाया, पुराने कुलपतियोंकी शिक्षा-प्रणालीका वर्णन किया, खुली हवामें बैठकर अध्ययन करनेका फल बताया, उन विद्यार्थियोंसे छात्रालयका कोई शुल्क न लेनेकी बात चलाई, उन्हें छात्रवृत्ति देनेका भी ज़िक्र किया, उनके रहन-सहनके प्रति अपनी विशेष सहानुभूति दर्शाई, अधिकारी-कृत-निर्णय-पालनका महत्त्व सामने रक्खा, यह भी संभावना दिखाई कि आगे चलकर उनके निवासके लिये और भी सुन्दर प्रबन्ध सोचा जायगा, परन्तु इस सबका कोई विशेष फल न दिखाई दिया। ऐसा प्रतीत होता था कि ज्यों-ज्यों समस्याके सुलझाने का प्रयत्न हो रहा है त्यों-त्यों वह और भी उलझती जाती है।

"मैं चुप होकर सब देख रहा था। मुझ जैसे एक साधारण व्यक्तिका धैर्य्य काँप उठा, बार-बार मनमें आता था कि यह व्यर्थका झञ्झट कबतक रहेगा, अच्छा तो यही हो कि श्रीमान्‌जी कह दें कि अच्छा अब यदि कहना नहीं मानते हो तो तुम्हें जो कुछ अच्छा लगे करो, अन्यथा यहाँ रहना होगा। कभी-कभी तो ख़ून उबलनेसा लगता था, धारणा उठती थी कि ऐसे हठीले व्यक्तियोंके साथ ऐसा बर्त्ताव नहीं होना चाहिये जैसा श्री मालवीयजी कर रहे हैं। इसी प्रकारकी अनेक भावनाएँ उमड़ रही थीं। कभी इच्छा होती थी कि चुपकेसे घरका रास्ता लिया जाय। परन्तु यह भी सम्भव नहीं था, क्योंकि श्री मालवीयजी पहले ही कह चुके थे कि इन बालकोंका झगड़ा तै करके चलता हूँ।

"कमरेके भीतर गर्मी भी पर्य्याप्त मात्रामें थी, हवाका झोंका भी नहीं पहुँचता था, ढेर-के-ढेर विद्यार्थी उसीके भीतर साँस ले रहे थे। द्वारका मार्ग तक विद्यार्थियोंसे भरा था। लोग पसीनेसे तर हो रहे थे। बाहर निकलना सरल नहीं था।

"भाग्यवशात् श्री मालवीयजीके मनमें यह विचार उठा कि कमरेसे बाहर निकलकर क्षणमात्र खुली हवामें खड़े हो जायँ। वे निकले, पीछे-पीछे मैं भी निकला। बरामदेके खम्भेके पास खड़े होकर आप माथेका पसीना पोंछने लगे, और लेखकको सामने देखकर (और उसे अपना विश्वासपात्र समझकर) भ्रूभङ्गीसे तद्दशा-जनित घृणा सी दिखाते हुए, धीमे स्वरमें कहने लगे "बड़े सङ्कटकी अवस्था है"। इसी बीच चार-छः वीर वहाँ भी पहुँच गए और श्री मालवीयजीको फिर उसी विवादमें जुटना पड़ा।

"अब भी श्रीमान्‌का धैर्य्य अक्षुण्ण बना था। वही प्रसन्न वदन, वही मीठी बोली, वही प्रेम। अबकी बार आपने उस जादूका प्रयोग किया जिसका परिचय आपसे मिलनेवाले सभीको है और जिसके द्वारा आप अपने विरोधियोंको भी मुग्ध कर लेते हैं। इस बार आपको पूर्ण विजय मिली। विद्यार्थी लोग 'जो आज्ञा' के अतिरिक्त अन्य कुछ न कह सके। धन्य है ऐसे अपूर्व धैर्य्यको! उच्चतम अधिकारी होकर यदि आप चाहते तो एक वाक्यके द्वारा अपनी आज्ञाका पालन हठात् करा लेते, परन्तु वह आपकी विजय न कही जाती। जो आपने किया उससे इस लेखकके हृदयमें यह धारणा पक्की हो गई कि आपकी 'महामना' और 'श्रद्धेय' आदि पदवियाँ वास्तविक महत्ताकी द्योतक हैं।"

सन् १९१२ की बात है मालवीयजी ऋषिकुल हरिद्वारके वार्षिकोत्सवके सभापति रूपमें आश्रममें उपस्थित थे। जेठका महीना था। आप व्याख्यान देनेके लिये खड़े हुए। अकस्मात् भयानक आँधी आ गई। कोई आशा न थी कि पण्डाल खड़ा रहेगा। आप स्वयं खड़े हो गए और बल्लीको हाथसे पकड़कर बोले—"आप लोग ज़ोरसे बल्ली पकड़ लें पण्डाल हिलने न पावे।" कुछ देरतक

हाथपर हाथ न सूझता था, पर शीघ्र ही अँधेरा दूर हुआ। देखा पण्डाल जहाँका तहाँ खड़ा था। ऐसी ऐसी न जाने कितनी आँधियोंमें मालवीयजी बल्ली थामे खड़े रहे हैं।

शुद्धि

मालवीयजीकी शुद्धि तो उनके स्वरूपसे ही प्रकट हो जाती थे और उन्होंने यह शुद्धि बड़ी हिफ़ाजतसे रख छोड़ी थी।

मालवीयजीकी पोशाक शुरुसे ही एकसी और सदैव सफ़ेद रहती थी। रङ्गीन कपड़ोंमें काला-रङ्ग तो उन्हें बिलकुल ही पसन्द नहीं था। काला कपड़ा पहनने वालोंको वे सदा टोकते रहते थे और कहा करते थे कि यह अशुभ शनिश्चरी रङ्ग है। अंग्रेजोंने ही इस रङ्गके कपड़ेको प्रचार किया है। वे एक साफा सिरपर बाँधते थे और एक दुपट्टा गलेमें डालते थे, जो पहले मलमलके रहते थे पर पीछे महीन खद्दरके थे। अब वे बड़े नाज़से साफा तह करते थे और आइना सामने रखकर बाँधते थे तो देखने लायक दृश्य होता था। अपने हाथसे सँभाल-सँभालकर बड़े कायदेके साथ उसे लपेटते और फिर उसको ठीक करते थे। वे शरीरपर सफ़ेद गञ्जी पहनते थे, उसके ऊपर कभी तनीदार बगलबन्दी पहनते थे, परन्तु जानेके समय कमीज़ पहनते थे, जिसमें सादे कफ़ लगे रहते थे, जो अधिक नीची नहीं रहती थी, उसके ऊपर एक अङ्गरखा पहनते थे, उसीमें घड़ी भी लगी रहती थी, जाड़ेकी मौसिममें कमीज़ तथा कुछ पीली फ़लालैनका अँगरखा पहनते थे। जाड़ेमें फलालैनका पायजामा भी पहनते थे। धोती केवल घरपर कभी-कभी पहनते थे। सोते समय भी पायजामा पहनकर सोते थे, जो न तो चूड़ीदार ही कहा जा सकता था न ढीला, केवल इतना रहता था कि पैरपर चढ़ सके। जूते पहले पूरे पहनते थे, पर पीछे फुल स्लिपर कपड़ेका सफेद 'शू' पहनते थे जो बिना हाथ लगाये चढ़ सके। सफेद मोज़ा कभी पहनते थे कभी नहीं।

उनके इस शुद्ध सात्विक स्वरूप और वेशके साथ उनसे सम्बन्ध रखनेवाली सभी वस्तुएँ स्वच्छ और शुद्ध रहती थीं।

उनका कमरा बिल्कुल साफ़-सुथरा रहता था, उनकी चीज़ें—उनकी पुस्तकें बड़े करीनेसे रक्खी रहती थीं। वे अपने कमरेकी सफ़ाईके लिये किसी नौकरकी बाट नहीं देखते थे। समयपर अपने हाथसे बिस्तर लगा लेते थे, झाड़ू भी दे लेते थे और अपने कपड़े भी ठीक तरह सरिया लेते थे। वे कपड़ा ठीकसे पहननेके बारेमें बड़े सावधान रहते थे और दूसरोंको भी समझाते रहते थे। उनका मत था कि मनुष्यके वस्त्र उसकी शोभा और उसका तेज बढ़ाते थे। इसलिये प्रत्येक व्यक्तिको ऐसे वस्त्र पहनने चाहिएँ जिससे वह अच्छा लगे। एक बार उनका पौत्र श्रीधर नंगे सिर केवल कुर्त्ता पहने विश्वविद्यालयके प्रो-वाइस चान्सलर साहबके घर गया। वहाँसे लौटा तो तो मालवीयजीने उसे वस्त्रका महत्व समझाया और उदाहरण दिया कि देखो यह वेशका ही प्रभाव था कि समुद्र-मन्थनके समय विष्णुजीको लक्ष्मी मिलीं और बेचारे शिवजीको ज़हर। इससे मालवीयजीकी विनोदप्रियता और उनके सिद्धान्त दोनों स्पष्ट हो जाते हैं। उनकी मनकी शुद्धिने इस बाहरी शुद्धिसे मिलकर मालवीयजीको शुद्धता और पवित्रताका एक आदर्श बना दिया था।

अद्रोह

मालवीयजीकी बातोंका और उनके मतका कितने लोगोंने विरोध किया पर उन्होंने किसीके प्रति ज़रा भी द्रोह या वैरकी भावना नहीं दिखाई थी नरसिंह चिन्तामणि केलकरने लिखा है कि प्रयाग प्रान्तीय कान्फ़रेन्सके अवसरपर मुझसे राजनीतिक बातोंमें पूरा विरोध होनेपर भी आपने मेरे साथ पूर्ण रूपसे शिष्टताका व्यवहार किया है और अपने सौजन्यका परिचय दिया है। कानपुर कांग्रेसमें मालवीयजी भाषण कर रहे थे—"देश तबाह हो रहा है, संकट बढ़

रहे हैं। ……"। इतने ही में मंचके पास ही एक सदस्यने उठकर कहा "इसके लिये आप ही ज़िम्मेदार हैं।" मालवीयजी बोले "मैं?" वह बोला "हाँ आप।" मालवीयजी मुस्कुराए और बोले "ईश्वर आपको सुबुद्धि दे।"

एक बार किसी सभामें उन्होंने एक सज्जनका विरोध किया किन्तु दूसरे ही दिन उस विरोधके लिये क्षमा माँगने उसके घर पहुँच गए। वह बेचारा पानी पानी हो गया।

द्रोह तो उनके मनमें रहने ही नहीं पाता था।

निरभिमानता

अभिमान तो मालवीयजीको छू भी नहीं गया था। पद पाकर, यश पाकर लोग हवासे बात करते हैं, ज़मीनपर पैर नहीं धरते, उनका संसार निराला हो जाता है पर मालवीयजी इस दोषसे बचे रह गए। इतना सब करनेपर भी जब कोई उनकी प्रशंसा करता था या उनके सुकार्योंका वर्णन करता था तो वे कह देते थे कि 'इसमें मैंने क्या किया है, सब भगवान् विश्वनाथजीकी कृपा है और आप लोगोंका आशीर्वाद है।"

ऐसी बात नहीं है कि मालवीयजी बड़े लोगोंकी तरह बिना मोटरके घरसे बाहर ही न निकलें। बहुत बार उन्हें लोगोंने इक्केपर या ताँगेपर बैठे देखा है।

व्याख्याता

चाहे हिन्दीमें हो या अंग्रज़ीमें, मालवीयजी धाराप्रवाह भाषण देते थे। अपने तो व्याख्याता थे ही, उनके ज्येष्ठ पुत्र 'बड्डाली' भैया जब बोल भी नहीं सकते थे तभीसे 'हाँ, व्याख्यान तो दो' कहते ही किसी चबूतरे या स्टूलपर चढ़कर, हाथ हिलाकर, आ-आकर, व्याख्यानका आडम्बर रचते थे। भारतीभवनके किसी वार्षिकोत्सवके अवसरपर पण्डित आदित्यराम भट्टाचार्य्यकी अध्यक्षतामें भाषण देते समय सहपाठी मित्र डाक्टर गट्टूमलका उन्हें स्मरण हो आया। उनका गुणगान सुनाते-सुनाते वे गद्गद कण्ठ हो उठे, आँखोंसे आँसू बह चले। रोते-रोते रूमालसे आँसू पोंछते हुए व्याख्यान देते रहे, स्वयं रोए और श्रोतागणके हृदयोंको समवेदनाके भावसे भर दिया। एक बार देशकी हीन दशा बतलाते हुए आप कह रहे थे—"अपनी नौकाकी रक्षाके लिये दीन मल्लाह रातमें अकेला डोंगीमें सोता है। खुले मैदानमें नदीके पेटपर जाड़ेके दिनोंमें उसके पास केवल एक पतलासा दुपट्टा रहता है, बिछानेको कुछ नहीं। जब रातमें ओससे दुपट्टा गीला हो जाता है तब वह उसे निचोड़कर फिर उसी गीले दुपट्टेको ओढ़ लेता है। यों तीन-चार बार करके रात बिता देता है। उसके ठण्ढके अनुभव और क्लेशको समझने और दो आँसू बहानेवाला कौन है?" उसपर और चाहे कोई आँसू भले ही न बहावे पर मालवीयजी तो बहा ही रहे थे।

चौरीचौरा अभियोग के अभियुक्तोंकी अपीलकी बहस समाप्त करते हुए पण्डित मालवीयजीने न्यायाधीशोंसे दयापूर्वक न्यायका फैसला देनेकी प्रार्थना की और न्यायाधीशोंको उनके सन्तोषपूर्वक पूर्ण सौजन्यसे बहस सुननेके लिये धन्यवाद दिया। यह उनकी वाणीका ही प्रभाव था कि प्रधान न्यायाधीशने उत्तर देते हुए कहा भी कि "जिस ख़ूबी और उदारतासे आपने अभियुक्तोंके मुकदमेकी पैरवी की उसके लिये ये अभियुक्त और उनके कुटुम्बी आपके ऋणी रहेंगे। मैं अपनी ओरसे और मुझे विश्वास है श्री पिगोट न्यायाधीशकी ओरसे भी अपनी बड़ी सदिच्छा प्रकट करता हूँ कि जिस प्रकार आपने बड़ी ख़ूबीके साथ इस मामलेमें बहस की है शायद अन्य कोई भी इतनी अधिक सुन्दरतासे इसपर प्रकाश नहीं डाल सकता था।

मालवीयजीका संस्कृतका ज्ञान शायद पण्डितोंको छोड़कर और लोगोंको नहीं पता है। काशीमें पण्डितोंकी सभामें कई बार मालवीयजीने ऐसी ललित संस्कृतमें धाराप्रवाह व्याख्यान दिए हैं कि बड़े-बड़े पण्डित उनका लोहा मान गए। संस्कृत पढ़ने-पढ़ाने और बोलने-चालनेका अर्थ

रिवाज नहीं रहा है किन्तु जब भी कभी विश्वविद्यालयमें संस्कृतमें शास्त्रार्थ होता था और मालवीयजी वहाँ रहते थे तो उस समय मालवीयजीकी ललित संस्कृत सुनते ही बनती थी।

पण्डित शिवराम वैद्यने मालवीयजीके संस्कृत-ज्ञान और भाषण-शक्तिके विषयमें लिखा है कि—

"बहुत दिन हुए, एक बार प्रयागमें जर्मनी-निवासी संस्कृतके प्रसिद्ध विद्वान, वेदान्तशास्त्र, ब्रह्मसूत्र और उपनिषदोंके धुरन्धर ज्ञाता एवं शाङ्कर वेदान्तके माननेवाले प्रोफ़ेसर डुसेन (ड्यूसन) उर्फ़ देवसेन बहुत उत्तम भाषण करते थे। उनसे मिलनेके लिये पण्डित लक्ष्मीनारायण व्यास, पण्डित श्रीकृष्ण जोशी, पण्डित सरयूप्रसादजी तथा मैं और भी अन्यान्य लोगोंके साथ उनके निवास-स्थानपर गए थे और घण्टों बातचीतके उपरान्त यह तय हुआ कि कायस्थ पाठशालाके मैदानमें वेद-वेदान्तके ऊपर प्रोफ़ेसर डुसेनके भाषण हों। नोटिस बाँटे गए और प्रोफेसर साहबका भाषण संस्कृतमें बड़ी धूमधामसे हुआ। योरोपियन होते हुए भी वे पण्डितोंकी तरह बैठकर भाषण करते थे। व्याख्यान समाप्त होनेपर आर्य्य-समाजियोंने शङ्करके वेदान्तका खण्डन और स्वामी दयानन्द सरस्वतीके वेदान्तका मण्डन करनेके निमित्त पण्डित भीमसेनजीको खड़ा किया। पण्डित भीमसेनने अपने भाषणमें यथाशक्ति स्वयं खण्डन-मण्डन भी किया। मदनमोहनको यह कार्रवाई अच्छी न मालूम हुई। उनको यह बात खटकने लगी कि यहाँ विदेशसे एक व्यक्ति ऐसा आकर उपस्थित है जो हमारे गुणको परखता है और उसे ग्रहण करना चाहता है और हम खण्डन-मण्डनके फेरमें पड़कर उसके सामने बहुत बुरा उदाहरण रख रहे हैं। भीमसेनका प्रतिवाद करनेके लिये मदनमोहनने बैठे बैठे एक काग़ज़पर संस्कृतमें कुछ लिखा और मुझे सुनाने लगे। पण्डित सुन्दरलालजी पास ही बैठे थे। यह लेख सुनकर वह मुस्कुराते जाते थे। यह दृश्य मेरे हृदयपर एक चित्रकी तरह अङ्कित है। मैं अपने सामने बैठे हुए पण्डित सुन्दरलालजीका वह मुस्कुराना स्पष्ट देख रहा हूँ।

"पण्डित भीमसेनके व्याख्यानके उपरान्त मदनमोहनका व्याख्यान हुआ। उनका व्याख्यान बहुत ही सुन्दर और मार्केका था। उन्होंने अपने भाषणमें इस बातपर अफ़सोस ज़ाहिर किया कि "कहाँ जर्मन देश और कहाँ भारतवर्ष। इतने दूरसे एक प्रसिद्ध विद्वान यहाँ आकर हमारे प्राचीन और महत्त्वपूर्ण वेदान्तशास्त्रपर व्याख्यान दे और हम लोग उसका खण्डन करनेके लिये खड़े हों। कितने दुःख और लज्जाकी बात है। मुझे इस कार्रवाईके ऊपर परम दुःख है।

"मदनमोहन जिस प्रकार अंग्रेज़ीके विद्वान हैं उसी प्रकार संस्कृत साहित्यके भी धुरन्धर पण्डित हैं, कारण यह है कि वे वेद, गीता, रामायण, महाभारत और श्रीमद्भागवतका बहुत दिनोंसे अबतक पाठ करते जाते हैं"

कुछ और बातें

मालवीयजीके बारेमें यह सबकी शिकायत है कि वे कोई काम नियत समयपर नहीं करते थे। कुछ सभाओंमें ठीक समयपर न पहुँचनेसे और स्टेशनपर देरसे पहुँचनेसे ही देश भरमें यह बात फैल गई है। पर बात ऐसी नहीं थी। वे ठीक समयसे उठते थे, ठीक समयसे स्नान, सन्ध्या, स्वाध्याय करते थे। कहीं-कहीं देरसे पहुँचनेका कारण यही था कि जिस समय वे तैयार होकर चलनेको उद्यत होते थे उसी समय कोई-न-कोई अपना रोना लेकर आ खड़ा होता था। मालवीयजी उसको रोक नहीं सकते थे। उसका काम पहले होना चाहिए, सभामें चलासे देर हो। यही बात उनके साथ सदा लगी रहती थी। किसी-न-किसीका भला करने, किसीकी सहायता करने या किसीका मन रखनेके लिये वे अपनी सार्वजनिक बदनामीकी चिन्ता नहीं करते थे।

उनकी कुछ घटनाएँ बड़ी रोचक हैं। मुन्शी ईश्वरशरण लिखते हैं:—

"एक वारकी वात है, वे गोरखपुर गए थे और वहाँसे हम लोगोंको एक ट्रेन पकड़नी थी। हम लोग निकटतर स्टेशनको रवाना हुए। मालवीयजीके एक ग़रीब सम्बन्धीका मकान रास्तेमें ही पड़ता था। मेरे बहुत मना करनेपर भी वे उनके घर गए, वहाँ भोजन किया और जल्दी-जल्दी स्टेशनपर पहुँचे। गाड़ी चल चुकी थी, वे झट उसमें कूद गए। अपने डब्बेसे उन्होंने मुस्कुराते हुए कहा—"आखिर मेरी बात ठीक हुई, मैंने भोजन भी कर लिया और ट्रेन भी पकड़ ली।"

उनकी गाड़ीमें अक्सर ही देर हो जाती थी, पर उनके लिये प्रायः गाड़ी भी देरसे ही पहुँचा करती थी। एक दफ़ा वायसरायकी कौन्सिलमें उनको कोई प्रस्ताव पेश करना था परन्तु आख़िरी गाड़ी भी छूट गई। वायसराय लॉर्ड रीडिङ्ग साहबकी खास ट्रेन संयोगसे जा रही थी। आपने लाट साहबसे अनुपस्थितिका खेद प्रकट किया। उन्होंने फ़ौरन् एक डब्बा खाली कराया और मालवीयजीको अपने साथ ले लिया।

एक घटना इससे भी विचित्र है। एक बार की बात है कि मालवीयजी और स्व० सर सुन्दरलाल साथ ठहरे हुए थे। कहीं जाना ज़रूरी था, पर ट्रेनका स्टेशनपर आनेका जो समय था उससे एक घण्टा अधिक हो गया था। मालवीयजी स्टेशनको रवाना हुए। सुन्दरलालजीने बहुत मना किया, लेकिन उन्होंने न माना। बोले—पण्डितजी, आप चिन्ता न करें; कभी-कभी गाड़ियाँ लेट भी होती हैं। यह गाड़ी भी लेट हो ही सकती है। वे गए और उन्होंने वही ट्रेन पकड़ी। यह गाड़ी उस दिन ढाई घण्टे देरसे आई थी।

रेलगाड़ियोंके सम्बन्धमें तो मालवीयजीके जीवनके साथ अनेक घटनाएँ जुड़ गई हैं। बहुत ही कम बार ऐसा होता था कि वे समयपर स्टेशन पहुँचते हों। न जाने कितनी बार उनके लिये गाड़ियोंको दो-चार मिनट ज़्यादा रुकना पड़ा है।

काशी-नागरी-प्रचारिणी सभामें कोशोत्सवके अवसरपर भारत-कला-भवनके शिलान्यासकी नींव पूज्य मालवीयजीके हाथोंसे रक्खी जानेवाली थी। निश्चित समय बीत गया। सब लोग पूज्य मालवीयजीकी बाट जोह रहे थे। दो घण्टे निकल गए, मालवीयजीका पता नहीं। हताश होकर श्रद्धेय बाबू श्यामसुन्दर दासजीने श्री गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझाजीसे नींव रखनेको कहा। वे पैर धो ही रहे थे कि मालवीयजीकी मोटर दौड़ती हुई आ पहुँची। रेशमी धोती पहने, ऊनी शाल ओढ़े, नङ्गे पाँव, ललाटपर रोली और दधि-अक्षतका तिलक लगाए मोटरसे मुस्कुराते हुए मालवीयजी उतरे। मालूम होता था कि राजा मोतीचन्दके यहाँ किसी लड़केका उपनयन-संस्कार था, उस अवसरपर आशीर्वाद देनेके लिये गए थे। वहाँके कृत्य सम्पन्न करनेमें विलम्ब हो गया। मोटरसे ही वे मोगलसराय जाने वाले थे, दिल्लीमें कांग्रेस कार्य्यकारिणीकी बैठक थी। मोटरके आगे-पीछे बिस्तर आदिके बण्डल बँधे हुए थे। भारत-कला-भवनकी नींव उन्हींके हाथों पड़ी।

आनके पक्के

मालवीयजी अपनी आनके बड़े धनी थे। एक बात जो उनके मनमें बैठ गई, वह पत्थरकी लकीर ही समझिए। यह बात अवश्य है कि वे बहुत सोच-विचार कर निश्चय करते थे किन्तु मनुष्य फिर भी मनुष्य है, कभी-गलती भी हो ही जाती है। एक ओर जहाँ इस गुणसे बड़े-बड़े काम बन जाते थे वहाँ कभी-कभी उससे हानि भी हो जाती थी पर हानि कम ही होती थी। मालवीयजी की धुनने जहाँ एक ओर बहुतसे मित्रोंको नाराज़ किया वहाँ बहुतसे नए बना भी लिए पर बहुत लोगोंका कहना है कि मालवीयजीकी यह धुन कभी-कभी स्वेच्छाचारिता और हठकी सीमातक पहुँच जाती थी और कहा जाता है कि इसी कारण बहुतसे प्रसिद्ध विद्वान् हिन्दू विश्वविद्यालय छोड़कर चले गए। पर आखिर संसारमें हमें किसीको तो अपना पथ-प्रदर्शक बनाना ही पड़ेगा। संसारमें सभी नेता नहीं हो सकते। हमें नेता बननेसे पहले सिपाही बननेका अभ्यास करना

चाहिए। 'अकबर' इलाहाबादीके शब्दोंमें,—

'सब तो लीडर हैं यहाँ आख़िर सिपाही कौन है।' हो सकता है, कि मालवीयजी अपनी ही बात रखते हों, पर यह भी याद रखनेकी बात है कि यदि फ़ौजके सभी सिपाही अपने सेनानायककी आज्ञाओंपर तर्क करना शुरू कर दें तब तो आफ़त ही हो जाय। हिन्दुस्थानमें अभी सिपाहियोंकी सचमुच कमी है। मालवीयजीके धुनकी एक कथा शिवरामजी वैद्य लिखते हैं—

"सर सुन्दरलाल धुरन्धर विद्वान् और विलक्षण प्रतिभा-सम्पन्न होते हुए भी बहुत ही सीधे सादे व्यक्ति थे। उनकी प्रतिष्ठा और यशमें स्वतः वृद्धि हुई। स्वयं उन्होंने कभी अपने गौरवकी वृद्धिके लिये प्रयत्न किया हो, ऐसा मैंने कभी नहीं देखा। परन्तु मदनमोहनमें आदमी पहचानने और उससे उपयुक्त काम लेनेकी विलक्षण शक्ति थी। मदनमोहन सर सुन्दरलालकी योग्यताके क़ायल थे। उनके मनमें आया कि अगर ऐसा योग्य व्यक्ति कहीं कौन्सिलमें पहुँच जाय तो देश की महती सेवा हो सके। मदनमोहनको धुन सवार हो गई और उन्होंने चारुचन्द्र मित्रके विरुद्ध सुन्दरलालको कौन्सिलका उम्मेदवार खड़ा कर दिया। मदनमोहन चारुचन्द्र मित्रको अपना बुजुर्ग और बड़ा समझते थे। पर एक धुन सवार हो गई तब प्रश्न सामने केवल यही था कि पण्डित सुन्दरलाल कौन्सिलमें पहुँच जायँ।

मदनमोहनके अनेक बुजुर्ग और इष्ट मित्र मुंशी कुञ्जबिहारीलाल वग़ैरह उनकी इस कार्रवाई पर बेहद नाराज़ थे, कौन्सिलमें पण्डित सुन्दरलाल का पहुँचना गवारा न कर सकते थे। उन दिनों राजनीतिक और सामाजिक गोष्ठीका नेतृत्व 'हिन्दी-प्रदीप' के प्रसिद्ध सम्पादक पण्डित बालकृष्णजीके हाथमें था। भट्टजीके पास सब लोग एकत्र होकर पण्डित सुन्दरलालकी उम्मेदवारीके विरुद्ध अपनी आवाज़ उठाते थे और इस सम्बन्धमें मदनमोहनको गालियाँ भी देते थे।

मदनमोहन पर भट्टजीका विशेष प्रेम था इसलिये उनको स्वतन्त्र झिड़कियाँ और गालियाँ देनेका भी अबाध अधिकार था। वे झल्लाकर कहते—"क्यों रे मदनमोहन! तुझे यह क्या सूझा है? पण्डित सुन्दरलालने प्रजा-हितका कौनसा काम किया है। प्रजाहित-साधनमें ये कभी भाग नहीं लेते, तब तूँ क्यों उनकी तरफ़दारी करता है और उनको कौन्सिलमें भेजनेके लिये प्रयत्न करता है। तूँ चारूका विरोध करता है जिसने अपनी सारी ज़िन्दगी लोक-सेवामें बिता दी और जो तेरे बड़े ख़ैरख्वाह भी थे। तूँ चारूके विरुद्ध क्यों कोशिश करता है?"

मदनमोहन पण्डित सुन्दरलालकी योग्यता और कर्त्तव्य-परायणताके विषयमें भट्टजीको बड़ी नम्रतासे समझाते पर भट्टजी धुरन्धर विद्वान् ही नहीं बल्कि अपने मतको दृढ़तासे पकड़नेवाले भी थे। वे नाराज़ होकर कहते—"तू जो चाहे सो कर, पर इसको कौन्सिलमें जानेका कोई हक़ नहीं है। तू इनके पीछे काहे पड़ता है, तू अपने लिये क्यों नहीं प्रयत्न करता।"

मदनमोहन मुस्कराकर कहते—भट्टजी, अभी मेरा कौन्सिल जानेका समय नहीं आया।

कुछ दिनोंतक कौन्सिलके उम्मेदवारोंके सम्बन्धमें इस तरहकी टीका-टिप्पणी गोष्ठीमें होती रही। बादको इनके तरफ़दारोंने अख़बारोंमें यह चर्चा छेड़ दी और दोनों तरफ़से भद्दे और कुरुचि-पूर्ण लेख प्रकाशित होने लगे। मगर यह सब पण्डित सुन्दरलाल और चारू बाबूके तरफ़दारोंकी ओरसे हो रहा था। पण्डित सुन्दरलाल तो स्वयं कौन्सिलमें जाना पसन्द न करते थे, केवल मदनमोहनका अनुरोध उन्हें घसीटे लिए जा रहा था। जब धुरका फ़ज़ीहतके इस आन्दोलनने अख़बारोंमें ज़ोर पकड़ा तब एक दिन पण्डित सुन्दरलाल बाबू चारुचन्द्र मित्रसे मिले और विनीत भावसे कहा—बाबू साहब! यह जो अख़बारोंमें भद्दे लेख छप रहे हैं उनमें मेरा कुछ भी हाथ नहीं है। मेरी कौन्सिलमें जानेकी तनिक

भी इच्छा नहीं है। यह मालवीयजी वग़ैरहका हठ है जो मुझको भेजनेका प्रयत्न कर रहे हैं और उन्हींके हठके कारण मैं कौन्सिलके लिये खड़ा हूँ। चारुचन्द्र मित्र भी पण्डितजीके शील-स्वभाव से विज्ञ थे। उन्होंने जवाब दिया—पण्डितजी! क्या मैं इतना भी नहीं जानता कि आप इस तरहकी कार्रवाइयाँ कब पसन्द कर सकते हैं। मगर कौन्सिलके चुनावमें ऐसे भद्दे आन्दोलन होते ही रहते हैं।

अन्तमें मदनमोहनका प्रयत्न सफल हुआ और पण्डित सुन्दरलाल कौन्सिलके मेम्बर हो गए। कौन्सिलका मेम्बर हो जाना एक साधारण घटना थी, मगर पण्डित सुन्दरलालजीपर इसका स्थायी असर पड़ा। इस घटनाके बाद पण्डित सुन्दरलाल देशके कामोंमें हाथ डालने लगे और उनके द्वारा ऐसे अनेक उपयोगी काम हुए हैं जो सदा सर सुन्दरलालकी कीर्त्तिको अमर बनाए रहेंगे।"

'कोई चिन्ता नहीं'

एक बार कुछ इङ्गलैण्डके शिक्षा-प्रेमी काशी हिन्दू विश्वविद्यालयमें आए। मालवीयजी उन्हें भवन दिखानेके लिये ले गए। उन्होंने प्रोफेसर शेषाद्रिसे कहा कि मुझे मीटिङ्गमें जाना है आप इन्हें इञ्जीनियरिङ्ग कौलेज् दिखा लाइये। प्रोफेसर शेषाद्रि बोले कि शायद कौलेज् बन्द हो गया होगा। मालवीयजी 'बोले—कोई चिन्ता नहीं, वहाँ कोई चपरासी होगा'। प्रोफेसर शेषाद्रि फिर बोले कि शायद कोई चपरासी भी इस समय न हो। इसपर मालवीयजीने कहा—"कोई चिन्ता नहीं, काँचके दरवाजोंमेंसे झाँककर देख लेंगे।" यह सुनकर उन अंग्रेजोंमेंसे एक बोल उठा—"मैं समझा, मैं अब समझा कि विश्वविद्यालयका निर्माण कैसे हुआ है। इसी 'कोई चिन्ता नहीं' की भावनाने ही इस विश्वविद्यालयको जन्म दिया है।"

महान आशावादी

मालवीयजीकी आशा भारतीय इतिहासमें अशोकका स्तम्भ बन गई है। जब लोग चारों ओरसे निराशाके धुएँमें घिरे हुए बग़लें झाँकते हैं उस अवसरपर भी मालवीयजी अपनी आशाका दीपक लिए हुए अपना मार्ग ढूँढ़ लेते हैं। उनकी इसी आशावादिताने उनके आगेके बड़े-बड़े बीहड़ वन साफ कर दिए और काँटोंसे भरे हुए मार्गोंमें फूल बिछा दिए। उनके लिये उनका यही आशा-वादी हृदय निरन्तर नई योजनाएँ निकाला करता है और विश्वास दिलाता रहता है कि ईश्वर प्रत्येक योजनाके लिये उनको आयु और साधन भी देता रहता है। हिन्दू विश्वविद्यालय वास्तवमें उनकी आशाका ही पुत्र है।

"सन् १९३१ ई० के आरम्भमें जब कांग्रेस एवं सरकारके बीच समझौता हुआ और महात्माजी गोलमेज कौन्फरेन्समें जानेके पहले वायसरायसे मिले तब भी मालवीयजीकी आशावादिताका जबर्दस्त प्रमाण मिला था। विलायत जाते समय जब वे सब तैयारी कर चुके थे और बम्बई पहुँच गए थे तब महात्माजी एवं सरकारके बीच कुछ बातें ते न पानेके कारण ऐसा मालूम होने लगा था कि कांग्रेस गोलमेज़ सम्मेलनमें भाग न ले सकेगी। बात-चीत अब टूटी, अब टूटी—यह हो रहा था पर मालवीयजीका सफलतामें इतना विश्वास था कि गान्धीजीके रुक जानेसे वे बम्बईसे उत्तरकी ओर आए तो सारा सामान बँधवाकर बम्बईमें ही यह कहकर छोड़ आए कि अभी तो यहाँ लौटकर आना ही है। वही हुआ। जो असम्भव दिखता था वह सम्भव हो गया और मालवीयजी महात्माजीके साथ समयपर जहाज़पर रवाना हो सके।"

खुला दरबार

मालवीयजीका बँगला एक सराय थी। हर तरहके लोग वहाँ आपको मिल सकते थे। उनका दरबार सबके लिये हर समय खुला रहता था। इससे होता यह था कि हरएक ऐरा-ग़ैरा नत्थू ख़ैरा वहाँ पहुँच जाता था और उनका समय व्यर्थ नष्ट करता था। वे सङ्कोचमें आकर किसीसे जानेको नहीं कहते थे और लोग भी इतने विद्वान होते थे कि

उस समय बुद्धिसे ज़रा भी सम्बन्ध रखनेका प्रयत्न नहीं करते थे कि काम हो जाय तो चल दें, वहाँ डटे रहते थे। अच्छी हालतमें तो खैर कुछ नहीं पर मालवीयजी जब बीमार पड़ते थे तब तो उनकी दशा देखकर बड़ी दया आती थी। न मालूम कहाँ-कहाँसे लोग अपना पचड़ा लेकर आते थे और मालवीयजी विस्तरपर पड़े-पड़े उनकी गाथा सुनते जाते थे। एक बार वे जब बीमार पड़े तो डाक्टरोंने बहुत देरतक उपदेश दिया और सलाह दी कि आपको किसीसे मिलना नहीं चाहिए, लोगोंका आना-जाना बन्द कर देना चाहिए इत्यादि। सब कुछ सुनकर मालवीयजी बोले—"कह चुके न? देखो एक शायरने कहा है—

नासेहा मत दे नसीहत जी मेरा घबराय है।
मैं उसे समझूँ हूँ दुश्मन जो मुझे समझाय है॥

पचहत्तर बर्षोंकी पुरानी आदत भला मुझे अब छोड़नेको कहते हो" बस इस एक शेरमें मालवीयजीके सारे जीवनकी कहानी भरी हुई है। उन्हें इसीसे परख लीजिए। सचमुच पुरानी आदतें अब भला कहाँ छुटती हैं।

एक बार इसी तरह उनके छोटे पुत्र गोविन्दजीने भी उनसे कहा था कि आपको लोग बहुत परेशान करते हैं मैं सब लोगोंका आना रोक देता हूँ। इसपर मालवीयजी बोले कि "जबतक मैं इस घरमें हूँ तबतक यह नहीं हो सकता"। इस खुले दरवारके कारण न जाने कितने खुफिया पुलिसवाले भी उनके बङ्गलेके चारों ओर मँडराया करते थे परकाँचकी गचपर चील चोंच भी मारेगी तो अपना ही मुँह तोड़ेगी

गाँधीजीने लिखा है कि—

"पण्डित मालवीयजीने मुझे अपने ही कमरेमें शरण दी। उनके जीवनकी सादगीकी एक झाँकी मुझे हिन्दू-विश्वविद्यालयके शिलान्यासके अवसर पर मिली, किन्तु इस अवसरपर उनके साथ एक ही कमरेमें होनेके कारण मैंने अत्यन्त निकटसे उनकी नित्यकी जीवन-चर्य्या देखी थी और उसे देखकर मैं मन्त्रमुग्ध हो गया। उनका स्थान सभी दरिद्रोंके लिये एक धर्मशालाकी भाँति था। वह इतना ठसाठस भरा था कि एक कोनेसे दूसरे कोनेतक जाना आपके लिये बहुत कठिन था। उसमें सब समय के लिये किसी भी अभ्यागतके लिये, जो अपनेको अपनी इच्छानुसार उनका समय लेनेका अधिकारी समझता था, आनेकी कोई मनाही न थी। इस धर्मशालाके एक कोनेमें बड़े सम्मानसे मेरी खटिया बिछी थी। इस भाँति मुझे मालवीयजीसे नित्य वार्त्तालाप करनेका सुयोग मिला। भिन्न दल और भिन्न विचारोंके होते हुए भी वे मुझे बड़े भाईकी भाँति प्यारसे समझाते थे।"

उपसंहार

उस पवित्र शतदल कमलको देखकर यही जान पड़ता था कि वह कोई दैवी शक्ति लेकर, किसी दैवी प्रेरणासे कुछ निश्चित उद्देश्य लेकर आया था और जबतक वह उद्देश्य पूर्ण नहीं हुआ तबतक वह यों ही खिला रहा और अपनी सुगन्धसे सारे संसारको पवित्र और सुवासित करता रहा।

पचहत्तरवीं वर्षगाँठके दिन

५ जनवरी सन् १९३७ ई० को काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालयके श्री विश्वनाथ मन्दिरकी पवित्र भूमिपर जयन्ती-उत्सव मनानेके लिये विशाल पण्डाल सजाया गया था। वहाँ यज्ञ-मण्डपमें महामहोपाध्याय प्रिन्सिपल पण्डित प्रमथनाथ तर्कभूषणजीकी अध्यक्षतामें ३० दिसम्बरसे काशीके प्रसिद्ध पण्डितोंद्वारा विष्णुयाग आरम्भ किया गया था। इसके साथ ही साथ पूज्य मालवीयजी द्वारा सङ्कलित महादेव-माहात्म्य, शतचण्डी, गीता पाठ, महामृत्युञ्जय-जप आदि भी किए गए। ५ जनवरीको प्रात:काल पूज्य मालवीयजी फैज़पुर कांग्रेससे लौटकर काशी हिन्दू-विश्वविद्यालय आए। सुबहसे ही पूज्य मालवीयजीके बँगलेपर दर्शकोंकी भीड़ लगी हुई थी। प्रात:काल ही बाहर आकर पूज्य मालवीयजीने सबको दर्शन दिए। वहाँसे दर्शन करके सब लोगोंने सभामण्डपकी ओर प्रस्थान किया।

निमन्त्रित व्यक्ति, अध्यापक, महिलाएँ छात्र, छात्राएँ और छोटे-छोटे बच्चोंसे निश्चित स्थान भर गया था। नौ बजते बजते सभा-मण्डप ठसाठस भर गया। पैदल, घोड़ा, गाड़ी, मोटर और इक्कोंका ताँता लगा हुआ था। सब वहीं पहुँच रहे थे। ठीक दस बजे पूज्य मालवीयजी, काशी-नरेशके साथ यज्ञशालामें पधारे, जहाँ यज्ञ और वेदध्वनि हो रही थी। पूर्णाहुतिके समय ब्राह्मणोंने उन्हें आशीर्वाद दिया और फल-फूल समर्पण किए। सभा-मण्डपमें पधारनेपर स्कूलकी छात्राओंने आपका स्वागत किया। चारों ओरसे जयध्वनिके घोषसे सभा-मण्डप गूँज उठा। फिर बालचर-मण्डलीने स्वागत गान सुनाया, उसके बाद बालिकाओंने गाना गाया। बच्चों और श्रद्धालुओंने पूज्य मालवीयजी और काशी नरेशको मालाएँ पहनाईं।

इसके बाद महामहोपाध्याय पण्डित प्रमथनाथ तर्कभूषणजीने आपके छिहत्तरवें जन्मदिवसकी शुभ कामना संस्कृतमें पढ़कर सुनाई। नैयायिक पण्डित बालकृष्णजी मिश्रने पूज्य मालवीयजीकी जन्मतिथि, पक्ष और महीनेकी विशेषताका चामत्कारिक अर्थ बतलाते हुए आपको बधाई दी। प्रोवाइस चान्सलर राजा ज्वालाप्रसादजीने यह जीवन-चरित ग्रन्थ मालवीयजीको भेंट किया और इस ग्रन्थके लेखकका परिचय दिया और उनको धन्यवाद दिया। फिर पण्डित सीताराम चतुर्वेदीजीने इस ग्रन्थके प्रथम और अन्तिम अध्याय पढ़कर सुनाए जिसे सुनकर जनता मन्त्रमुग्ध सी हो गई और बहुत समयतक करतल-ध्वनि करती रही। श्री मालवीय-जीवन-चरित समितिके अध्यक्ष पण्डित रामनारायण मिश्रजीने ग्रन्थके सहायकोंको धन्यवाद दिया और एक स्थानीय सज्जन द्वारा तैयार की हुई एक सुन्दर सुनहरी देशी घड़ी भेंट की जिसके साथ भारत-माताकी मूर्त्ति बनी हुई थी। आर्य्य-समाज, अछूतोद्धार सभा, सेवासमिति, बालचर-समिति, महिला-विद्यालय, इत्यादि अनेक समितियों और संस्थाओंकी ओरसे बधाइयाँ तथा शुभ कामनाएँ प्रकट की गईं। इनमें बाबू गौरीशङ्कर प्रसाद वकील और राजपण्डिता श्रीमती यमुना देवीके भाषण उल्लेखनीय थे। अन्तमें पूज्य मालवीयजीने एक छोटासा सारगर्भित, विनम्र भाषण दिया—

पूज्य मालवीयजीका भाषण

विद्वज्जन, देवियो, सज्जनो और विद्यार्थियो!

"मैं तो आज मूक हो रहा हूँ। जिस प्रेम और उत्साहसे आप लोगोंने यह उत्सव मनाया है उसके विषयमें मैं क्या कहूँ। मैं शब्दोंमें उस भावको प्रकट नहीं कर सकता। मैं भगवान विश्वनाथसे प्रार्थना करता हूँ कि वे मुझे आयु दें। आप कहोगे कि तुम कितने निर्लज्ज हो कि अपने मुँहसे अपनी आयु चाहते हो जब इतने भाई बहनोंने तुम्हारी आयुके लिये भगवानसे प्रार्थना की। फिर वे भगवान तो सबके हृदयमें, घट घटमें रहनेवाले हैं, फिर उनसे क्या माँगें। लेकिन मैं क्या करूँ। देशकी दशा बड़ी बुरी हो गई है। हिन्दू धर्म भी असहटित है। सारी जातिकी दशा बुरी हो गई है। इस दुःखके उमड़ते हुए समुद्रमें क्या मुझे मरनेकी फ़ुरसत है? मुझे सबसे बड़ी यही चिन्ता है कि देश और धर्मकी किसी तरह दशा सुधरे और मैं इसी लिये भगवानसे प्रार्थना करता हूँ कि वे मुझे इस कामको करनेके लिये आयु देनेका अनुग्रह करें। एक बात यह है कि मुझे यह सौभाग्य मिला है कि मेरे पितामह, पितामही, पिता और माता बड़े धर्मात्मा, पवित्र, सदाचारी और निःस्वार्थी ब्राह्मण थे, उन्हींके प्रसादसे मैं इतना काम कर सका हूँ। मैंने बहुत थोड़ी विद्या पढ़ी है। मैं बहुत कम अंग्रेजी और कुछ संस्कृत जानता हूँ। मुझमें शारीरिक बल भी कम है और धन तो सदासे ही कम रहा है। मेरे पिता एक ग़रीब ब्राह्मण थे और उन्होंने सदा ब्राह्मणका जीवन बिताया। यह उन्हींकी तपस्या थी जिसने मुझे धर्म, जाति और देशका सेवक बनाया। मैं चाहता हूँ कि भारतवर्षके सब लोगोंको ऐसे ही धर्मात्मा पिता और पितामह मिलें जिन्होंने पाँच रुपयेसे कमकी आमदनीमें भी कभी नौकरीका लालच न करके सन्तोषसे जीवन व्यतीत किया। मैं चाहता तो अपना व्यक्तिगत लाभ बहुत कर सकता था किन्तु दस-पाँच लाख रुपया मिलता भी तो क्या था। मैं सुखसे जीवन बिता सकता था पर वह इस सेवाके सामने कुछ भी नहीं था।

सौ वर्षकी उम्र कोई बड़ी बात नहीं है। मेरे ताऊ, पिताके बड़े भाई और स्वर्गीय दादाभाई नौरोजीने तिरानवे वर्षकी उमर पाई।

मेरा दस वर्षका कार्य्यक्रम है, जिसको मैं इसी शरीरसे पूरा करके जाना चाहता हूँ। अभी यहाँ मन्दिर बनानेकी इच्छा है, किन्तु यह कोई बड़ी बात नहीं है। मन्दिर क्यों न बने? यह तो इस विश्वविद्यालयके हृदयके समान है। जब हृदय ही नहीं होगा तो शरीर किस कामका! हज़ारों वर्ष पहले योरोपके लोग जब नङ्गे फिरते थे, उस समय हमारे यहाँ सभ्यता-सूर्य उन्नतिपर था और यहाँकी संस्कृति बड़ी प्रबल थी। इस संस्कृतिकी रक्षा करना हम लोगोंका परम उद्देश्य होना चाहिए। कौनसा ऐसा स्थान है जहाँ हिन्दू संस्कृतिकी रक्षा और देशका अभिमान हो? अंग्रेज़ अपनी संस्कृतिका अभिमान करते हैं, ईसाई और मुसलमान अपनी संस्कृतिका। फिर आप ही लोग अपने धर्मका अभिमान क्यों नहीं करते? इस विश्वविद्यालयको एक ऐसा केन्द्र बनाओ, जहाँ सबके मनमें हिन्दू संस्कृतिका भाव हो और जहाँ इस संस्कृतिको समझने और रक्षा करनेका उपाय हो सके। ऐसे एक नहीं सौ विश्वविद्यालय भी थोड़े हैं। पर कम से-कम एक तो अवश्य हो और वह केन्द्र ऐसा प्रबल हो कि यहाँ सबका ठीक-ठीक प्रबन्ध हो। मैं आज ज्यों ही यज्ञमण्डपमें आया, त्योंही मुझे वेदकी गम्भीर ध्वनि सुनाई दी और मेरा मन ऐसा प्रसन्न हो गया जैसे बादलकी गरज सुनकर मोर नाच उठे। वह स्वर, नियम और मर्य्यादाके साथ किया हुआ वेदघोष चित्तको कितना प्रसन्न करता था। एक तो वेदका सङ्गीत और एक सामान्य सङ्गीत—दोनों हमारी संस्कृतिके मूल हैं। सा, रे, ग, म, वेदोंमें ही बंधे हैं। मुझे आशा है सब लोग श्रद्धा और सच्चे सङ्कल्पके साथ इनकी रक्षा करेंगे और बचावेंगे। मैं चाहता हूँ और आशा करता हूँ तथा मुझे विश्वास है कि यहाँ दस हज़ार विद्यार्थी शिक्षा पावेंगे, अभी तो कुल साढ़े तीन हज़ार

विद्यार्थी हैं। मैं चाहता हूँ कि एक हज़ार विद्यार्थी यहाँसे अन्न-वस्त्र पाकर पुराण-शास्त्रका अध्ययन करें। वे केवल इसीलिये यहाँ न आवें कि यहाँ अन्न-वस्त्र मिलता है बल्कि सच्चे हृदयसे यहाँ अध्ययन करने आवें। पचीस करोड़ हिन्दुओंके लिये एक हजार विद्यार्थियोंका पोषण करना कठिन नहीं है। यहाँ पण्डित बालकृष्णजी और पण्डित प्रमथनाथजी जैसे विद्वान् भरे पड़े हैं। अभी संस्कृत-विभागके लिये पचास लाख रुपये चाहिएँ। विद्यार्थियों और अध्यापकोंके रहनेकी जगह चाहिए।

इस मन्दिरके लिये मैं क्या कहूँ। यह अबतक क्यों नहीं बना, इसके लिये मुझे बड़ा दुःख है। पचास मील पैदल चलकर एक तपस्वी महात्मा आए और इसकी नींव रख गए तबसे यह अभीतक नहीं बन सका। पर इसका सब दोष मुझपर ही है पर आप घबराएँ नहीं। विदेशोंमें भी बड़े-बड़े मकानोंके बननेमें यों ही देर होती है। कुकुरमुत्ता तो यों ही उग आता है, पर बड़े वृक्षके बढ़नेमें समय लगता है। मैंने इसके लिये काफ़ी समय नहीं दिया, मुझे इसकी बड़ी शर्म है। हम सबको जतन करना चाहिए कि सामग्री इकट्ठी हो और काम हो। सब विद्यार्थी इस मन्दिरके लिये प्रयत्न करें और धन इकट्ठा करें तो समुचित प्रबन्ध हो। मेरा दस वर्षका कार्यक्रम है। आप विश्वास रक्खो, मैं अभी नहीं मरूँगा। शरीर छूटनेपर भी मैं नहीं मरूँगा, बल्कि हिन्दू विश्वविद्यालयमें या यहीं कहीं जन्म लेकर हिन्दू-जाति और देशकी सेवा करूँगा। यदि भगवानकी मर्ज़ी होगी तो वे मुझे और आयु देंगे। यदि उन्हें इस शरीरसे और सेवा करानी होगी तो वह मेरे स्वास्थ्यमें और बलमें वृद्धि करेंगे और यदि उनकी इच्छा नहीं होगी तो उनकी मर्ज़ी। इस बातको भगवान समझते हैं।

जिन लोगोंने मुझे आशीर्वाद दिया है, उनको मैं हृदयसे धन्यवाद देता हूँ और आशा करता हूँ कि सब लोग हिन्दू संस्कृतिकी रक्षा करेंगे, जिससे हिन्दू विश्वविद्यालयकी स्थापनाका उद्देश्य पूर्ण हो।

मैं फिर आप सबको रोम रोमसे धन्यवाद देता हूँ।"

इसके बाद मालवीयजीकी जयकारके साथ सभा विसर्जित हुई और उस समयकी कही हुई उनकी वाणी भी सफल हुई और वे सचमुच दस वर्षतक जीवित रहे।

अन्तिम दस वर्ष

सन् १९३७ ई० में गवर्नमेण्ट आफ़ इण्डिया ऐक्टके नये विधानके अनुसार छः प्रान्तों में स्वायत्त शासन स्थापित हो गया और सब यही समझने लगे थे कि अब हमारे स्वराजका श्रीगणेश प्रारंभ हो गया किन्तु देखते ही देखते गवर्नरों और मंत्रियों का छोटी सी छोटी बातों में संघर्ष हो चला था और यह निश्चय हो गया था कि अब बहुत दिनों तक कांग्रेस-मंत्रिमण्डल नहीं चल पावेगा। सन् १९३८ ई० के सितम्बरमें जब म्युनिख का समझौता हुआ तो यह आशा हो चली थी कि अब विश्वके राष्ट्र परस्पर शान्ति रक्खेंगे।

प्रयागमें पूज्य मालवीयजीका कायाकल्प

इसी समय महात्मा बिसनदासजी तपसीको श्रीआनन्द स्वामीजीने पूज्य मालवीमजीसे मिलाया और तपसीजीने पूज्य मालवीयजीको कायाकल्प करनेकी प्रेरणा दी। यद्यपि वैद्योंने तथा अन्य हितैषियोंने बहुत कहा कि इस अवस्थामें कायाकल्प हितकर न होगा और मालवीयजीभी मनसे उसके पक्षमें नहीं थे किन्तु तपसीजीके आग्रहसे केवल शीलमें आकर कायाकल्पकी यातना स्वीकार करली। फलतः १६ जनवरी सन् १९३८ से पूज्य मालवीयजीने शिवकोटिके [रामबाण] प्रयागमें काया-कल्प आरम्भ किया।

इस कायाकल्पमें तपसीजीके साथ श्री आनन्द स्वामीजी, श्री हरवंशलालजी भी थे। पूज्य मालवीयजीके साथ पं० हरिदत्तजी शास्त्री भी कल्प करते थे। शास्त्रीजी बड़े विद्वान हैं। वेदतीर्थ डी० डी० आदि उपाधियोंसे विभूषित हैं। आप टेहरी नरसिंहगढ़ आदि राज्योंके राजगुरु है और बहुत प्रतिष्ठित सज्जन हैं। आप ज्योतिष, हस्तरेखा, तन्त्रविद्या आदि अनेक विद्यार्थिओंके भी महान पण्डित हैं। स्वर्गीय स्वामी रामतीर्थका और आपका बहुत दिनों तक साथ रहा है।

श्री कृष्णदासजी तपसीजीके प्रधान शिष्य हैं। आप उनके भक्त और दाहने हाथ हैं और बड़े परिश्रमसे तपसीजीका सेवा-कार्य करते हैं। तपसीजीने पहामें जो कल्प किया था वह भी आपहीकी सहायता से किया था और आपही तपसीजीकी परिचर्या करते थे। इस कल्पमें औषधि तैयार करनेमें आप योग दे रहे थे। पूज्य मालवीयजीके तृतीय पुत्र पं० मुकुन्द मालवीयजीने इस समय अपूर्व सेवा की है। ठाकुर शिवधनीसिंहजी पूज्य मालवीयजीके साथ रहते थे।

पूज्य मालवीयजी उस दिन दोपहरके १२ बजेकी गाड़ीसे काशीसे प्रयाग गए और स्टेशनसे सीधे अपने घर ठाकुरजीके दर्शन करने चले गए। वहाँ कुछ देर रह कर आप शिवकोटी गए और ३ बजेसे आपने कल्प आरम्भ किया। कल्प आरम्भ करनेके पूर्व आपने तपसीजी और पं० हरिदत्तजी शास्त्रीके साथ शिवजीकी पूजा की, फिर औषधि ली। औषधि लेनेके पूर्व भी स्वस्ति वाचन, आदि वेद मन्त्रों द्वारा प्रार्थना की गई और भगवान् धन्वन्तरिजी तथा अन्य देवताओंकी स्तुतिके बाद शास्त्रीजीने पूज्य मालवीयजीके माथेपर चन्दन लगाया और मङ्गल कामना की। फिर पूज्य मालवीयजीने 'तपसीजी' के माथेपर चन्दन लगाया। अनन्तर पूज्य मालवीयजी और शास्त्रीजीने औषधि ली। औषधि खा चुकनेपर पूज्य मालवीयजीने मुस्कराते हुए शास्त्रीजीसे कहा—"पहले आपको कुटी प्रवेश करा आऊं।" शास्त्रीजीनेभी हँसते हुए कहा-

"आपका चित्त प्रसन्न हो गया। देखिए औषधि खाते ही मुस्कान आ गई।" फिर पूज्य मालवीयजी शास्त्रीजीको उनकी कुटीमें बिठाने गए और उन्हें कुटी-प्रवेश कराकर फिर उन्होंने स्वयं कुटी-प्रवेश किया।

[महामना मालवीयजी, महात्मा शिवनदासजी तपसी, तथा पं० हरदत्तशास्त्रीजी कुटीमें प्रवेश करनेसे पूर्व]

पूज्य मालवीयजी और शास्त्रीजी रामबागके जिन कमरोंमें रहते थे उनके चारों ओर ईंटोंकी दीवारें खड़ी कर दी गई थीं, जिससे सूर्यका प्रकाश या शोरगुल वहाँ तक पहुँच न पाए। इन कुटियोंमें ४० दिन तक वे अकेले रहे और इस बीचमें वे बाहर न निकल सके और न सांसारिक बातोंका ध्यान किया। पूज्य मालवीयजीकी सेवा उनके पुत्र पं० मुकुन्दजी मालवीय स्वयं करते थे। पं० मुकुन्दजी मालवीयके सिवा पं० त्रिलोचन पन्त तथा डा० शिवधनी सिंह आवश्यकतानुसार उनके पास जा सकते थे और 'तपसीजी' उन्हें रोज देखते रहते थे। काशीके विद्वान् पं० भीमसेनजी चतुर्वेदी (लेखकके पूज्य पिताजी) तथा रामप्रियजी आपको श्रीमद्भागवत आदिकी कथा सुनाया करते थे, इनके सिवा और कोई उन्हें देखने नहीं जा सकते थे। इसलिये पूज्य मालवीयजीके सब मित्रों और भक्तोंको मना कर दिया गया था कि इस चिकित्साके बीच वे उन्हें देखने या उनके सम्बन्धमें पूछताछ करने रामबाग न जायँ।

पूज्य मालवीयजीके काया-कल्प करनेका निश्चय करते ही प्रयोगको कठोर समझकर उनके बहुत मित्रों और दूसरे लोगोंको चिन्ता हुई थी और कुछने उसमें खतरा भी समझा था। किन्तु चिकित्सा आरम्भ होते ही यह स्पष्ट हो गया कि खतरे या चिन्ताकी कोई बात नहीं है। अपनी कुटीमें पूज्य मालवीयजी प्रसन्नचित्त रहे और आनन्दपूर्वक कल्प किया। यह कल्प ४० दिनतक हुआ। इस कल्पमें उन्हें तीन समय औषधि दी जाती थी और केवल गायके दूध पर रक्खा गया था। वे २ सेर दूध पीते थे। पूज्य मालवीयजीके लिये हिसारसे ४ श्यामा गायें मँगाई गई थीं। कल्पाचार्य 'तपसीजी' का कहना है कि वे काष्ठादिक औषधियोंसे ही कल्प कराते हैं। हाँ कल्पकी विधि अवश्य विशेष है। औषधि रोज तैयारकी जाती थी और रोज सवेरे शङ्करगढ़के जङ्गलसे जो यहाँसे ३० मील दूर है, लाई जाती थी। वहाँ तपसीजीके शिष्य श्री कृष्णदासजी उसको तैयार करते थे। इस औषधिके तैयार करनेमें एक विशेष विधिका प्रयोग किया जाता था। पहले औषधि तैयार की जाती थी फिर ढाकके एक वृक्षके तनेमें खोखला कर उस वृक्षमें औषधि रक्खी जाती थी तब जङ्गलके कण्डोंसे उस वृक्षको फूँककर औषधि बनाई जाती थी।

श्री हरदत्तजी शास्त्री भी पूज्य मालवीयजीके साथ एक अलग कुटीमें कल्प कर रहे थे। उनका कल्प भी ४० दिनका था और उसकी भी वही विधि थी। शास्त्रीजीने १३ जनवरीको औषधि-सेवन करना आरम्भ किया था और १६ जनवरीको उन्होंने पूज्य मालवीयजीके साथ कुटी प्रवेश किया। शास्त्रीजीकी एक आँखकी ज्योति ६ वें दिन बढ़ गई जिससे पहले कम दिखता था। इस

कायाकल्पसे पूज्य मालवीय
गया। वजन भी बढ़ गया।
भी अच्छी होगई थी, आँखकं
नाड़ी अच्छी चलती थी, फे
था। सीधे चलने लगे औ
उत्साह भी आगया था
दिखता था।

किन्तु थोड़ेही दिनोंमें इस
हुआ। :
झुक गई
तथा :
कायाकल
आशा थी
ही हुई।

[कायाकल्पके पश्चात् पूज्य मालवीयजी]

सहस
को दूसरा
गया और :
विरुद्ध अं
युद्धमें घसी
इसका घो
कि हमारी
हमें युद्धका
जाय किन्तु
कुछ सुननेको
फलतः सब
त्याग पत्र दे
सन् १९४०
महासभाकी
यह निर्णय कि
भारतको पूर्ण
जाय और
सत्याग्रह आरम्भ
कर दिया :
गवर्नमेन्ट ने
फरता हुआ
अपराध रूप
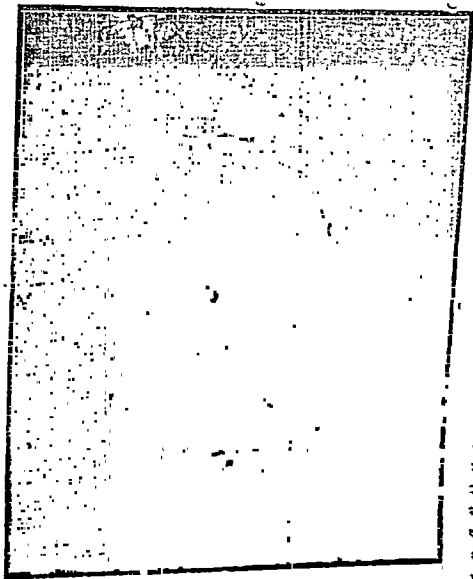
श्री हरदत्तजी शास्त्री भी पूज्य मालवीयजीके साथ एक अलग कुटीमें कल्प कर रहे थे। उनका कल्प भी ४० दिनका था और उसकी भी वही विधि थी। शास्त्रीजीने १३ जनवरीको ओषधि सेवन करना आरम्भ किया था और १६ जनवरीको उन्होंने पूज्य मालवीयजीके साथ कुटी प्रवेश किया। शास्त्रीजीकी एक आँखकी ज्योति ६ वें दिन बढ़ गई जिससे पहले कम दिखता था। इस कायाकल्पसे पूज्य मालवीयजीका स्वास्थ्य सुधर गया। वजन भी बढ़ गया था, और स्मरणशक्ति भी अच्छी होगई थी, आँखकी ज्योति बढ़ गई थी, नाडी अच्छी चलती थी, फेफड़ा अच्छा हो गया था। सीधे चलने लगे और उनमें स्फूर्ति और उत्साह भी आगया था तथा मन प्रसन्न दिखता था।

किन्तु थोड़ेही दिनोंमें इसका बड़ा बुरा प्रभाव हुआ। उनकी कमर सहसा झुक गई और वे शिथिल तथा शय्यारूढ़ होगए। कायाकल्पसे जितने लाभकी आशा थी उससे अधिक हानि ही हुई।

[कायाकल्पके पश्चात् पूज्य मालवीयजी]

आन्दोलन

सहसा ३ सितम्बर १९३९ को दूसरा महायुद्ध प्रारम्भ हो गया और भारतवर्षकी इच्छाके विरुद्ध अंग्रेजोंने उसे भी युद्धमें घसीट लिया। भारतने इसका घोर विरोध किया कि हमारी इच्छाके विरुद्ध हमें युद्धका भागी न बनाया जाय किन्तु ब्रिटिश सरकार कुछ सुननेको तयार नहीं थी। फलतः सब मन्त्रिमण्डलोंको त्यागपत्र दे देना पड़ा। सन् १९४० ई० में राष्ट्रीय महासभाकी कार्य-समितिने यह निर्णय किया कि तत्काल भारतको पूर्ण स्वराज्य दिया जाय और तब तकके लिए अस्थायी सरकारकी स्थापना कर दिया जाय। ब्रिटनने गवर्नमेण्ट आफ इण्डिया एक्टका सङ्घ सम्बन्धी दूसरा अध्याय समाप्त करके यह
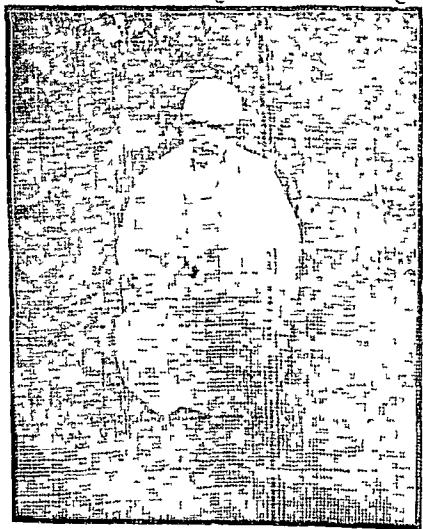
कहा कि दस करोड़ मुसलमान इस संघके विरोधी हैं। मुसलिम-लीगको भी इससे सहारा मिल गया और उन्होंने सन् १९४० ई० के मार्चमें उत्तर पश्चिम और उत्तर पूर्वके मुसलिम बहुमतवाले प्रान्तोंमें पाकिस्तान बनानेकी माँग की और इसके पश्चात् पाकिस्तान संघ, स्वतंत्रता और युद्धका ऐसा वात्याचक्र बना कि सन् १९४० ई० में व्यक्तिगत सत्याग्रह प्रारंभ करना पड़ा और १९४२ ई० में युद्ध और युद्धोद्योगोंके विरुद्ध सामूहिक सत्याग्रह भी प्रारंभ कर दिया गया। फलस्वरूप ब्रिटिश मंत्रि मण्डलने स्टेफोर्ड क्रिप्सको यहाँ भेजा जिन्होंने संघ विधानका प्रस्ताव करते हुए यह सुझाव रक्खा कि जो प्रान्त न चाहे वह संघमें न सम्मिलित हो और देशी राज्योंके लिए भी उसमें कोई स्थान नहीं था। यह भी संभवतः स्वीकृत हो जाता किन्तु इसके पश्चात् रक्षा विभाग के हस्तान्तरित करनेके प्रश्नपर समझौता टूट गया। १० अप्रैल सन् १९४२ ई० को राष्ट्रीय महासभाने क्रिप्स प्रस्ताव अस्वीकार किया और गान्धीजीने अपने 'भारत छोड़ो' आन्दोलनकी पुकार ऊँची करदी। ८ अगस्त सन् १९४२ ई० को 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव स्वीकृत हो गया और उसी दिन भारतवर्षके सब राजनीतिक नेता पकड़-पकड़कर विभिन्न प्रान्तोंमें, विभिन्न स्थानोंमें भेज दिए गये। इसी बीच २६ जनवरी सन् १९४१ ई० को ब्रिटिश-सरकार और गुप्तचर विभागको पराजित करते हुए श्री सुभाषचन्द्र वसु भारत छोड़कर बाहर शक्ति संगठित करने निकल गए और ब्रिटिश सरकार मुँह ताकती रह गई।

'भारत छोड़ो' का समाचार देश विदेशोंमें फैला तो जापानियोंके बंदी भारतीय सैनिकोंने ब सितम्बर १९४२ ई० को कप्तान मोहन सिंहने 'आजाद हिन्द फौज' की स्थापनाकी और गान्धीजीके जन्म-दिवस २ अक्टूबर सन् १९४२ ई० को सिंगापुर पदांग में आजाद हिन्द फौजका विराट प्रदर्शन हुआ और २ जुलाई सन् १९४३ ई० को जर्मन और जापानी पनडुब्बियोंसे संकट पूर्ण यात्रा करके नेताजी सुभाष बर्लिनसे सिंगापुर पहुँचे। २५ अगस्त सन् १९४३ ई० को वे आजाद-हिन्द-फौजके प्रधान सेनापति हो गए और उनकी अध्यक्षतामें भारतीय नेताओंके नामपर अलग-अलग सेनाओंका संगठन हुआ और महारानी झाँसीके नामपर भी महिलाओंकी एक सेना सगठित की गई। 'चलो दिल्ली' का नारा ही इनकी युद्ध ध्वनि हुई किन्तु इम्फालमें पहुँचकर यह स्थिति हो गई कि नेताजीको सैनिकोंकी इच्छाके विरुद्ध रुक जानेका आदेश देना पड़ा और मौलमीन लौटनेका निश्चय कर लिया गया। रंगूनके पतनके साथ नेताजीको अप्रैल सन् १९४५ ई० में रंगून छोड़ देना पड़ा किन्तु सहसा हिरोशिमा और नागासाकीपर जब ६ और ९ अगस्तको परमाणु बम-वर्षा हुई तो १५ अगस्त सन् १९४५ ई० को जापानने आत्म समर्पण कर दिया और नेताजी वायुयानसे सिंगापुरसे टोकियोके लिए उड़ चले। तब कहा जाता है कि १८ अगस्त सन् १९४५ ई० तेहोकू विमान केन्द्र से उड़ते हुए २ बजे दिनमें वह विमान गिर गया और नेताजी चल बसे किन्तु यह कथा पूर्ण रूपसे प्रमाणित नहीं किन्तु शरीरसे भले ही वे जीवित न हों किन्तु भारतीय स्वातन्त्र्य-संग्रामके वे सबसे बड़े सेनानी रहे हैं इसमें तनिक भी कोई संदेह नहीं।

सन् १९४२ ई० के 'भारत छोड़ो' आन्दोलनमें यों तो समूचे भारतके ही विद्यार्थियोंने योग दिया किन्तु काशी हिन्दू विश्व-विद्यालयके छात्रोंने अत्यन्त व्यवस्थित रूपसे आन्दोलनको चलाया। फलस्वरूप ब्रिटिश सरकारके खिझे हुए अधिकारियोंने हिन्दू विश्व-विद्यालयपर धावा किया और बलपूर्वक प्रत्येक विद्यार्थीको सामान सहित विश्व विद्यालयकी सीमाके बाहर ला पटका। इस समय पूज्य मालवीयजी अशक्त होकर अपने बँगलेमें पड़े हुए थे। उन्होंने जब सुना कि सर राधाकृष्णन् और इकबाल नारायन गुर्टू जैसे अधिकारियोंने भी इस ओर ध्यान नहीं दिया तो उनको बड़ा दुःख हुआ। विशेषतः यह जानकर कि

बहुत छात्राएं अनाथोंकी भाँति विश्वविद्यालयसे बाहर कर दी गई हैं और उनकी देख-रेख तथा उनके घर भेजनेकी व्यवस्थाका भी कोई प्रबंध नहीं है इस आन्दोलनमें कुछ छात्र गोलियोंके शिकार हुए, कुछको नगर, जिले और प्रान्तसे निर्वासित कर दिया गया और कुछ जेलोंमें ठूँस दिए गए, जिनमें बहुतसी छात्राएँ भी थीं। १९४२ ई० में सरकारने जो दमन-चक्र चलाया वह किसी भी सभ्य सरकारके लिए अत्यंत लज्जाकी बात थी किन्तु फिर भी ब्रिटिश सरकारने अत्यंत मनोयोगसे अपने सभी सैनिक शस्त्रास्त्रोंसे हत्या करते हुए, आग लगाते हुए इस आन्दोलनको दबा दिया किन्तु कुछ दिनोंके पश्चात् समाचार-पत्रों, व्यापारियों और नरमदलके नेताओंने यह आन्दोलन छेड़ा कि सभी नेताओंको छोड़ दिया जाय किन्तु सरकार टससे मस नहीं हो रही थी। उस समय अपनी वृद्धता और असमर्थताकी तनिक भी चिन्ता न करते हुए मालवीयजी ने ब्रिटिश सरकारको चुनौती दी और कहा कि गान्धीजीने सरकार द्वारा प्रेषित अपराध-सूचीका जो उत्तर दिया है या तो सरकार उसका प्रत्युत्तर दे या तत्काल गान्धीजीको छोड़ दे—इस घटनाका उल्लेख करते हुए अपने कांग्रेसके इतिहासमें श्री पट्टाभिसीतारमैयाने लिखा है—"तब बीचमें पड़े भारतके भव्य वृद्ध महा पुरुष पं०मदन मोहन मालवीयजो वय और बुद्धि—दोनोंमें परिपक्व थे उन्होंने गांधीजी तथा उनके साथियोंके छुटकारेकी माँग की और उन्होंने अपनी माँग गान्धीजीके उस उत्तरपर दाँवपर लगा दी, जो उन्होंने सरकार द्वारा प्रेषित अपराध-सूची पर दिया था।" इसीके पश्चात् पूज्य पण्डितजीने मार्चमें सर्व दल सम्मेलन करनेका निश्चय किया था किन्तु जब इन्होंने सुना कि ७ या ८ अप्रैलको लखनऊमें सर तेज बहादुर सप्रूके नेतृत्वमें निर्दल नेता-सम्मेलन हो रहा है तो उन्होंने अपना विचार छोड़ दिया इन आन्दोलनोंके फल स्वरूप ६ मई सन् १९४४ ई० को गान्धीजी छोड़ दिए गए और १५ जून सन् १९४५ ई० को जब लार्ड वावेल इंगलैण्डसे लौटे तो कार्य समितिके सभी सदस्य छोड़ दिए गए। शिमलेमें २६ जून से १४ जुलाई तक सब प्रान्तोंके प्राचीन और नवीन प्रधान-मंत्रियोंकी सभा हुई जिसमें कांग्रेस, लीग, सिक्ख दल और एँग्लो इण्डियन दलके लोग भी सम्मिलित हुए थे किन्तु १४ जुलाईको लार्ड वावेल ने घोषित कर दिया कि समझौता नहीं हो सकता। इसके पश्चात् जब मजदूर-दल पार्लियामेन्टमें शक्तिशाली हुआ तब १९ सितम्बरको यह घोषणाकी गई कि प्रान्तीय और केन्द्रीय चुनाव किये जायगे। विधान-परिषदकी स्थापना होगी और भारतके प्रधान दलों द्वारा घोषित अन्तिरम सरकारकी स्थापना होगी। इस विधान-परिषदमें देशी राज्यों के प्रतिनिधियों तथा अन्य अल्प मत जातियोंके प्रतिनिधियोंके सम्मिलित होनेकी योजना थी। इस घोषणा के साथ वाइसराय ने अपना नकाराधिकार भी शिथिल कर दिया था और इस प्रकार ६० वर्ष का जो राष्ट्रीय स्वतन्त्रताके लिए महायुद्ध हुआ उसकी पूर्णता मालवीयजी महाराजने स्वतः अपनी आँखों देख ली। कितना अच्छा होता यदि वे १५ अगस्त १९४७ ई० तक भी बने रहते।

अखिल भारतीय विक्रम परिषद।

संवत् २००० की पूर्तिके समय यह विचार किया गया था कि संपूर्ण देशमें शकारि सम्राट् विक्रमादित्यकी स्मृतिमें कोई विराट आयोजन हो। तदनुसार पूज्य मालवीयजीकी ही अध्यक्षतामें अखिल भारतीय विक्रम परिषद्की स्थापना हुई और निम्न लिखित योजना घोषितकी गई।

यह हम सब लोगोंका परम सौभाग्य है कि पराक्रमी हिन्दू सम्राट् शकारि महाराज विक्रमादित्यकी द्विसहस्राब्दि हमलोगोंके जीवन-कालमें पड़ रही है। आजसे दो सहस्र वर्ष पूर्व सम्राट् विक्रमादित्यने अपने तेज और पराक्रमसे विदेशी शकोंको खदेड़कर उस महाविजयके उपलक्ष्यमें विक्रम सम्वत्की स्थापना की थी। महाराज

विक्रमादित्यके इस अद्वितीय शौर्यका इतना प्रभाव पूरे देशपर पड़ा और कि इस संवत् को थोड़े ही समयमें समूचे भारतने प्रायः एकमत होकर स्वीकार कर लिया। महाराजने जहाँ रणक्षेत्रमें अपना पराक्रम दिखाया वहाँ उन्होंने भारतीय साहित्य तथा संस्कृतिको भी प्रश्रय दिया। उनके प्रसिद्ध नवरत्नोंमें सभी अपने-अपने विषयके अद्वितीय विद्वान् थे। उनमें भी महाकवि कालिदासके पाण्डित्य तथा कवित्वकी धाक तो सारा संसार मानता है। हिन्दू-संस्कृति, कला तथा साहित्यके ऐसे प्रतापी और आदर्श संरक्षक सम्राट्की द्विसहस्राब्दि मनाना हिन्दू-जातिका परम धर्म है। अतः इस उत्सवको सम्राट् विक्रमादित्यके अनुरूप मनानेके लिये काशीमें अखिल भारतीय विक्रम परिषद् की स्थापना हुई है, जिसने निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण योजनाएँ बनाई हैं।—

प्रथम योजना।

ग्रन्थोंका प्रकाशन—ऐसे शास्त्रीय ग्रन्थोंका प्रकाशन किया जायगा जिनसे हिन्दू-संस्कृति, कला और साहित्यका अध्ययन करनेवालोंको भारतीय आदर्शों तथा शैलियोंका पूर्ण ज्ञान होसके, उनका पथ-प्रदर्शन हो सके तथा आज हमारे आचार-विचार के साथ-साथ हमारी साहित्यिक प्रवृत्तियों पर जो विदेशी छाप पड़ रही है वह भी दूर हो जाय। अभी परिषद्ने निश्चय किया है कि पहले निम्नलिखित पाँच ग्रन्थोंका प्रकाशन हो:—

(१) कालिदास-ग्रन्थावली—यह ग्रन्थावली तीन खण्डोंमें होगी—

प्रथम खण्ड—रघुवंश, कुमारसंभव, मेघदूत तथा ऋतुसंहार, (मूल संस्कृत तथा सरल सर्वबोध नागरी भाषामें अनुवादके साथ)

द्वितीय खण्ड—अभिज्ञानशाकुन्तल, विक्रमोर्वशीय तथा मालविकाग्निमित्र नाटक (मूल संस्कृत, प्राकृत तथा सर्वबोध नागरी भाषामें अनुवादके साथ)

तृतीय खण्ड—कालिदास और उनकी रचनाओंकी प्राचीन तथा नवीन शैलीसे विस्तृत समीक्षा और गिने चुने प्रसिद्ध विद्वानोंके कालिदास-विषयक लेख।

(२) भारतका सांस्कृतिक इतिहास—इस ग्रन्थमें आरम्भ कालसे अबतक भारतीय संस्कृति के विकासका तथा उसके उत्थान और पतनके कारणोंका ब्यौरेवार उल्लेख रहेगा और उसमें यह भी सुझाया जायगा कि उसका पुनरुत्थान किस प्रकार हो सकता है। साथ ही अन्य संस्कृतियोंकी तुलनात्मक और विवेचनात्मक समीक्षा भी रहेगी।

(३) अभिनव नाट्यशास्त्र—इसमें नाटक-सम्बन्धी सभी जिज्ञासाओंकी परितुष्टि हो सकेगी इसमें प्राचीन भारतीय नाट्य-सरणियोंका विस्तारपूर्वक वर्णन रहेगा ही, साथ ही यूनानी, चीनी, जापानी, अंग्रेज़ी, फ्रांसीसी आदि सभी विदेशी नाट्य शैलियों, प्रेक्षागृहों तथा रङ्गमञ्चोंका भी सचित्र विस्तृत विवेचन रहेगा तथा सिनेमा आदि वैज्ञानिक रूपकोंका भी पूर्ण समीक्षण होगा। नाट्यशास्त्रके अंग गीत, वाद्य तथा नृत्य का भी पूर्ण विज्ञान प्रस्तुत किया जायेगा यह ग्रंथ दो खण्डों में प्रकाशित होगा। प्रथम भागमें नाट्यरचना अर्थात् नाटकके नियमों का विवेचन रहेगा। द्वितीय भागमें प्रयोग अर्थात् नाटक खेलनेके सब विधानोंका समावेश होगा।

(४) समीक्षा-शास्त्र—इस ग्रन्थमें भारतीय और विदेशी सभी समीक्षा-शैलियोंका विस्तारपूर्वक वर्णन रहेगा। साहित्य-समीक्षाके सम्बन्धमें जितने सिद्धान्त, नियम या व्यवस्थाएँ हैं उन सबका तर्कपूर्ण परीक्षण किया जायगा तथा समीक्षाकी भिन्न-भिन्न पद्धतियोंके आदर्श उपस्थित किए जायँगे।

(५) भारतीय काव्य-शास्त्र—इसमें प्राचीन संस्कृत

साहित्यके सभी प्रमुख आचार्योंके लक्षण ग्रंथोंका मूल-सहित नागरीमें अनुवाद रहेगा, जिनमें दंडी, भामह, मम्मट, राजानक, रुय्यक, राजशेखर, आनन्दवर्द्धनाचार्य, महापात्र, विश्वनाथ, पंडितराज जगन्नाथ आदि सभी आचार्योंके ग्रन्थ आजायँगे। साथ ही विभिन्न आचार्योंके मतभेद और उनके आग्रहोंका भी स्पष्टीकरण किया जायगा। इस ग्रन्थको इस योग्य बनाया जायगा कि संस्कृत साहित्यसे अनभिज्ञ लोग भी सरलतासे भारतीय काव्य-शास्त्रका समुचित आनन्द प्राप्त कर सकें।

उपर्युक्त सभी ग्रन्थोंमेंसे प्रत्येकका मूल्य २०) होगा। पर प्रचारार्थ निर्दिष्ट समयके भीतर ग्राहक बन जानेवालोंको ५) में ही वितरित किया जायगा ग्राहक बननेकी तिथि समय समयपर घोषित कर दी जाया करेगी। अभी केवल प्रथम ग्रन्थका प्रकाशन हो रहा है और आशा है कि कार्त्तिकके अन्ततक यह ग्रन्थ प्रकाशित हो जायगा।

द्वितीय योजना।

श्री कालिदास-जयन्ती-समारोह—संस्कृत साहित्यके प्रमुख कवियोंमें कालिदासका महत्त्व किसीसे छिपा नहीं है। इन्हींकी सत्कृतियोंसे प्रभावित होकर विदेशी साहित्यकारोंने भी संस्कृतकी महत्ता स्वीकार की है और विदेशोंमें संस्कृत भाषाके अध्ययन करनेकी प्रेरणा कालिदासकी रचनाओंने ही दी है। आगामी कार्त्तिक शुक्ला नवमी (अक्षय नवमी) दशमी, तथा प्रबोधिनी एकादशीको काशीमें श्रीकालिदास जयन्ती-महोत्सव मनाया जायगा जिसका कार्यक्रम इस प्रकार निश्चित हुआ है :—

(१) अभिनय—कालिदासके प्रसिद्ध नाटक अभिज्ञानशाकुन्तल, मालविकाग्निमित्र और विक्रमोर्वशीयका संस्कृतमें अभिनय होगा। साथ ही 'कालिदास' नामक हिन्दी नाटकका भी अभिनय होगा।

(२) कालिदास-सम्बन्धी भाषण एवं प्रवचन—प्रसिद्ध विद्वानोंद्वारा कालिदास एवं उनकी रचनाओंके सम्बन्धमें नागरी और संस्कृतमें भाषण कराए जायँगे।

(३) संस्कृत-कवि-सम्मेलन—वर्तमान संस्कृतके कवियोंकी सभा होगी जिसमें कविगण कालिदासकी प्रशस्तियाँ सुनावेंगे तथा अपनी भी रचनाएँ पढ़ेंगे।

(४) अखिल भारतीय भाषा-कवि-समाज—जिसमें सिन्धी, पञ्जाबी, कश्मीरी, उर्दू, पर्वतीया मैथिली, उड़िया, बँगला, आसामी, मराठी, गुजराती, मारवाड़ी, तामिळ, तेलुगू, कन्नड़ी, मलयालम आदि अखण्ड भारतकी समस्त प्रान्तीय भाषाओंके प्रमुख प्रतिनिधि कवि निमन्त्रित किए जायँगे जो अपनी अपनी भाषामें अपनी उत्कृष्ट रचनाएँ महाकवि कालिदासके सम्मानमें सुनाएँगे।

(५) अखिल भारतीय हिन्दी-कवि-समाज—जिसमें भारतकी राष्ट्र-भाषा हिन्दीके यशस्वी तथा प्रसिद्धकवि अपनी रचनाएँ सुनावेंगे।

(६) महाकवि कालिदासके काव्यांशोंका सस्वर एवं सुस्वर पाठ होगा तथा छाया-चित्रोंद्वारा उनके कुछ स्थलोंका प्रदर्शन किया जायगा।

भाषण एवं प्रवचनके अतिरिक्त अन्य सब उत्सवोंमें केवल परिषद्के सदस्य ही भाग ले सकेंगे। सदस्य तीन प्रकारके होंगे—

(१) संस्कृत छात्र सदस्य, जिनके लिये १) शुल्क, (२) साधारण सदस्य, जिनके लिये २) शुल्क तथा (३) विशिष्ट सदस्य, जो १००) अथवा इससे अधिक प्रदान करेंगे। विशिष्ट सदस्योंको परिषद्के द्वारा प्रकाशित पाँचों ग्रन्थ भी निःशुल्क मिलेंगे।

तृतीय योजना।

विक्रम-महोत्सव—विक्रम-संवत्की दूसरी सहस्राब्दिकी विदाई और तीसरी सहस्राब्दिके स्वागतके उपलक्ष्यमें चैत्र कृष्णा त्रयोदशी सं० २००० से चैत्र शुक्ला प्रतिपदा सं० २००१ तक

विक्रम-महोत्सव मनाया जायगा जिसका कार्यक्रम इस प्रकार होगा :—

(१) पण्डित-सभा—भारतके सब प्रकारके सांस्कृतिक क्षेत्रों के प्रतिनिधियों तथा पण्डितोंकी सभा की जायगी, जिसमें वे विद्वान यह विचार करेंगे कि यहाँका साहित्य, यहाँकी कला और भारतीय संस्कृति किस प्रकार पुनः उन्नत हो सकती है और हम फिरसे अपना प्राचीन गौरव किस प्रकार प्राप्त कर सकते हैं।

(२) विक्रम-सभा—महाराज विक्रमादित्यकी नवरत्नयुक्त सभाका प्रदर्शन होगा।

(३) विक्रम-प्रदर्शनी—इसमें महाराज विक्रमादित्यके समयकी कलात्मक सामग्री, सिक्के, मूर्त्ति, पुस्तक आदिका प्रदर्शन होगा।

(४) भाषण-महाराज विक्रम की विजयों और उनके व्यक्तिगत जीवन सम्बन्धी विषयोंपर भाषण कराए जायँगे।

वास्तवमें यह योजना महाराज विक्रमादित्यकी महत्ताकी तुलनामें केवल पत्रपुष्प ही है, किन्तु इन गए बीते दिनोंमें भी भारतमें ऐसे हिन्दू संस्कृति-प्रेमी तथा उदार धनकुबेरोंका अभाव नहीं है जो इस अवसरकी महत्ताका अनुभव न करें और जो उदारतापूर्वक इसमें सहयोग न दें। इस योजनामें चालीस सहस्र रुपयोंका व्यय आँका गया है। कुछ उदार महानुभावोंने स्वतः सदर्प एक सहस्र रुपये या इससे अधिक दान देकर इस योजनाकी उदारतापूर्वक सहायता की है। हमें विश्वास है कि आप भी इस पुण्य पर्वका हृदयसे स्वागत करेंगे और यथाशक्ति इसकी आर्थिक सहायता करेंगे क्योंकि अब यह पर्व एक सहस्र वर्षोंके बीतने पर ही आवेगा।

तदनुसार अक्षय नवमी सं० २००० को काशी के चित्रा—भवनमें हरिद्वार के महन्त शान्तानन्द नाथजी की अध्यक्षतामें विराट-उत्सव हुआ जिसमें विद्वानों के भाषण हुए। महाकवि कालिदास नाटक, कविसम्मेलन आदि अनेक उत्सव हुए और एक वर्ष पश्चात् कालिदास ग्रन्थावली प्रकाशित करके अत्यन्त अल्प मूल्यमें विद्वानों और छात्रों को वितरित की गई और उस संस्था की ओर से प्रति वर्ष अक्षय नवमीके दिन कालिदास जयन्ती महोत्सव मनाया जाता है नाटक खेले जाते हैं और विशिष्ट ग्रन्थों का प्रकाशन हो रहा है।

अखिल भारतीय विक्रम-परिषद् तथा उसकी नाट्यसमितिके सदस्य और सदस्याएँ बीचमें मालवीयजी महाराज कुर्सीपर बैठे हैं।

इस प्रकार राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, समाजिक तथा आर्थिक-जीवनका कोई ऐसा प्रश्न

नहीं रहा जो मालवीयजी महाराजके सद्योग, कृपा, प्रसाद, आशीर्वाद और सेवासे वंचित हो रहा हो।

मुसलिम गुंडों का उपद्रव और निर्वाण

सन् १९४६ में जिस समय केन्द्रमें अंतरिम सरकार स्थापित हुई उसी समय मुसलिम लीगके गुण्डोंके कुचक्रसे कलकत्ता, बम्बई और नोआखालीमें सामूहिक रूपसे हिन्दुओंपर व्यवस्थित आक्रमण किए गए, घर जलाए गए और महिलाओंकी जो दुर्गति की गई वह वर्णन शक्तिके बाहर है। नोआखालीकी घटनासे मालवीयजीको इतनी अधिक वेदना हुई कि वे उस आघातको सह न सके। और १२ नवम्बर सन् १९४६ ई० को उसी वेदनाको लिए हुए स्वर्ग सिधार गए। इस घटना पर उन्होंने जो अपना अंतिम वक्तव्य दिया है वह उनकी निर्भीकता, तेज और स्पष्टभाषिताका उज्ज्वल और प्रभावशाली प्रमाण है।
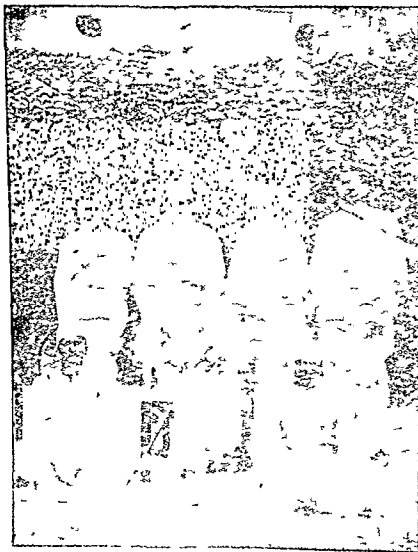
[मालवीयजी महाराजके निकट सम्पर्कमें रहकर सेवा करनेवाले—
नीचे—शिवधनी सिंह, लक्ष्मणजी, पीछे—, मालवीयजीके ज्येष्ठ पौत्र स्व०
श्रीधर मालवीय, मालवीयजीको कथा वार्त्ता सुनानेवाले पं० हीरावल्लभ शास्त्री ।]

ऐसे लोगन सों का कहिए,
हरिजस सुनहिँ न हरिगुन गावहिँ,
बातन ही असमान गिरावहिँ।
आप न देहिँ चुरू भरि पानी,
तिहिँ निन्दहिँ जिहि गङ्गा आनी ॥

पर उनकी चर्चा छोड़िए। अब भी भारत अपने पुरखाओंको नहीँ भूला है। अब भी हममेँ ऐसे हैँ जो अपने महापुरुषोंकी पूजा करना जानते हैँ और हम सच्चे दिलसे यह समझते हैं कि अगर हिन्दुस्थान फिर अपनी पुरानी सभ्यताके बलपर संसारका गुरु बनना चाहता है तो उसे अपने महापुरुषोंकी पूजा करना आरम्भ कर देना चाहिए।

महापुरुषोंका जीवन-चरित ऐसा दीपक है जिसके उँजियालेसे दुनियाँका सारा अँधेरा मिट जाता है, जिसके सहारे अँधेरीसे अँधेरी कोठरीमेँ चाँदना हो जाता है डर भाग जाता है, चिन्ता मिट जाती है, पाप भस्म हो जाते हैँ, और मनुष्य ऊँचे उठने लगता है—इतने ऊँचे—कि कभी-कभी उसकी बढ़ती देखकर अचरज होता है। अपनी माँ जीजाबाईके मुँहसे महापुरुषोंकी कथा सुनकर ही शिवाजी, शिवाजी बने। यह जादू होता है महापुरुषोंका जीवन-चरित पढ़ने और सुननेसे। इसलिये जो मन लग कर महामना पण्डित मदनमोहन मालवीयजीका जीवन-चरित पढ़ेँगे या सुनेँगे, उनकी धर्ममेँ रुचि होगी, विद्या, यश और धनकी वृद्धि होगी और वे सब प्रकारसे सुखी होकर सौ वर्षकी आयु पावेँगे। वे कभी उदास, निराश और हतोत्साह नहीँ होंगे और उनके सब अच्छे मनोरथ सफल होंगे।

भगवान् करे सारा संसार सुखी हो, सब देश स्वाधीन हो जायँ और स्वतन्त्र भारत एक स्वरसे 'वन्दे मातरम्' की रट लगाता हुआ सुखसे फले फूले।

महर्षिके अन्तिम श्वासोंका साक्षी मैं भी था

दीपके निर्वाणपर सहसा अंधकार होते तो सभीने देखा होगा किन्तु १२ नवम्बरके तीसरे पहर ४ बज कर १३ मिनटपर काशी विश्व-विद्यालयमें जिस महादीपका निर्वाण हुआ उसकी ज्योति निर्वाण होनेपर ज्योतिसे महा-ज्योति बन गई और दीप-मुखकी संकुचित परिधि लाँघकर विश्वात्म ज्योति बनकर अनन्तमें व्याप्त हो गई। उस समय प्रत्येक विवेकवती बुद्धिमें सहसा ज्ञान स्फुरित होने लगा कि पाँच फुट सात इंच लम्बे कलेवरमें सिमटे हुए जिस आलोकको संसार परिमिताभ और गुप्त तेज समझे हुए था वह वास्तवमें कितना अपरिमिताभ और प्रदीप्त तेज था।

गोपाष्टमीको च्यवनाश्रमसे वे लौटे तो सही किन्तु शीत लेकर लौटे। उनकी वृद्धावस्था और देशव्यापी दुश्चिन्ताओंने पहलेसे ही उनके मन और हृदयको मथ डाला था। शीतने भी उनके जरा-कृश शरीरपर क्रूर आक्रमण कर दिया और इन सब उत्पातोंके साथ आकर षड्यन्त्र किया कालने। विश्व जिसे उत्साहके साथ अपने सिरपर चढ़ाए हुए था उसे अंकमें लनेको काल भी व्याकुल हो उठा। शयन-शैया सहसा रोगशैया बन गई किन्तु किसीको यह विश्वास नहीं था कि अक्षय-नवमीकी रोगशैया ही उनकी क्षय-शैया बननेका अपयश लेगी।

मुझे उन्होंने बुलाया था 'प्रतिभा' पत्रिकाके लिये आशीर्वाद देने, जिसके कुछ अंश पंडित गया प्रसाद ज्योतिषीजीने उन्हें पढ़कर सुना दिये थे। उस दिन जब मैं पहुँचा तब नेत्रोंकी ज्योति बनी हुई थी, केवल कफ वाणीका द्वार रोककर खड़ा हुआ था, फिर भी उन्होंने चिर-संचित वात्सल्यके अमित रससे घोलकर केवल इतना पूछा—सीताराम! इतने दिनों में। मुझे ऐसा जान पड़ा मानो मेरे लिये वह कोई बहुत बड़ा संदेश रहा हो किन्तु उसे कह पानेमें वाणी अशक्त हो रही हो। उनके आदेश मुझे पहले ही प्राप्त हो चुके थे और मुझे विश्वास है कि वे यही कहते-सनातन धर्म हिन्दू जाति, हिन्दू विश्वविद्यालय, स्वदेश। उनके प्रकंपित ओठोंमें मैं उनके आदेश-मंत्रके मूक उच्चारणकी गति देख और समझ रहा था।

सत्येन ब्रह्मचर्येण व्यायामेनाथ विद्यया,
देशभक्त्यात्मत्यागेन सम्मानार्हः सदा भव।

उनकी चिन्ताओंको मैं भली-भांति पहचानता था—विश्वविद्यालयके मंदिरकी चिन्ता। किन्तु सेठ जुगुलकिशोर बिड़लाने अपने सौजन्य और उदारतासे यह चिन्ता अपने ऊपर ओढ़ ली थी और उस दिन पूज्य मालवीयजीसे कह भी दिया था—'महाराज! मंदिरकी चिन्ता लेकर आप मत जाइए। मंदिर मैं बनवा दूँगा।' मैं कल्पना कर सकता हूँ उस आनन्दकी जिसमें जुगुलकिशोरजीके इन वचनोंपर एक बार उनके हृदयका सम्पूर्ण बोझ उतारकर उन्हें अकथनीय शान्ति प्रदान की होगी। किन्तु जिस चिन्ताने उन्हें सहसा अन्तिम पचत्व देनेको विचलित कर दिया था वह थी नोआखालीमें मुसलिम लीगके गुण्डोंका अत्यन्त नीचतापूर्ण और बर्बरतापूर्ण अत्याचार।

फिर जब मैं उस दिन मङ्गलवारको १२ बजे दिनमें पहुँचा तो देखा-ऊर्ध्वश्वास चल रहा है किन्तु वैसा ऊर्ध्वश्वास किसी धैर्यने नहीं देखा होगा। तीन दिनसे यह उसी वेगसे चल रहा था।

जान पड़ता था मानो काल उनके पास पहुँचनेको पग बढ़ा रहा हो और वाणीके अशक्त हो जानेपर केवल श्वाससे ही वे उसे ललकार रहे हों और वह भी उनके तेजसे पराभूत होकर कहीं दूर हाथ बाँधकर खड़ा हुआ कह रहा हो–'देव! चलिए देवलोक आपकी प्रतीक्षा कर रहा है।' पचासी वर्षोंके संयत और साधनामय पवित्र जीवनकी सम्पूर्ण तपस्या मानो आज परमावधिके समय एकत्र होकर जुट गई हो। तापमान बढ़ने लगा। वैद्यों तथा डाक्टरोंको यह विश्वास होने लगा कि उनकी हृदयकी गति सहसा बंद हो जायगी।

अन्त समयमें उन्हें कोई कष्ट नहीं हुआ, हो भी नहीं सकता था। उन्हें निरन्तर जाह्नवी तोयका औषध मिल रहा था। बाईं ओर दीवारपर उनके पिताजीका, माताजीका और उनकी धर्मपत्नीका चित्र था। उनकी आँखें मालवीयजीपर बँधी हुई थीं मानों उनके शरीरकी समस्त पीड़ाएँ वे अपने नेत्रोंसे पीती जा रही हों। बाईं ओर कोनेमें शंख, चक्र, गदा, पद्म मण्डित विष्णु भगवानकी मूर्त्ति थी और वही मूर्त्ति नेत्रोंमें भरकर मालवीयजीने अन्तिम बार नेत्र बन्द कर लिए। पास जो लोग बैठे रहते थे वे भले ही अनुभव कर रहे हों किन्तु यह स्पष्ट था कि उनकी उस बहत्तर घण्टेकी ऊर्ध्व श्वासमें भी वही तेजस्विता थी जो उनके जीवनमें आद्यन्त व्याप्त रही।

रोग-पीड़ित मुमूर्षुका दयनीय दैन्य एक क्षणके लिए भी उनके तप-पूत मुखमण्डल पर नहीं दिखाई पड़ा। सहसा तापमान १०५.६ से उतरकर १०४ पर आ गया और उनकी शान्ति गम्भीर होने लगी–श्वासकी गति मन्द हो चली। श्रद्धेय पुरुषोत्तमदास टण्डनजीने कहा–'अब वे जा रहे हैं।' सचमुच वे जा रहे थे किन्तु उनके मुखपर निर्वाण होते हुए दीपकी व्याकुलता नहीं थी। हरे राम हरे राम, ॐ नमो भगवते वासुदेवाय की ध्वनि सबने ऊँची कर दी। महाप्रयाणकी तैयारी होने लगी।

उन्हें शय्यापरसे उठा लिया गया, भीतर चौकीपर ले जाकर रक्खा गया। उनके मुखमें तुलसी और गङ्गाजल छोड़ दिया गया। वहाँकी गोबरसे लिपी भूमिपर अपनी स्वाभाविक शान्त शयन मुद्रामें उन्होंने देखते-देखते अंतिम श्वास छोड़ दिया। प्राण-वायु परम व्योममें समा गयी। किन्तु उनके प्राणोंके प्रयाण कर चुकनेपर पचासी वर्षोंसे साथ-साथ रहनेवाला हृदय अभीतक शरीरका साथ दे रहा था, नाड़ी चल रही थी और कुछ देर चलती ही रही।

और उनका वह तेज, उनकी वह मृदु मन्द मुसकान जो निराशके हृदयमें आशा, निरुत्साहके हृदयमें उत्साह और निष्ठुरके हृदयमें आत्मीयता भरती चलती थी, वह अभीतक ज्योंकी त्यों बनी हुई थी और विचित्र बात तो यह थी कि गङ्गाजीके तटपर सजाई हुई बिल्व चन्दनकी महाशैयापर भी वह तबतक बनी रही जबतक हुताशनने स्वयं उपस्थित होकर उस तेजको आत्मसात नहीं कर लिया।

रातको उनकी अरथीका निर्माण करानेके पश्चात् मैं श्री महेश्वरी प्रसाद मौलवी आलिम फाजिलके साथ विश्वविद्यालयके हरिश्चन्द्र मार्गपर चला जा रहा था कि सहसा मेरी दृष्टि गई चन्द्रमापर जो छात्रावासोंके भवनोंको चाँदनीसे धो रहा था, मुझे स्मरण हो आई सन् १९३२ के मार्चकी वह सन्ध्या, ठीक वही समय था। एम्फी थियेटरके सामनेवाली सड़कपर पूज्य मालवीयजी थे और मैं था, चाँदनी खिली हुई थी उन्होंने मोटर छोड़ दी, पैदल चलने लगे। उन्हीं दिनों प्रा० अधिकारीजीके प्रयत्नसे मुझे हजारीबागमें पादरियोंके एक कालेजमें संस्कृतकी प्रोफेसरी मिल रही थी। मैंने उनसे आज्ञा माँगी थी और उस निमित्त उनके साथ साथ चल रहा था। जब आर्टस् कालेजके भवनतक पहुँचे तब देखा कि उस भवनका कलश और शिखर चाँदनीमें नहा रहा है। उन्होंने मुझसे कहा–सीताराम! देखो ये भवन कैसे सुन्दर लगते हैं। उन भवनोंके

प्रति जिस आत्मीयताके भावसे उन्होंने यह बात कही, उसीमें मेरे प्रश्नोंका उत्तर मिल गया। मैंने कहा-मैं नहीं जाऊँगा। किन्तु आज कौन रह गया है जो उसी तन्मयतापूर्ण आत्मीयताके साथ विश्वविद्यालयके कणकणमें आत्मको प्रतिष्ठित करके उसके सौन्दर्यसे प्रभावित होकर कह उठे-सीताराम! ये भवन कितने सुन्दर लगते हैं।

वे सिद्ध महर्षि थे, स्वातन्त्र्य युद्धका उन्होंने प्रारम्भ किया था और स्वतन्त्रताकी उषाका उदय कराकर ही उन्होंने प्रस्थान किया। हिन्दू विश्वविद्यालयकी स्थापनाका संकल्प किया, उसे फलते-फूलते छोड़कर ही गए। न जाने देशके किस पुण्यसे वे आये और लोक-कल्याणके अनेक स्रोत उत्पन्न करके चले शांतिसे अन्तर्धान हुए।

राधाकान्त, गोविन्द और मुकुन्दके केवल पिता खो गए हैं किन्तु देशने क्या खोया है, हिन्दुओंने क्या खोया है इसे कोई समझ नहीं सकता। अचानक बुधवारके प्रातःकाल जब आकाशमें बदली छा गई, गोविन्दजीने कहा—यह क्या अनर्थ हो रहा है। बूँदे पड़ने लगीं। मैं भी सोचने लगा- यह क्या अनर्थ हो रहा है। किन्तु सहसा पूर्वसे आते हुए बादलोंको देखकर मुझे स्मरण हो आया कि जिस बङ्गालकी मर्मान्तक पीड़ापर मालवीयजीकी आँखोंमें आँसुओंकी झड़ी लग गई थी वही बङ्गाल अपनी खाड़ीका जल लेकर उनके शवपर रोनेके लिये आकाशमें आकर जम गया है। आकाशकी अश्रुवर्षाके पश्चात भगवान आदित्य भी दर्शन करने आ पहुँचे और अन्ततक वे दर्शन करते रहे, उनका जी नहीं भरा।

ऐसा भव्य, ऐसा शान्त, ऐसा महान, ऐसा तेजपूर्ण अवसान किसीने नहीं देखा होगा।

उदेति सविता ताम्रः ताम्र एवास्तमेति च।
सम्पत्तौ च विपत्तौ च महतामेक रूपता॥

उनके सेवक बलिहारीने कहा था-'जान परत है बाबूजी सोवत हवैं' किन्तु ऐसी शान्त निद्रामें कि स्वप्नको लेते थे कौन कहे श्वासको भी अधिकार नहीं था कि उसमें बाधा दे।

कितना बड़ा सौभाग्य है मोही और बलिहारीका जिन्होंने पिछले कितने ही वर्षोंसे चौबीसों घण्टे उनके साथ रहकर उनकी सब प्रकारसे सेवा की। अधिक भाग्यशाली तो मैं हूँ जो अपनी आँखोंसे उनकी अन्तिम श्वासका साक्षी बन सका, अन्त समयमें उनके चरण स्पर्श कर सका, और अन्ततक अपने कंधोंपर उन्हें वहन करने का पुण्य ले सका अन्यथा यदि मैं बम्बई चला जाता और वहाँ मुझे समाचार मिलता तो पिछले २३ वर्षोंसे मैंने उनकी सेवामें रहकर उनकी कृपा और उनका स्नेह पाकर जो सौभाग्य एकत्र किया था वह सब विनष्ट हो जाता और मुझे जो वेदना होती वह जीवनभर छाया बनकर मुझे संतप्त करती रहती। उनके महाप्रयाणसे मेरी जो व्यक्तिगत क्षति हुई है उसमें सबसे बड़ा संतोष यही है कि मैं अन्त समयमें उनके पास था और उनके अन्तिम श्वासका साक्षी मैं भी था।

मालवीयजीके सम्बन्धमें कवियोंके उद्गार

कुसुमदलमाला

अमल-धवलतुङ्गं दिव्यमेतत् किरीटम्
सुरुचिररचनायाः कौशलेनातिरम्यम् ।
धवलगिरिशिरोवन्मालवीयस्य मूर्ध्नि
शतशतशशिलोकेष्वद्वितीयं विभाति ॥१॥

अति मधुरमहो किं वर्त्तते तस्य निम्ने
विमलविशदभाले चन्दनं, नैव मन्ये।
प्रियजनगुणसंमुग्धस्तुतोपप्रसादात्
शिवपदविनतेऽस्मिन् पूर्णचन्द्रो विभाति ॥२॥

कमलनयनयुग्मं प्रोज्ज्वलं सुप्रभाते
रविरिव सुकलादात् स्निग्धता प्राप्तमिन्दोः।
पुनरपि करुणार्द्रं कोमलत्वेन नित्यम्
तदिह च करुणत्वं मालवीयप्रसूतम् ॥३॥

स्मितमधुरवचोभिर्मोहने स्निग्धरम्ये
विमलमुखसिताब्जे नर्तकी दिव्यवाणीम्।
सुरवरहरिजाया माऽऽगता द्रष्टुकामा
करकमलनिरुद्धा विश्वनिद्रालयार्थे ॥४॥

द्विभुजमिव गलेऽस्मिन् वेष्टितं शुभ्रपद्मम्
त्रिनयनतपस्वीश्रीशृङ्खलम् विभाति ।
मुखकमलसुगन्धाभालयुग्मं वरेण्यं
रसदर्शितवर्षे दिव्यवक्त्राम्बुजस्य ॥५॥

परिमृजितसुशुभ्रा पादुका शुभ्रवस्त्रं
तनुरपि तव शुभ्रा शुभ्रवर्णा च वाणी।
सुचरितमतिशुभ्रं सर्वं शुभ्रेण युक्तो
जयति कुलपतिः श्रीमालवीयो महर्षिः ॥६॥

इदं ते माहात्म्यं विबुधगणशक्तिः विजयते
तथाप्येतन्मे हि प्रयतनमिदं व्यर्थमथवा ।
भवन्माहात्म्यं चरितममृतमिवोल्लासयति माम्
ततस्तुभ्यं श्रीमन् कुसुमदलमाला विरचिता ॥

मदनाष्टकम्

सित-चन्दन-चर्चित-भालतटम् ।
रुचिराम्बर – वेष्टित – गौरतनुम् ॥
प्रिय – देश – हितैरत – मान्य–वरम् ।
प्रणमामि शुभं विमलं मदनम् ॥१॥

विधुहास्य–सुधासम–हास्ययुतम् ।
करुणामय - कोमल - चित्त - धरम् ॥
शुभदक्ष - सुकोमल - वाक्यपटुम् ।
प्रणमामि शुभं निमलं मदनम् ॥२॥

कुसुमादपि – कोमल – चित्त – धरम् ।
कुलिशादपि – भीषण – तेजयुतम् ॥
निजदेश - विशेष - विधान - करम् ।
प्रणमामि शुभं कुशलं मदनम् ॥३॥

शुभकर्म - सुभक्ति - सुज्ञानधरम् ।
नियमादि - समान्वित - चित्त - तनुम् ॥
जनवाञ्छित - बान्धव - पाप हरम् ।
प्रणमामि शुभं अमलं मदनम् ॥४॥

जनसेवक – नायक – नागरिकम् ।
सम - बाल - युवकजन- प्रीतिकरम् ॥
गत - गौरव - वारिज - षट्पदकम् ।
प्रणमामि शुभं कुशलं मदनम् ॥५॥

स्मृति - वेद - पुराण - सुज्ञान - धरम् ।
विबुधाधिप – सेवक – रञ्जनकम् ॥
कृत - विश्व - मनोहर - पीठमिदम् ।
प्रणमामि शुभं अमलं मदनम् ॥६॥

बहु - शिल्पकला - निधि - आदरकम् ।
निज–पूर्व–परा–प्रति–प्रीतियुतम् ॥
भवनाशक – चालक - धैर्य - धरम् ।
प्रणमामि शुभं कुशलं मदनम् ॥७॥

नव-भारत - भास्कर - मोह - हरम् ।
द्विजदेव — समादृत — मान्यवरम् ॥
हृद्-कानन - पुष्प - माल्यमिदम् ।
मदनाय ददामि च भक्तियुतम् ॥८॥

॥ इति श्रीभुवनमोहनविरचित मदनाष्टक समाप्तम् ॥

श्रद्धाञ्जलि

पूजित पदपङ्कज पूजूँगा ।
पावन रजके मिले मत्त मधुकर समान गूँजूँगा ॥
उसमें रच नयनोंका अञ्जन विपुल विमुग्ध बनूँगा ।
सरल लोकमें कलित कीर्तिका कान्त वितान तनूँगा ॥
गौरव गान विपञ्ची-स्वरमें भूरि विभूति भरूँगा ।
भारत भूतलके जन-जनको भाव विभोर करूँगा ॥
बना भारती वरद पुत्र जिसकी विभुतासे गूँगा ।
एस महामहिमको कैसे महामना न कहूँगा ॥
जिसका है शुचि जीवन जो है भवहित मुखरित मूंगा ।
जो वह नहीं महर्षि तो किसे फिर महर्षि समझूँगा ॥
जिसकी पावनताका पग छू मैं पुनीततम हूँगा ॥
उसकी विरद भली कथन करते क्यों कभी थकूँगा ॥
आशा है जगदीश कृपासे परम लाभ यह लूँगा ।
वर्षगाठकी गाँठ गाँठमें सहस गाँठ गूँथूँगा ॥

—कविसम्राट् हरिऔधजी

महामना मालवीयजी

तुम्हें स्नेहकी मूर्त्ति कहूँ, या नवजीवनकी स्फूर्ति कहूँ ? ।
या अपने निर्धन भारतकी निधिकी अनुपम पूर्त्ति कहूँ ? ॥
तुम्हें दया अवतार कहूँ या दुखियोंकी पतवार कहूँ ? ।
नई सृष्टि रचनेवाले, मैं तुम्हें नया करतार कहूँ ? ॥१॥
कहूँ तुम्हें सच्चा अनुरागी, या कि कहूँ सच्चा त्यागी ? ।
सर्व-विभव सम्पन्न कहूँ, या कहूँ तपनिरत वैरागी ॥
कहूँ तुम्हें मैं वयोवृद्ध, या बाँका तरुण जवान कहूँ ।
तुम इतने महान, जी होता तुमको मैं अनजान कहूँ ? ॥२॥
कह सकता हूँ तो कहने दो, मैं तुमको श्रद्धेय कहूँ ।
निर्बलका बल कहूँ, अनाथोंका तुमको आश्रेय कहूँ ॥
श्रेय कहूँ, या प्रेय कहूँ, या मैं तुमको ध्रुव ध्येय कहूँ ।
तुम इतने महान, जी होता मैं तुमको अज्ञेय कहूँ ॥३॥
वीरोंका अभिमान कहूँ, या गुणियोंका सम्मान कहूँ ।
मृदु मुरलीकी तान कहूँ, या रणभेरीका गान कहूँ ॥
शरणागतका त्राण कहूँ, मानव-जीवन कल्याण कहूँ ।
जी होता सब कुछ कह तुमको, भक्तोंका भगवान कहूँ ॥४॥
जी होता है मातृभूमिका तुम्हें अचल अनुराग कहूँ ।
जी होता है परम तपस्वीका मैं तुमको त्याग कहूँ ॥
जी होता है प्राण फूँकनेवाली तुमको आग कहूँ ।
इस सुहागिनी भारत जननीका तुमको सौभाग्य कहूँ ॥५॥
विमल विश्वविद्यालय विस्तृत, क्या गाऊँ मैं गौरव गान ।
ईंट-ईंटसे उससे पूछो, किसका है कितना बलिदान ? ।
हैं कॉलेज अनेक विनिर्मित, फिर भी नित नूतन निर्माण ।
कौन गिन सकेगा कितने हैं दिलमें भरे हुए अरमान ॥६॥
तुम्हें आजकल और नहीं धुन, केवल आजादीकी चाह ।
रह-रह कसक कसक उठा करती है उरमें आह कराह ॥
गला दिया तुमने तनको रो रो आँसूके पानीमें ।
मातृभूमिकी व्यथा हाय हम सहते भरी जवानीमें ॥७॥
मिले तुम्हारी शक्ति देशको, यह जननी जयगान करे ।
मिले तुम्हारी शक्ति देशको, यह नित नव उत्थान करे ॥
मिले तुम्हारी आग इनको, आजादी आह्वान करे ।
मिले तुम्हारा त्याग इनको, तन मन धन बलिदान करे ॥८॥
जियो देशके दलित अभागोंके ही नाते तुम सौ वर्ष ।
जियो वृद्ध माताके मनको धैर्य बँधाते तुम सौ वर्ष ॥
जियो पिता ! पुत्रोंको अपना प्यार लुटाते तुम सौ वर्ष ।
जियो राष्ट्रकी स्वतन्त्रताके आन आने तुम सौ वर्ष ॥९॥

श्रद्धाञ्जलि (विल्वपत्र)

(१)

मालवीय महिमा महान महा मेदिनीमें,
सुर औ सुराङ्गना सुराग गाय नाचें छम ।
किन्नर औ किन्नरी परीहू अप्सरी हू सबै,
ढोलक मृदङ्ग झाँझ झनकारैं झमझम ॥
इन्द्र इन्द्रासन पै झूमे जात झुकिझुकि,
ब्रह्मा विष्णु झूमैं, औ महेश बोलें बमबम ।
गिरिजा गिरीश पास आयकै मनाय कहें,
'चलो, मालवीयजी की नकु देखि आवैं हम' ॥

(२)

हिन्दूपति मालवीय हिन्दू पति दीन्हो बना,
हिन्दू विश्वविद्यालय की साख अमान है ।
सुरलोक, शिवलोक, विष्णुलोक, ब्रह्मलोक,
सतलोक लोकनमें गयो यश व्याप है ।

कीर्तिके पताकेमें कँगूरे ऐसे ऊँचे उठे
अटक्यो अचानक विमान आय आय है।
चकित सुरेश पूछैं, थकित दिनेश पूछैं
'जनम्यो है शिवा कै फेरि जनम्यो प्रताप है॥'

—सोहनलाल द्विवेदी

देवता है मालवी

जल रहा है आज घर-घरमें चिरागे मालवी

सब पै रोशन हो गया रौशन दिमागे मालवी।
जल रहा है आज घर-घरमें चिरागे मालवी॥
गुल नहीं होनेको फिर भी लाख गर आँधी चले।
बुझ नहीं सकता बुझाएसे चिरागे मालवी॥
एक-एक पौधेको सींचा इसने अपने खूनसे।
बागे आलममें, यों है सरसब्ज़ बागे मालवी॥
उम्र भरके वास्ते अब दूर हो जाएगी प्यास।
पीनेवालो आओ, पी जाओ, अयागे मालवी॥
अब अँधेरा वह कहीं देखो नजर आता नहीं।
महफ़िले आलममें है रौशन चिरागे मालवी॥
आस्मोंसे जल्द ये आता है तारे तोड़कर।
किस क़दर रोशन है, ऊँचा है दिमागे मालवी॥
माँगते हैं हज़रते 'बिस्मिल' ये दुनियासे दुआ।
हश्रतक जलता रहे यूँ ही चिरागे मालवी॥

आदमीकी शक्लमें एक देवता है मालवी !

चलनेवाले जानते हैं यह कि क्या है मालवी।
मञ्ज़िले उल्फ़तका सच्चा रहनुमा है मालवी॥
मौजे ग़ममें डूब सकती ही नहीं कश्तीए क़ौम।
क्या ख़ुदाकी शान है अब नाख़ुदा है मालवी॥
आप क्या जानें इसे क्या आपको मालूम है!
बामुहब्बत, बामुरव्वत, बावफ़ा है मालवी॥
अब तो मञ्ज़िल पर पहुँच जाना कोई मुश्किल नहीं।
अब हमारा रहनुमा है पेशवा है मालवी॥
उम्र अपनी ख़त्म कर दी हक़ परस्तीके लिये।
हक़ तो यह है किस क़दर एक आइना है मालवी॥
पाक सूरत, पाक सीरत, पाक तबीयत, पाक ख़ूँ।
कोई देखे एक मर्देपारसा है मालवी॥
हज़रते 'बिस्मिल' ने भी क्या बात ये सच्ची कही।
आदमीकी शक्लमें एक देवता है मालवी॥

—'बिस्मिल' इलाहाबादी

श्रीमान् मदनमोहन मालवीयः

१. शुभ्रवेषः शुभ्रकर्मा शुभ्रोत्तिलकलक्षितः।
शुभ्रदेहः शुभ्रकीर्तिः शुभ्रवाक् शुभ्रलक्षणः॥
२. विद्यावृद्धो वयोवृद्धस्तपोवृद्धः समृद्धिमान्।
मालवीयश्चतुर्वेदः श्रीमान् मदनमोहनः॥
३. नीतिरीतिविपिता पुण्यो युक्तप्रान्ते महामनाः।
हिन्दूसभायाः प्रभवो गोसभानां सभापतिः॥
४. सनातनस्य धर्मस्य सद्भिः परिचालकः।
स्वयं चाचरिता साधुस्त्यागी वाग्मी प्रियंवदः॥
५. भारतस्य समग्रस्य संमान्यो वृद्धपूजकः।
गुणग्रहणनिष्णातो निरालस्यः समाधिमान्॥
६. वाराणसीविश्वविद्यालयस्यार्थनिधेः परम्।
प्राच्यपाश्चात्यविद्यानां सर्वासामधिवेशनः॥
७ पौरस्त्यधर्मवृद्ध्यर्थं स्थापितस्य विशेषतः।
जन्मदाता स्फूर्तिकरः पूर्णरूपप्रदायकः॥
८. नेता मधुरवाग् धन्यो महर्षिरिति विश्रुतः।
असकृद्राष्ट्रसदसः प्रभुत्वेनाभिषेचितः॥
९. देशस्वातन्त्र्यलाभाय येन कारा निषेविताः।
सर्वाः क्रियाश्चोपचिताः कष्टं क्षान्तं महात्मना॥
१०. चौरीचौराकाण्डरोपात्संयतानां प्रभूयसाम्।
यद्वाक्कौशल्यसामर्थ्याच्चित्रा जनिर्विमुक्तता॥
११. सौन्दर्यमाधुर्यविचार्यकार्य-
मार्यत्वमार्यादिक- धैर्य वीर्यम्।
उत्साहसत्त्वप्रगुणानुकम्पा
गुणा यदीयाः पुरतः स्फुरन्ति॥
१२. सा सौम्यता सा माधुरा च वाणी
त्याग स उत्पत्तिमतां विचित्रः।
विद्या विवेको विनयोऽनुरागः
श्रीमालवीयस्य गुणा बभूवन्॥
१३. सा भौतिकी भव्यतनुस्तदीया
परोक्षतां शाश्वतिकीं प्रयाता।
तथापि पूर्णेन्दुकलामलश्री
स्तत्कीर्तिराशिः सततं विभाति॥
१४. धावल्यधामगुणगौरवगुम्फितानां
चन्द्रांशुभास्वचरितामृतचुम्बितानाम्॥
सम्पूर्णभारतमहीमहितामहिम्ना-।
मेकं बभूव यशसां महसां महीयः॥

महादेवपाण्डेयः
अध्यक्षः साहित्यविभागस्य
सं० महाविद्यालये-
का० हि० वि०

महामना के महाप्रयाण पर—

हम अनाथ हो गए आज यह कैसा दुर्दिन आया,
हाय, हट गई हम सबके सिरसे कुलपतिकी छाया।
जिसने नई वाटिका रोपी, सींचा, की रखवाली,
कलि किसलय सब पूछ रहे हैं कहाँ गया वह माली?
कहाँ आज वह सुधावर्षिणी मीठी मीठी बोली,
कहाँ गया जो दीन राष्ट्रके लिये फिरा ले झोली?
विद्यालयकी ईंट-ईंट जिसके दर्शनकी प्यासी,
जिसके गैरिक वस्त्र यहाँ वह कहाँ गया सन्यासी?
स्वतन्त्रता-प्रसाद बनानेका सामान जुटाकर,
शेषनाग सा कहाँ लुप्त हो गया नींवका पत्थर?
शील स्नेह, श्रद्धा, संयमसे विरचित अन्तर-आनन,
कहाँ दूध सी हँसी, कहाँ वह मक्खन सा कोमल तन?
खोकर ही तुमको पहचाना है जन-जीवन-त्राता।
मन्दिरके भीतरसे उसका कलश नहीं दिख पाता?
भरे-भरे से हृदय खड़े खोए-खोए से जन-जन,
बिना तुम्हारे आज लग रहा सूना-सूना आँगन।
विद्यालय है वही, वही उन्नत उद्ग्रीव कँगूरे,
किन्तु ज्योति वह कहाँ? खड़े ज्यों धूमिल स्वप्न अधूरे।
यद्यपि हम जानते तुम्हारी व्यापक विपुल महत्ता,
हे विराट! कण-कणमें बिखरी आज तुम्हारी सत्ता।
पूर्ण पुरुष तुम अमर ज्योति, सत्‌चित् आनन्द प्रकाशी,
श्रद्धानत चरणोंमें गद्‌गद् विह्वल भारतवासी।
भाई-भाई पुनः महाभारत जब लगे मचाने,
दौड़े व्यथित मदनमोहन, तुम गीता दुहराने।
क्या-क्या नहीं किया तुमने पर हाय अभाग्य हमारा,
द्रुपदसुता भी चीर बन गई बन्धनग्रस्ता कारा।
देख दानवी बर्बरतासे देश-जाति-जन व्याकुल,
हे दधीच, तुम अस्थिदान-हित तत्पर आतुर आकुल।
सबने मना किया पर तुमने नहीं किसीकी मानी,
युगके भिक्षुक! आज कौन है जगमें तुमसा दानी?
अब भी गूँज रहे कानोंमें शब्द तुम्हारे अभिनव,
"देश भक्त्या स्वत्यागेन सम्मानार्हो सदा भव।"
देश-जातिकी व्यथा तुम्हारी साँस-साँसमें बोली,
मरते-मरते भी न भूल पाए तुम नोआखोली।
आजीवन रह गए परखते विथकित पीर पराई,
तुमने चाहा रहें स्नेहसे मिलकर भाई-भाई।
विश्वशान्ति-सुखहिततव जीवनका क्षण क्षण था अर्पित
जिसके लिये जिए उसीको तन मन करगए समर्पित॥
देव! अभाव तुम्हारा वाणी विवश नहीं कह पाती,
धर दो सकें सँभाल, हमें तुम सौंप गए जो थाती।

—शिवमङ्गलसिंह "सुमन"

शुभाशंसा

श्री पं० केशवप्रसाद मिश्र
अध्यक्ष हिन्दी विभाग का० हि० वि०

मग्नन्ति यत्र मतिमन्थशतैर्महार्थान्,
हालाहलामृतमयान् निगमागमाब्धीन्।
मन्दादराः परप्रतीक्षितवर्त्तनीषु,
नानाविधाध्वयनिनो धिषणाधुरीणाः॥ १॥
माद्यन्ति मेदुरमदा मतयो न यूनां,
लब्धेन गौर्गुणगणेन वशीकृतानाम्।
वीतस्मयाः परनिधानविधानकामा,
यत्रार्जयन्ति कणशः क्षणशश्च विद्याम्॥ २॥
जीवातुरार्यकुलमञ्जुलसंस्कृतीनां,
केनाप्यगम्यविभवेन विलासिनीनाम्।
साम्यस्पृशा सपदि मिश्रदृशा विशालाम्,
कालानुगान् परगुणांश्च समीक्षते यः॥ ३॥
रम्याणि यस्य भवनानि भृशं भवन्ति,
यद् भारतीरतिकराणि निवासहेतोः।
शस्यानि सारसमयानि वरीवरीतुं,
कीलालमेव विमलं किल वीर्यवत् तन्॥ ॥
सत्येन शीलसुभगेन दृढव्रतेन,
दाक्षिण्यतो रुचिरचारुविभवेन धाम्ना।

वृत्त्या च रञ्जनकृतोपकृतिप्रसर्प-
द्विष्येन तस्य जनको ननु कस्य नार्च्यः ॥ ५ ॥
होराशतांशमपि नो गमयेत् स देशे,
तीव्रानुरागरहितं न हितं हि तत् स्यात् ।
रक्षांसि यान्तु विलयं समुपद्रवन्ति,
हेरम्बतातचरणाम्बुजसप्रसादात् ॥ ६ ॥

सर्वे च सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत् ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

इति

श्री विक्रम यन्त्रालय प्रेस, भदैनी, बनारस ।